मुद्रक:—

अजमेरा प्रिंटिंग वर्क्स,

जयपुर।

पीर ज्योतिनाथजी . २—दुर्गाप्रसाद त्रिवेदी 'शंकर'

पूतनाथाश्रम

...हपुर (जयपुर)

शान्ति कुटीर,

आमेर।

(शंकरानन्द)

परम हंस श्री स्वामी अमृतनाथजी

फतहपुर (जयपुर)

जीवन चरित्र और उपदेश

श्री सन्मति पुस्तकालय
Acc. No. 9511-8
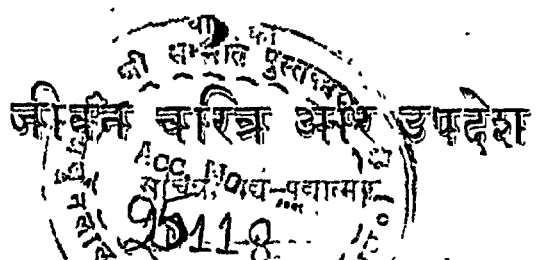
युक्ताहार विहार हो इन्द्रिय पर अधिकार
श्वास माहिं तन्मय रहे "सहज योग" का सार

प्रकाशक
श्री पीर [महन्त] ज्योतिनाथजी
फतहपुर (जयपुर)

प्रथमबार १००० | राम नवमी सं० २००६ | मूल्य २॥)

अजमेरा प्रिंटिंग वर्क्स जयपुर।

समर्पण पत्र

करुणामय गुरुदेव !

आपने जो दया पूर्ण वरदान मुझे दिया था जो सदुपदेश प्रदान किये थे एवं सतत सावधान और जागरूक रहने का जो बीज वपन मेरे अन्तःकरण में किया था वही क्रमशः अङ्कुरित, पल्लवित विकसित एवं सुरभित हुआ है।

मेरे पथ प्रदर्शक, रक्षक एवं प्रेरक !

आज वही सब "विलक्षण अवधूत" पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित हुआ है। मैं इसे आदर नम्रता और कृतज्ञता पूर्वक आपकी दिव्य एवं व्यापक आत्मा को समर्पित करता हूँ।

शान्ति ! प्रेम !! आनन्द !!!

"शंकर"

❁ अनुक्रमणिका ❁

श्री विलक्षण अवधूत

(शंकरानन्द)

सं०	विषय	पृष्ठ
१—प्रस्तावना	ले. पुरोहित हरीनारायण बी. ए.	१ से ४
२—भूमिका	विद्या भूषण जयपुर।	१ से १०
३—श्री विलक्षण अवधूत पर दो शब्द लेखक श्री जोगीदान बारैठ सेवापुरा (जयपुर)		१ से ४

❁ श्री विलक्षण अवधूत जीवन चरित्र प्रथम खण्ड ❁

सं०	विषय	पृष्ठ
१—जन्म (विलक्षणता से) श्री चेतनराम का स्वप्न		१ से ६
२—बाल्यकाल की विलक्षणता।		८ से ६
३—प्रथम चमत्कार।		१० से १५
४—भीष्म प्रतिज्ञा-अखण्ड ब्रह्मचर्य।		१६ से १७
५—माता का देहान्त, आपकी यात्रा और गृह त्याग		१८ से २३
६—श्री मोतीनाथजी की मण्डली में राजस्थान प्रान्त शेखावाटी के अन्न-जल-वायु की विशेषता, उत्तमता।		

सं० विषय पृष्ठ

❀ जीवन चरित्र द्वितीय खण्ड ❀

१–सन्यास ३६ वर्ष की आयु में। २४ से २६

२–एकाकी भ्रमण उग्र तपस्या, भोजन-पान सम्बन्धी गम्भीर अन्वेषण संखिया, सींगी मोहरा आदि धातुओं का भक्षण तथा अनेक रोगियों को रोग मुक्त करना, श्री कनीराम कोठारी को आत्मोपदेश एवं दर्शन, प्रति दिन आधा सेर अर्क (आंकड़ा) दुग्ध-पान, प्रति दिन ५२ कोस की यात्रा बिना विश्राम। ३० से ३८

३–भ्रमण और आत्म-शक्ति का परिचय, उदाहरण, पूरा शीत, वर्षा और ग्रीष्म काल खुले मैदान में व्यतीत करना, वस्त्र न रखना। मृतक मोर को जीवित कर देना। ३९ से ४५

४–श्री स्वामी ज्योतिनाथ को अंगीकार करना, असाध्य रोगियों को साधारण पदार्थों से आरोग्य दान, छाछ (लस्सी) का दही बना देना, वंशीधर सुनार की नेत्र पीड़ा अग्नि का अंगारा नेत्र पर रखवा कर तत्काल मिटा देना। ४६ से ५४

सं. विषय पृष्ठ

५—विचित्र चमत्कार, मनुष्य मात्र से अलग रहना, लकड़ी के दण्डे को मनुष्य के साथ दौड़ाना, खारे कूप का जल मीठा कर देना, तीन क्यारी भूमि की गाजर खा जाना और ज्यों की त्यों क्यारी भर जाना और नागरी के ठाकुर को पुत्र दान देना। ५५ से ६०

६—जमाल गोटे की १०० गोलियों का एक वार में भक्षण और दस्त न लगना, औषधि प्रयोग का विरोध और भूथाराम वैद्य को वैद्यक डाक्टरी तथा अन्य प्रकार के चिकित्सकों के स्वार्थी पन पर दिव्य प्रकाश और शारीरिक क्रियाओं तथा प्राकृतिक उपचार से रोग निवारण करने पर बल। एक से अधिक जगह अपने आप का शरीर दिखाना। ६१ से ६६

७—मेरा प्रथम मिलन और आत्म समर्पण श्री गुलाब चन्द्र पर शिक्षा का प्रभाव और आत्मानन्द नारायण गिरि साधु को बीकानेर के घोर बन में श्री हिंगलाज देवी का दर्शन। ६६ से ७४

सं. विषय पृष्ट

८–पाँगल नाथ साधु के हाथ पैर ठीक कर देना। श्री स्वामी शीतलदास को मन्दिर बनाने को मना करना, श्री स्वामी ज्योतिनाथजी को सर्प से बचाना। इस प्रकार २६ वर्ष तक अनिकेत, पूर्ण त्यागी एवं कठोर तपस्वी के रूप में रहना। ७५ से ८०

❀ जीवन चरित्र तृतीय खण्ड ❀

१–स्थिरासन होने की भीषण प्रतीज्ञा (क्योंकि अपने पैर पाँगल नाथ को दे दिये), आश्रम निर्माण, श्री माधव सिंह (सीकर नरेश) का दर्शनार्थ आना इनके द्वारा पूरे ग्राम का पट्टा भेंट करना। इसे उचित शिक्षा के साथ अस्वीकार करना, राजा के द्वारा २६ बीघा जमीन "बनी" के रूप में आश्रम के चढाना और मकान बनवाना। दर्शनार्थियों की भीड़ रहना मैं आपके विशेष सम्पर्क में। ८१ से ९२

२–दरभंगा (बिहार प्रान्त) के निवासी पंडित श्री कान्त को आत्म दर्शन। वैराग्य, भक्ति, योग सदाचार मुख्यतः सहज योग की शिक्षा सर्व साधारण को। मन की बातें कह देना। आश्चर्य-जनक पदार्थ पान। भविष्य वाणी। ठाकरसी

सं. विषय पृष्ठ

दास सर्राफ को सर्प के विष से बचाना। श्री गोरख रामप्रताप चमड़िया को ५० लाख रु.. की हानि से बचाना। इनके द्वारा मकान बनाया जाना किन्तु अपने वचनानुसार नहीं। मुझको पद्य रचना का वरदान और आपकी महानता श्री ज्योतिनाथजी को महा पुरुष कहना और अपना उत्तराधिकारी मानना। ९३ से १०८

३–शरीर त्यागने से एक वर्ष पूर्व यह कहना कि "अब रमण करेंगे" "इस घर में रहते हुए बहुत समय हो गया" "आश्विन शुक्ला १५ को रमेंगे" मेरा स्वप्न (तन्द्रा में दृश्य)। १०८ से १०९.

४–आश्विन शुक्ला १५ बुधवार को अपराह्न-काल में श्री ज्योतिनाथजी के सिर पर हाथ रख कर तथा श्री कृष्णनाथ का हाथ पकड़ कर उचित शिक्षा देना। इसी समय ६४ वर्ष ६ मास और ६ दिन की आयु में अपने नैमित्यक शरीर को हँसते हुए त्यागना! हँसते हुए नेत्र बन्द करना, शरीर मन्दिर में से ज्योति निकलती दिखाई देना और तीव्र तड़ाके का शब्द होना देहावसान काल (निर्वाण प्राप्तिकाल) का पद्य। ११० से १११

सं०	विषय	पृष्ठ
	❀ परिशिष्ट सं० १ ❀	
१	श्री नाथ सम्प्रदाय के नियमानुसार आपका अन्त्येष्टी संस्कार। श्री डूँगरसीदास नेवटिया द्वारा समाधि मन्दिर वनवाना। आपका बड़ा मेला भण्डारा। श्री स्वामी ज्योतिनाथजी का उत्तराधिकारी पद पर आसीन होना और श्री शुभनाथ को भावी उत्तराधिकारी मानना।	११२ से ११५
	❀ परिशिष्ट सं० २ ❀	
१	श्री नाथजी की वंशावलि। श्री स्वामी ज्योतिनाथ जी का संक्षिप्त जीवन चरित्र।	११६ से १२२
	❀ साधन खण्ड प्रथम भाग ❀	
	मैंने आपके सहवास और कृपा से जो शिक्षा प्राप्त की उसका लिखना आवश्यक।	१२३
१	सृष्टि क्रम:-ब्रह्म, माया, जीव, जगत, गुण, पञ्च तत्व, पचीस प्रकृति, शरीर रचना और जीव का प्रवेश। त्रैगुण और इनके कार्य तथा प्रभाव चतुप अन्तःकरण; मनका विशेष वर्णन। जीव निजावस्था की प्राप्ति के लिये व्याकुल होता है।	१२४ से १४२

सं० | विषय | पृष्ठ

२—शिक्षा के पात्र और वर्तमान शिक्षा की निकृष्टता वेदान्त के श्लोक याद कर लेने से कोई वेदान्ती नहीं हो जाता, विद्या वही है जो दुःख से मुक्त करे। १४२ से १४४

३—योग का अंगः—वेदान्ती, योग के साधन, सोलह प्रकार के योग होते हैं श्री कृष्ण पूर्ण योगी थे। हठ योग,नवधा भक्ति चार प्रकार के भक्त। १४५ से १६४

४—अष्टाङ्ग योग। आसन और प्राणायाम में क्रान्ति कारक स्वतंत्र और व्यावहारिक विचार। आठ प्रकार के कुम्भक चार प्रकार के बन्ध। धारणा, पञ्चमुद्रा। ध्यान-पदस्थ, पिण्डस्थ, रूपस्थ और रूपातीत। समाधि-भक्ति समाधि, योग समाधि और ज्ञान समाधि। इस विषय में आपके स्वतंत्र स्वाभाविक एवं व्यावहारिक विचार और आदेश। मध्य काल में नर पिशाचों ने भारतीय ग्रन्थ नष्ट करके नये और कष्ट दायक रूप में लिखवाये। १६५ से २०६

५—लय योग और निश्चय योग। यह दोनों व्यावहारिक और साधक के लिये सरल हैं।

सं० विषय पृष्ठ

सहजयोग, यही केवल आत्म दर्शन के लिये प्रधान और अन्तिम साधन है। २१० से २१८

❀ साधन भाग द्वितीय खण्ड । ❀

षट् चक्र अंग

१—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्रों के सम्बन्ध में आपके स्वतंत्र और व्यवहारिक विचार। मेरू दण्ड-बङ्क नाल। सहस्रसार चक्र। २१९ से २२८

२—कुण्डलनी अङ्ग। परम स्वतंत्र और क्रान्तिकारक विचार। अनुभूत वर्णन २२९ से २३२

३—सुषुम्ना अङ्गः—शरीरस्थ प्रधान नाड़ियों का वर्णन। यही श्वास का मार्ग है, मेरू दण्ड के आश्रित है। अनुभूत वर्णन। २३३ से २३८

४—चार अवस्था, पञ्च कोष, चार वाणी पञ्च शरीर २३९ से २४५

५—नाद अङ्ग:—नाद और विन्दु के प्रश्न पर विवेचना दश प्रकार का नाद। अनाहत। २४६ से २५१

६—योग की सप्त भूमिका। २५२ से २५९

७—पूर्ण योगी, आत्मदर्शी या सच्चे वेदान्ती के

सं०	विषय	पृष्ठ
	लक्षण आत्मवेत्ता चार प्रकार के होते हैं :— उन्मत्त, गम्भीर, धीर और वीर । इन पर विवेचना ।	२६० से २६६
८—	स्वरोदय अङ्ग, सूक्ष्म तत्व सार ।	२७० से २७८
९—	आहार विहार अङ्ग :— संसार की रचना तमोगुण प्रधान है, उष्ण है । अतः शीतल पदार्थों का सेवन करो । आहार विहार का शरीरस्थ समस्त धातु, चारों अन्तः करण, और प्रकृति पर प्रभाव पड़ता है । अब तक इस विषय पर किसी ने भी पूर्णतः ध्यान नहीं दिया । उष्ण, उत्तेजक, मीठे और स्निग्ध पदार्थ मत खाओ । औषधि त्याग, वीर्य रक्षा, प्राकृतिक जीवन और चिकित्सा पर बल । त्यागी, उदासीन और सजग रहने की आवश्यकता, मनुष्य की आयु, साधन और उपासना आदि पर मार्मिक एवं क्रांतिकारक विचार ।	२७९ से ३००
१०—	भविष्य वाणी :— धर्म, धन, राज्य और जाति का रूप परिवर्तन होगा भीषण रक्त पात, महामारी अथवा और किन्हीं कारणों से जन संख्या घट जायगी	३०१

सं.　　　　विषय　　　　पृष्ठ

अच्छा युग आवेगा।

❀ पद्य भाग प्रथम खण्ड ❀

१—ग्रन्थ रचना का निर्देश। ३०५

२—गुरु प्रार्थना और महिमा। ३०६ से ३२२

३—भक्ति, दया क्षमा, सन्तोष, धैर्य, प्रार्थना, सत्संग, योग की महिमा और श्री गुरु महिमा के पद्य ३२३ से ३३४

❀ पद्य भाग द्वितीय खण्ड ❀

१—कालिंगड़ा राग १२, पीलू बरवा २, आशावरी १५, राग काफी १६ राग होली ४, पार के भजन ३, राग मलार ७ कल्याण ३, सोरठ विहाग १५, माढ २, बारह मासिया १, जोगिया रंगत ४, मंगल ४, पद ६, गजल वागेश्वरी भैरवी १५, कव्वाली २, लावनी ६ चौबेले ४, प्रातः प्रार्थना १ सायं आरती १ और श्री अमृतनाथाष्टक १ है। इनमें योग, भक्ति, वैराग्य आदि के भाव भरे हैं। ३३५ से ३५०

❀ चित्र सूची ❀

१—विलक्षण अवधूत बाबा श्री अमृतनाथजी।

२— „ „ के कृपापात्र शिष्य स्वामी ज्योतिनाथ जी

३—दुर्गाप्रसाद त्रिवेदी "शंकर" लेखक।

४—शरीरस्थ षट् चक्र।

प्रस्तावना

[१]

हम को पूर्व में एक पुस्तक "अमृतानुराग" की मिली थी। उसके साथ श्री अमृत नाथजी का जीवन चरित्र भी थां।

एक

इस अमृतानुराग को पढ़कर जो आनन्द आया, अकथनीय है। इसमें २०८ पृष्ठों में अनेक कविताएँ, रसभरी सूचनाएँ और ज्ञानोपदेश-मय क्रियाएँ इत्यादि दी गई हैं। ये सब अपने गुरु श्री अमृतनाथजी के उपदेश सारावली के अनुसार तथा अनुरूप हैं।

(१) गुरु प्रशंसा। (२) योगसार। (३) ब्रह्म ज्ञान। (४) विषय विकार। (५) स्वरोदय ज्ञान। (६) पञ्च मुद्राएँ। (७) आठों कुम्भक। (८) चारों बंध। (६) तीनों समाधिएँ। (१०) कुण्डलिनी। (११) दश प्रकार नाद। १२) अष्टांग-योग। (१३) नवधा भक्ति। (१४) चार प्रकार के भक्त और चार अवस्था ज्ञानियों की इत्यादि इत्यादि हैं। अन्त में नाथ संप्रदाय (गोरख नाथजी से प्रारंभ कर) का थोड़ा सा परिचय और "पीर" ज्योतिनाथजी की (जो अमृतनाथजी के सम्भावित शिष्य हैं) संक्षिप्त जीवनी भी दी गई है। सारा ही ग्रंथ कवितामय है। यह ग्रंथ कविवर पं० श्री दुर्गाप्रसादजी त्रिवेदी काव्योपनाम "शंकर" आमेर निवासी ने वि० सं० १६८८ में रचा था। उपर्युक्त दोनों पुस्तकों को एक रूप में लाकर तथा संशोधन एवं परिवर्धन करके अब "विलक्षण अवधूत" के नाम से लिखी गई है।

"अमृतनाथ महिमा-अष्टक" में दिखाया है कि इनका "पिलाणी" गांव में 'चेतन' जाट के घर चैत्र शुक्ला १ वि० सं० १६०६ में जन्म हुआ था। तीस वर्ष के हो गये तब 'चम्पानाथ' जी को गुरु किया था। प्रायः भ्रमण में रहते थे। फिर फतहपुर (जिला शेखावाटी, राज्य जयपुर) में स्थिति कर ली। ये बड़े भारी योगी थे। बहुत सी करामातें और परचे अपने आप ही इनसे प्रगट होते रहे।

[२]

इनका विस्तृत चरित्र कोई ५०० पृष्ठों में अब हमारे पास आया हुआ है। उसकी 'प्रस्तावना' अपेक्षित है। इसमें बहुत कुछ पदार्थ आजायंगे। परन्तु अति संक्षेप में अमृतनाथ जी की निर्वाण प्राप्ति ६५ वर्ष की अवस्था में मि० आश्विन शु० १५ बुधवार वि० सं० १६७३ में हुई थी।

नो नाथों को इस प्रकार कथन किया है:—

(१) ओंकार नाथ
(२) उदयनाथ
(३) संतोषनाथ
(४) अचलनाथ
(५) गजबेलीनाथ
(६) ज्ञाननाथ
(७) चौरङ्गी नाथ
(८) मत्स्येंद्रनाथ
(९) और गोरख नाथ।

[३]

इन नाथों के प्रभाव से भारतवर्ष के अनेक राजा महाराजा शिष्य हो गये थे। योग विद्या का गहरा प्रचार उस समय हो गया था। उनमें से पूर्णमल, सुलतान, रिसालू आदि यहां उल्लेखनीय हैं। यहां पर राजा रिसालू का नाम विशेषतः लिख देना है। यह राजा 'मननाथ' या 'मन्नाथ' कहाये. और प्रायः भ्रमण में ही रहते थे। अन्त में शेखावाटी परगने के "टांई" कस्बे में आ विराजे और यहीं पर इनका शरीरान्त हुआ था। और यहीं पर इनका समाधिस्थान भी है। और उनके समय में आश्रम बन गया था। इनके सम्प्रदाय के शिष्य "मन्नाथी" कहाते हैं। और झुंझनू, धिसाऊ, बूँदिया, वारवास आदि कई स्थानों में इनके स्थल अब तक [illegible] हैं।

[४]

इसी पन्थ के योगीवर अमृतनाथजी के तत्वावधान में बहुत सी विशेष बातें और उपदेश भरे हैं। एक विशेष आविष्कार खानपान में बता कर तदनुसार प्रायः बर्ताव रक्खा वह यह है कि "आहार विहार, खानपान का जैसा पवित्र और सुखद रूप आपने संसार के सम्मुख रक्खा वैसा

आज तक किसी भी महात्मा ने संसार को नहीं दिखाया। यह विषय तो आप का सर्वोत्कृष्ट आविष्कार है। खान पान ही शांत और अशान्त बनाने का प्रधान कारण है"। आगे कविजी ने कहा है:—

"उचित खान पानादि से, शीत उष्ण सम रूप।
समगति से श्वासा चले, 'अमृत' भेद अनूप॥"

फिर कहा है:—

"समय समय पर शहद का सेवन उत्तम जान।
दुग्ध, मठा, दधि, रावड़ी. करो प्रेम से पान॥
करो प्रेम से पान, वृत्ति उत्तम होती है।
भोजन अति नहिं करै, व्याधि ऐसे खोती है॥
क्रिया योग की जब बने, सुधरे अहार विहार।
'अमृत' उनको ही मिले, मानव तन का सार॥२०॥"
"ठंडा भोजन करे तब होय वृत्ती में शान्ति।
सद्गुरु की सेवा करे दूर होय तब भ्रान्ति"॥२२॥

[५]

ये महात्मा उत्तम और विलक्षण रीतियों से योगादिक क्रियाओं के साधन बताते थे। हठ योग और राज योग

विधिवत् बताते थे, परन्तु सहजयोग को ही सर्व श्रेष्ठ और आत्म प्राप्ति का मुख्य साधन बता कर क्रियाओं का प्रतिपादन भली प्रकार करते थे।

[६]

पण्डित श्री दुर्गाप्रसादजी ने अब इन योगी महात्माजी का विस्तृत जीवन चरित्र लिख कर लोक पर बड़ा उपकार किया है।

पुरोहित हरिनारायण
(बी. ए. विद्याभूषण)
जयपुर।

भूमिका

श्री विलक्षण अवधूत

अर्थात्

योगीवर श्री अमृतनाथजी

का

जीवन चरित्र तथा शिक्षायें

योगीराज श्री अमृतनाथजी फतहपुर (शेखावाटी) का विस्तृत जीवन चरित्र श्रीयुत् कविवर पंडित दुर्गाप्रसादजी

शर्मा त्रिवेदी आमेर उपनाम "शङ्कर" कवि ने संगृहीत किया है। कोई ५०० पृष्ठों के करीव हस्त लिखित पुस्तकें हैं। इन में गद्य और पद्य दोनों साथ साथ हैं। प्रायः पूर्व भाग में गद्य हैं। और उत्तर भाग में पद्य रचना है। बीच में कहीं कहीं गद्य के साथ पद्य भी आ गया है। विषय गुरु प्रसाद से, गुरु के उपदेशानुसार और उनके अनुरूप ही, योग, अध्यात्म, उपदेश, शिक्षा, नीति, मार्मिक उक्तियों, उपयोगी प्रांजल प्रवचन, भक्ति सने सुखद गहरे वचन विलास, रहस्यमय योग के अनुभव, नित्यानन्द प्राप्ति के सहज उपाय, जीव ब्रह्म की सरस पहेलियां, नाद विन्दु आदि तत्वानुसंधान की परीक्षाएं, स्थूल-सूक्ष्म का भेद निदर्शन, सात्विक वैराग्य विमर्षण, सुरति-निरति रति की अभिलाषा, शून्य भवन में अनोखी ज्योति के दर्शन, अखण्ड सच्चिदानन्द आनन्दकन्द की "सहजयोग" द्वारा सुलभ सम्पन्नता, सहज-समाधिस्थ-ज्ञानोदय प्रकाश-तेजोमय अखण्ड-अजपाजाप-संलग्न, रूपातीत-ध्यान-संतृप्त, तुरियावस्था-संप्राप्त, सप्तभूमिका-पारंगत, विज्ञान-चेष्टा-विमर्षण-चैतन्य, उन्मनी-ध्यानवृत्ति-स्थिरीभूत, सर्वभूतात्मा-साम्यदर्शन, शरणागत-दीन दुःख-संत प्रसरण तारण, अध्यात्म-रहस्य-पारदर्शी, भक्तिभाव-सुलभ आत्मतत्व-विकास इत्यादि इत्यादि अन्तरंग वहिरंग शिक्षण प्रणाली सहित

सद्उपदेश-संग्रह इस ग्रन्थ में लाया गया है। उपयोगी ज्ञान गरिमा समीकरण, कर थोड़े में विषय दिग्दर्शन कर दिया है।

प्रथम गद्य विभाग का सार लेकर जीवन घटनाओं का संक्षेप निरूपण-उल्लासों के अनुसार होता है।

साधन खण्ड

[१५ वां उल्लास] अब यहाँ से स्वामी अमृतनाथजी के सिद्धान्तानुसार, विवेचना की गई है। इस में गद्य और पद्य दोनों का समावेश है। नीचे लिखे विषयों पर प्रकरणानुगत कथन हुआ है:—

[१] सृष्टि क्रम। [२] माया। [३] जीव। [४] जगत् [५] सृष्टि रचना का सूक्ष्म तत्व। [६] त्रिगुणात्मक वैभव। [७] ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेंद्रियादि। [८] मन, बुद्धि, चित्त अहंकारादि। [९] पंच तत्व। [१०] पंच कोष। [११] कैवल्य। [१२] जगत् ब्रह्म का रूप ही है। [१३] सत्कार्य वाद और अद्वैत वाद पर टिप्पण। [१४] पंच तत्व के विशेष रूप। [१५] स्थूल और सूक्ष्म तथा कारण की विवेचना। [१६] गुणातीत अवस्था। [१७] षट् चक्रों का वर्णन। [१८] मन बुध्यादि की प्रबलता, विलक्षणता की शक्ति विशेष इत्यादि।

[१६ वां उल्लास] शिक्षा प्रदान पर स्वामीजी बहुत बल दिया करते थे। देश, काल और पात्रानुसार अधिकारियों की परीक्षा करके ही शिक्षा देनी चाहिये इसके विपरीत शिक्षा का देना व्यर्थ ही होता है। शिक्षा जैसी कल्याण कारक वस्तु को किसी पर बलात नहीं लादनी चाहिये। वर्तमान काल में क्या लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की शिक्षा की गति विधि बहुत ही निकृष्ट हो चली है। न उत्तम गुरु ही प्राप्त होते हैं, न योग्य शिष्य ही तय्यार होते हैं। स्वामीजी लौकिक और पारलौकिक सब प्रकार की शिक्षाएं अधिकारियों को दिया करते थे। आप के पास केवल मौखिक वाच्यविन्यास काम नहीं देता था। वेदान्त और योग का क्रियात्मिक सार्थक मूल तत्व ही काम दे सकता था।

"शिक्षा उसको दीजिये जो जिज्ञासू होय।
देकर सीख अपात्र को मत महत्व को खोय" ॥१॥

वर्त्तमान स्त्री शिक्षा को स्वामीजी अनुचित समझते थे।

इसके उपरान्त स्वामीजी ने "योग के अंग" इत्यादि पर विशेषता से कहा है। नीचे विपयों पर विवरण किया गया है। विस्तार को ग्रन्थ में देखने से बड़ा लाभ होगा, और आत्मोन्नति में विशालता बढ़ेगी :—

[१] योग का साधन। [२] वेदान्त तत्व की गूढ़ता का वर्णन। [३] निज अनुभव का स्पष्ट प्रकाशन। [४] योग के साधन के चार अंग :—

"विषय त्याग अरु साधना, सतगुरु का सत्संग।
ईश्वर में विश्वास हो, चार योग के अंग" ॥१॥

और पाँचवाँ पूर्व कर्मों का फल। योग बिना कोई भी नहीं तिर सकता। ब्रह्म की एकता ही योग का परम सिद्धान्त है। योग १६ प्रकार का होता है जिसको यहां लिखा जाता है :—

श्री ब्रह्म १६ कलायोग में परिपूर्ण योगी थे। १६ में ८ तो सांसारिक कार्यों के अर्थ। ४ सगुण उपासना के अर्थ। ३ निर्गुण उपासना के अर्थ। और केवल १ आत्म दर्शनार्थ हैं। अब इनकी गणना करते हैं :—

[१] सांसारिक के—

कर्मयोग मंत्रयोग, लक्ष्ययोग, क्रियायोग सिद्धियोग, वासनायोग, चर्यायोग और ज्ञानयोग।

[२] सगुण उपासना के—

ध्यान योग हठ योग, शिव योग, भक्ति योग।

[३] निर्गुण उपासना के—

अष्टांग राजयोग, लययोग. निश्चय योग।

[४] आत्म दर्शन के—

सहज योग, केवल एक ही।

इनमें किसी में दृढ़ धारणा होगी तब ही सिद्धि प्राप्त होगी। आगे इनका विस्तृत वर्णन किया है सो ग्रन्थ में देखना। भक्तियोग के सम्बन्ध में थोड़ासा ऐसा कहा है कि "योगी और ज्ञानी" बनने की इच्छा रखने वाले को पहिले भक्त बनना चाहिये। भक्ति निर्गुण और सगुण दो प्रकार की होती है। भक्ति के नव अङ्गों को नवधा भक्ति कहते हैं। सगुण भक्ति को अपरा और निर्गुण को परा कहते हैं। सगुण भक्ति के नव अङ्ग ये हैं :—

[१] श्रवण।	[४] पाद सेवन।	[७] दास्य भाव।
[२] कीर्तन।।	[५] अर्पण।	[८] सखा भाव और
[३] स्मरण।	[६] वन्दन।	[९] आत्म समर्पण।

(२) दूसरी भक्ति है परा। शुद्ध, बुद्ध, मुक्त सच्चिदानन्द का ध्यान करते हुये संसार को अपने ही रूप में देखना, यही निर्गुण, परा वा वैधी भक्ति कहाती है। इसको प्राप्त कर लेने के पीछे सदा सर्वदा आनन्द ही आनन्द है। इसमें

"मैं, तू" का अभेद होकर एकता होजाती है। यह द्वन्द्व भाव को समूल मिटा देती है। कहा है:—

"परा में अभेदता है भेद का न नाम कहीं,
स्पष्ट मैं सुनाता हूं सुनो ध्यान को लगा।
द्वन्द्व मिट जाय निर्द्वन्द्व भाव प्राप्त होय,
वृत्ति हो पवित्र और ब्रह्म ज्ञान दे जगा॥
सर्वदा सचेत रहे जगत से अचेत रहे,
त्यागे अहेत हेत राग द्वेष दे भगा।
परा भक्ति का प्रभाव "मैं तू" का हो अभाव,
"अमृत" अपना स्वभाव अजपा में दे लगा" ॥१॥

चार भाँति के भक्त होते हैं :—

चार भाँति के भक्तजन होते हैं जग माँहिं।
ज्ञानेच्छुक, ज्ञानी, दुखी और स्वार्थ लपटाहिं ॥१॥

पद्य भाग दो खण्डों में

इस गद्यवर्णनात्मक विभाग को पूर्ण करके, आगे दो खंडों में पद्यभाग (छंदादि) दे दिये हैं। उनकी सार सूची इस प्रकार है:—

१ [प्रथम खण्ड]

[१] ग्रंथ रचना का निर्देश
[२] गुरु प्रार्थना और महिमा
[३] प्रार्थना अष्टक १-२ षटपदी
[४] ध्यान गुरु देव का
[५] विनय चौवीसा
[६] ध्वनि राधेश्याम।
[७] भक्ति महिमा।
[८] दया महिमा।
[९] क्षमा महिमा।
[१०] संतोष महिमा।
[११] प्रार्थना महिमा।
[१२] सत्सङ्ग महिमा।
[१३] योगी की महिमा।
[१४] योगसार ९ कुण्डलियाँ।
[१५] करखा छंद।
[१६] ब्रह्मज्ञान २५ दोहे।
[१७] विषय विकार ३० दोहे।
[१८] अन्य उपदेश ९० दोहे।
[१९] उपदेशमय १६ कुंडलियाँ
[२०] चतुष्पदी (चौपदे)
[२१] मन की महिमा।
[२२] साधना।

२ [दूसरा खण्ड]

(इस खण्ड में राग रागनियां, लावनियां, गजलें इत्यादि हैं)

[१] राग काफी
[२] राग कालिंगड़ा
[३] राग पीलू बरवा
[४] राग आसावरी
[५] राग काफी फिर
[६] राग हेली
[७] राग पार
[८] राग मलार

कल्याण । [१५] पद ।
सोरठ विहाग [१६] गजल, भैरवी बागेसरी
माढ़ [१८] राग सोहनी प्रातः—प्रार्थना
७ मासिया [१६] लावनी राग विहाग
[२०] लावनी रंगत लंगड़ी
८ जोगिया [२१] लावनी रंगत बड़ी
९ मंगल [२२] रंगत चोबोला

❀ दोनों खण्ड समाप्त ❀

. प्रकार इन दोनों खंडों का सार थोड़ा दे दिया ग्रंथ में पढ़ने से जो आनन्द आवे, वह अकथनीय प्रकार "भूमिका" को पूर्ण करके हम कहते हैं कि में सब योगादि, आध्यात्मिकादि, सदुपदेशादि, संन्यासादि, विषयों के रहस्य और मर्म भली

भाँति वर्णन करके कवि ग्रंथकार ने जगत का बड़ा भारी उपकार किया है। अब यहां पर इस भूमिका को समाप्त समझें। इति शम्।

जयपुर ता० २४-३-४४ ई०
मि० चैत्र शु०१ सं० वि० २००२

पु० हरिनारायण शर्मा
बी० ए० विद्याभूषण
जयपुर।

श्री विलक्षण अवधूत

पर
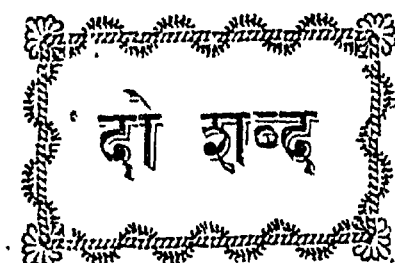
इस पुस्तक का प्रथम संस्करण वि० सं० १६८८ के फाल्गुण मास में शिवरात्रि के शुभ अवसर पर श्री अमृतानुराग (शङ्कर विलास) नाम से निकला था । मैंने इस पुस्तक का शान्ति पूर्वक अध्ययन किया तो ज्ञात हुआ कि इस में योगी राज अमृतनाथ जी के सदुपदेशों का साँगोपांग वर्णन किया गया है । इसका पठन करते समय पाठक योगानुराग के सरोवर में गोते लगाने लगता है । लेखक ने अपने पूज्य गुरु के गद्य उपदेशों का पद्य में अनुवाद किया है । समस्त पद्यावली सरस और सरल वर्णन-शैली का अनुसरण करती

हुई अपने उद्देश्य की पूर्ति की ओर अग्रसर होती है। कविता स्वाभाविक छटा प्रकट करती हुई पाठक के चित्त में वैराग्य तथा ईश्वर-भक्ति के भाव अनायास ही उत्पन्न कर देती है। इसमें योग सम्बन्धी क्रियाओं का पद्यबद्ध वर्णन किया गया है। इसको देखने से योगीराजों के क्रिया-कलापों का दृश्य पाठक के हृदय पट पर अङ्कित होने लगता है, परन्तु काव्य धर्म के बन्धनानुसार इन क्रियाओं की विशद व्याख्या न होने के कारण पाठकों को योग का वास्तविक रहस्य समझने में कुछ कठिनाई प्रकट होती है। इस कठिनाई को हल करने के विचार से ही लेखक ने इस पुस्तक का द्वितीय संस्करण निकालने का विचार किया है।

प्रस्तुत पुस्तक के द्वितीय संस्करण की ६ हस्तलिखित प्रतियों का मैंने अवलोकन किया। इस बार लेखक ने गद्य और पद्य दोनों में योग विषय का विवेचन किया है और योग-पथ प्रदर्शन करने का लेखक ने पूर्ण प्रयास किया है। गद्य और पद्य का मिश्रण पाठक की रुचि को विषय की ओर आकर्षित करता है। विशेष कर दोहा छन्दों की रचना सरल और स्वाभाविक रीत्यानुसार की गई है अतः शब्दों के साथ साथ ही लेखक का भाव हृदयङ्गम होता रहता है।

दो शब्द

बाबा अमृतनाथजी के चमत्कार पूर्ण चरित्रों के पढ़ने से ईश्वर-भक्ति की अपार महिमा प्रकट होती है। सांसारिक बहुधन्धी व्यक्तियों को संसार की असारता और भगवान पर अटल विश्वास रखने वाले महा पुरुषों की महानता का अनुभव होने लगता है। यदि कोई व्यक्ति ऐसे महात्माओं के सिद्धान्तों तथा उपदेशों का स्मरण रखते हुए गृहस्थ-जीवन निर्वाह करता रहे तो भी वह समय पाकर निर्वाण पद का भागी बन सकता है। इन उपदेशों के पढ़ने से भली भांति विदित होता है कि मनुष्य के कथन और कर्तव्य में कभी अन्तर नहीं होना चाहिये। यदि इन में अन्तर हो गया तो उसका सम्पूर्ण प्रयास निष्फल हो जाता है जैसे किसी ने कहा है :—

कहणीं मीठी खाँड सी, करणीं विष सी होय।
जे कहणी करणी हुवै (तो) विष ही अमृत होय॥

वास्तव में अमृतनाथजी के उपदेश सारगर्भित और शिक्षाप्रद हैं। अमृतनाथजी की जीवनी को पढ़ने से ऊँच नीच समझने का भाव भी भ्रमात्मक प्रतीत होता है। मनुष्यों को जाति विशेष में जन्म लेने का मिथ्याभिमान करना व्यर्थ है। ईश्वर की दृष्टि में तो सब ही जातियाँ समान महत्व रखती

हैं। कदाचित् जाति के मिथ्याभिमान की भावना को जन समाज में उग्र रूप धारण करते हुए देख कर ही ईश्वर ऐसी विभूतियों को साधारण कुलों में प्रादुर्भूत करके संसार को चेतावनी देता है। यह बात लोक प्रसिद्ध भी है कि "जाति-पाँति पूछो मत कोई, हरि को भजै सो हरिका होई" श्री अमृतनाथजी इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। सारांश यह है कि अमृतनाथजी अर्वाचीन समय के पहुंचे हुए और विरले महात्माओं में से एक थे। आशा है ऐसे उच्च कोटि के महात्माओं के उपदेश पाठकों के हृदय सरोवर में भक्ति की लहर अवश्य उत्पन्न करेंगे।

जीवित मृत अमृत जगत, अमृत आत्म लखात।
अमृत पी अमृत हुओ, अमृत अमृतनाथ ॥

तारीख
१५-६-४२ ई०

जोगीदान बारैठ
(सेवापुरा)

लेखक की ओर से निवेदन

पूज्य पाद गुरुदेव की असीम दया, प्रबल प्रेरणा एवं उत्तम अनुग्रह से आज यह ग्रन्थ "श्री विलक्षण अवधूत" (शंकरानन्द) प्रकाशित हो रहा है

इसको मुद्रण कराने के लिये १० वर्ष से मेरा विचार हो रहा था, प्रेस कापी तैयार थी। किन्तु उचित साधनों के अभाव के कारण अब तक मेरे जीवन का यह उत्तम कार्य रुक रहा था।

वास्तविक बात तो यह है कि जिस समय श्री गुरुदेव ने अपने इस प्रसाद को जनता के सन्मुख प्रकट करना, इस कार्य का सम्पादन करना उचित समझा ठीक उसी समय और उसी रूप में यह पूर्ण हो रहा है।

महात्माओं के दिव्य उपदेश और निर्मल चरित्र तथा प्रभाव शालिनी वाणी सदा से जन-कल्याण-कारक रही है उसी प्रकार यह भी जनता का पथ प्रदर्शन करेगी कल्याण पथ को प्रशस्त करेगी। ऐसी मेरी आशा है।

मैंने सं० १६८४ वि० के माघ शु० ५ को श्री गुरुदेव का संक्षिप्त जीवन चरित्र १०६ पृष्ठों में और सं० १६८८ वि० की महाशिवरात्रि को आपके उपदेशामृत पद्य-मय पुस्तक "श्री अमृतानुराग" (शंकर विलास) प्रकाशित किये थे।

प्रस्तुत ग्रन्थ वास्तव में उपर्युक्त दोनों पुस्तकों का ही एकीकरण संवर्धन एवं परिष्कृत रूप है। यद्यपि इस में योग सम्बन्धी अनेक प्रसंग एवं साधन नये लिखे गये हैं। परन्तु है यह सब उन्हीं का प्रतिबिम्ब एवं प्रकाश।

श्री गुरुदेव के विचार योग के वर्तमान ग्रन्थों के आधार पर नहीं हैं बहुत अंशों में नहीं हैं। योग शास्त्र के लिये क्रान्ति कारक हैं! किन्तु अनुभूत, व्यावहारिक और प्रत्यक्ष फल दाता हैं। इसमें सन्देह को स्थान नहीं।

मध्य काल के शासक एवं लेखकों ने योग साधन को कठिन मान कर और बना कर लिखवाया और लिखा और देश जाति तथा संसार का अहित किया। फलतः इस कल्याण कारक मार्ग से चलने योग्य मनुष्य को न रहने दिया। एक प्रकार से डराकर और सन्देह में डालकर हम को इस हमारी प्राचीन एवं सर्वोत्तम थाती से दूर कर दिये। लोगों ने समझ लिया कि योग साधन करना सम्भव और मुख्यतः गृहस्थी के लिये सम्भव नहीं। अतः इधर से लोगों का मन हट गया। यह देश का दुर्भाग्य था।

आपने अपने गहन अन्वेषण, कठोर परीक्षण और उग्र तपस्या के द्वारा जो अनुभव प्राप्त किया और तदनुसार उपदेश दिया है यह जन समाज की एक प्रकार से खोई हुई

थाती को पुनः हस्त गत कराने में परम सहायक सिद्ध हुआ है और होगा।

योग के आडम्बर पूर्ण साधनों में से आपने मुख्य तत्व निकाल कर "सहज योग" के रूप में संसार के सम्मुख स्पष्ट रूप से रख दिया है। यदि जिज्ञासु-जन चाहें तो 'सहजयोग' के द्वारा अपना कल्याण कर सकते हैं।

किन्तु आपके आदेश एवं अनुभव के अनुसार जब तक आहार विहार न बना लिया जाय, योग अथवा किसी दूसरे प्रकार के साधन समुचित रूप से पूर्ण नहीं हो सकते और हो नहीं सकता आत्मकल्याण। यह असंदिग्ध है।

आपका कथन है कि "सुधरे आहार विहार वेग मनका थमे"। जब आहार विहार सुधरे तब मनका वेग थमे इसकी चञ्चलता रुके तभी तो संसार के नश्वर पदार्थों से निवृत्ति मिले, तभी तो बुद्धि में समता एवं क्षमता उत्पन्न हो तभी तो सत्संग बने, गुरुदेव का उपदेश आदेश और दया प्राप्त हो। यह सब होने पर ही बहिर्मुखी वृत्तियाँ अन्तर्मुखी बनें और तभी कल्याण मार्ग प्रशस्त होकर आत्मानन्द में स्थिति हो।

आहार-विहार सम्बन्धी आपके अनुभव सर्वोत्तम सुख दायक एवं प्रत्यक्ष फल-दाता के रूप में संसार के सन्मुख प्रथम ही प्रथम प्रकट हुए हैं। अब तक किसी ने इस विषय पर ऐसे विचार नहीं प्रकट किये। यह तो आपकी एक विशेष देन है।

ब्रह्मचर्य के विषय में आपका कथन है कि "जिनका वीर्य अखण्ड है अर्ध-मुक्त है सोय"। कैसा महत्व है ब्रह्मचर्य का आज हम इसको भूल गये हैं, पशु से भी नीच-पामर बन गये हैं। "मरणं विन्दु पातनात जीवनं विन्दु धारणात" सूत्र की ओर हमारा ध्यान नहीं जाता इसके विपरीत आचरण हो गया है हमारा संयम, इन्द्रिय संयम का नाम नहीं रहा।

वीर्य की परिपक्वता बाहुल्य एवं रक्षा के विना कुछ भी नहीं बुद्धि नहीं; बल नहीं, क्षमता और समता नहीं, विचार नहीं, दृढ़ता और साहस नहीं, दया और संतोष नहीं, एकान्त प्रियता और तपस्या नहीं प्रकाश नहीं। केवल अन्धकार लौलुपता तृष्णा, दुर्वासना, निर्वीर्यता, चिड़चिड़ा पन, आदि तमोगुण प्रसाद ही हमारे पास है। इसी से तो संसार में दुःख है सन्ताप है, अशान्ति है आपका कथन है "अमृत काया नगर को वीर्य प्रकाशनहार" वीर्य के बाहुल्य विना ऊर्ध्वरेता बने विना प्रकाश कहाँ! अन्धकार में धक्के खाना पड़ता है। जब सांसारिक कार्य ही निर्वीर्य या अल्प वीर्य मानव यह खण्डित मूर्तियाँ नहीं कर पाती-कुशलता से नहीं कर पाती तो सहजयोग-आत्मदर्शन तो बहुत दूर की बात है!!! अतः वीर्य रक्षा करना मानव का प्रधान धर्म है और वीर्य रक्षा के लिये आहार विहार का सुधार, परिमार्जन अत्यावश्यक है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में वैराग्य भक्ति और योग के सुलभ साधन हैं यदि कोई वीर पुरुष इन्हें स्वीकार और धारण करे तो परम

शान्ति प्राप्त हो सकती है। जाति वर्ण और लिंग भेद इन साधनों में कोई बाधा नहीं डालते।

इस ग्रन्थ में कुल मिला कर मूलरूप में ४५० पृष्ठ हैं। इनमें १११ पृष्ठ में जीवन चरित्र तीन खण्ड में समाप्त हुआ है। यह संक्षिप्त है क्योंकि आपके एकाकी भ्रमण करने के कारण अधिकांश बातों का पता न चल सका। यह गद्यात्मक है। जन समाज के लिये आदर्श है।

साधन खण्ड दो भाग में पूर्ण हुआ है। इस में १६३ पृष्ठ हैं। यह गद्य-पद्यात्मक है। इसमें आपके अनुभूत प्रसंगों पर सुन्दर उपदेश और विवेचना है। सृष्टि क्रम से आरम्भ होकर भविष्य वाणी पर समाप्त होता है। इसमें वेदान्त, योग भक्ति और ब्रह्मचर्य आदि विषयों पर-प्रमुख विषयों पर आपके स्वतंत्र विचार भरे हैं।

इस के पश्चात् पद्यभाग का आरम्भ होता है और यह भी दो खण्ड में ही पूर्ण हुआ है। इस में १४५ पृष्ठ हैं और कुल मिलाकर ६३४ पूरे पद्य हैं। इनमें दोहे, चौपाई, छन्द, अष्टक, कुण्डलियां, गजलें, पद्य, लावनी, चौबोले और राग रागिनी हैं। यह सब भी योग, भक्ति, वैराग्य, वेदान्त आदि आध्यात्मिक और व्यावहारिक शिक्षा मय सरल पद्य हैं।

यह सब गुरुदेव ही के वरदान दया और प्रेरणा का फल है। सम्भव है और सही है कि इनमें त्रुटियां रही ० ।

यह सब मेरा बुद्धि दोष मान कर पाठक मुझे क्षमा करें और सुधार के लिये सूचना दें।

आपका जीवन और कार्य जन समाज के लिये अत्युच्च एवं आदर्श है। पूज्य गुरुदेव का शरीर एक नैमित्यक शरीर था। आप के समान सन्त संसार में बहुत कम हुए होंगे।

आप अखण्ड ब्रह्मचारी, पूर्ण योगी, सर्वस्व त्यागी, परम उदार, अतिशय दयालु, निस्पृह, निष्पक्ष, आदर्श परोपकारी एवं क्षमता तथा समता की प्रति मूर्ति थे।

वर्तमान काल के ढोंगी वेदान्ती, दम्भी साधु और लालची विद्वान आपके सामने से नत मस्तक और निरुत्तर होकर चले जाते थे।

आप का त्याग, तपस्या, आहार विहार और शिक्षा आदि जन समाज के लिये आदर्श थे और हैं। आप व्यवसाई शिक्षक नहीं। वास्तविक शिक्षक योग्य पात्र में उचित पदार्थ भरने वाले सद्गुरु थे।

आपका कथन है कि जब तक हृदय भक्ति-भाव पूर्ण नहीं हो जाता तब तक योग प्राप्ति नहीं हो सकती और योग प्राप्ति बिना आत्म कल्याण नहीं होता। यह ध्रुव सत्य है।

लेख का आकार बढ़ता है अतः शम्।

पूज्य स्वामी ज्योति नाथ जी ने इस ग्रन्थ को अपने नाम से प्रकाशित होने की स्वीकृति प्रदान की है अतः मैं आपका चिरकृतज्ञ हूं।

जयपुर के साहित्यज्ञ वयोवृद्ध स्वर्गीय पुरोहित श्री हरी-नारायणजी बी. ए. विद्या भूषण ने इस ग्रन्थ की प्रस्तावना एवं भूमिका लिखने की ऐसे समय में कृपा की जब कि वह रुग्ण थे। क्या ही अच्छा होता वह मुझे प्रेम करने वाले भूमिका लेखक आज इस ग्रन्थ को देखते ! मैं स्वर्गीय आत्मा का चिर ऋणी हूं।

इस ग्रन्थ पर दो शब्द लिखने वाले हिन्दी के सुप्रसिद्ध विद्वान और काव्य-कला के मर्मज्ञ श्री जोगी दान बारैठ सेवापुरा (जयपुर) का भी आभारी हूं। आपने मेरे आग्रह पर पूरे ग्रन्थ को देखा और कई स्थानों पर सुधार किया है।

श्री गुरुदेव के अनन्य भक्त और मेरे सुहृद श्रीगिरधारीलाल चूड़ी वाले लक्ष्मणगढ़ निवासी का मैं कृतज्ञ हूं जिन्होंने समय समय पर मुझे ग्रन्थ प्रकाशन में अच्छी सम्मति दी है।

श्री रामेश्वर पैड़ी वाल कलकत्ता निवासी को भी मैं धन्यवाद देता हूं जिन्होंने श्री गुरुदेव और श्री स्वामी ज्योति-नाथजी के ब्लाक बनवा कर तथा चित्र छपवा कर पुस्तक में प्रकाशनार्थ दिये हैं इस से ग्रन्थ की शोभा और उपादेयता बढ़ी है।

अपने पुराने मित्र और अजमेरा प्रिंटिंग वर्क्स, जयपुर के स्वामी श्री केशरलाल अजमेरा का मैं धन्यवाद करता हूं, जिन्होंने एन-केन प्रकारेण इस कुसमय में मुझे कागज उपलब्ध करवाया और अपने प्रेस में इस ग्रन्थ का मुद्रण किया।

अन्त में, कारुणीक श्री गुरुदेव से विनम्र प्रार्थना करता हूं कि यदि मैं अपने भाग्य और आचरण के वश आपके बतलाये हुए दिव्य-मार्ग में अटकूँ या भटक जाऊँ तो आप अपनी दयामयी दृष्टि, पवित्र कर कमल, सूक्ष्म संकेत और उचित प्रताड़ना से मुझे सजग सावधान करते रहने की कृपा करें।

सकल तीर्थ गुरु चरण में, सेवा जप तप योग।
वचन वेद के सूत्र हैं, "शंकर" छूट गया रोग॥

ॐ शान्ति ! प्रेम !! आनन्द !!!

दुर्गाप्रसाद त्रिवेदी "शंकर"
आमेर (मह्रा राजस्थान प्रान्त)

❀ श्री विलक्षण अवधूत ❀

जीवन चरित्र प्रथम खण्ड

प्रथम उल्लास

जन्म

उषाकाल की स्वर्गीय पवन अपनी शीतल मन्द और सुगन्धित लहरों से प्राणी मात्र को आनन्द प्रदान कर रही है। पक्षियों की कल-रव-गति गायों का रँभाना वसन्त-ऋतु की धीमी २ सुगन्ध, तारागण की टिमटिमाहट और ग्रामीण मनुष्यों को हल्की शब्दावली से रात्रि अपना अन्तिम भाग समाप्त कर रही है।

राजस्थान के बालुकामय भू भाग में बिसाऊ नगर के समीप "पिलानी" नाम का छोटा ग्राम है। यहाँ पर न शहरों की बनावटी शोभा है, न शहरियों की चतुराई का आडम्बर और न मनुष्य को सात्विक पथ से भ्रष्ठ करने वाले विलास के सामान हैं। छप्पर दार छोटे छोटे किन्तु साफ सुथरे मिट्टी के बने हुए घर, सीधे साधे मनुष्य और इनके जीवन के आधार पशु बस यही इस ग्राम का सर्वस्व है।

इसी ग्राम में चैतनराम के एक सद् गृहस्थ कृषक (जाट) निवास करते थे। आज इनके घर में कुछ विशेषता थी। बात यह है कि इनकी स्त्री गर्भवती है और कोई बालक उत्पन्न होने वाला है।

ठीक चैत्र शुकला १ सं० १९०९ वि० को ब्राह्म मुहूर्त में एक बालक उत्पन्न हुआ। घर में आनन्द गीत गाये जाने लगे और ग्राम भर में तत्काल सूचना फैल गई। क्योंकि चेतनराम एक सज्जन मनुष्य थे अतः सर्व प्रिय थे। गाँव के स्त्री पुरुष एकत्र होने लगे। यद्यपि चैतन राम के इससे पूर्व ४ सन्तान थीं। एक पुत्र 'मनसाराम' और तीन पुत्री—परन्तु इस पाँचवीं सन्तान का होना विशेषता रखता है। आज घर और बाहर मनुष्यों के चित्त में अद्भुत आनन्द और अनोखा उल्लास है।

नव-जात शिशु का जन्म विचित्र रूप में हुआ। गर्भ से बाहर होते समय माता को थोड़ी बहुत पीड़ा होती है परन्तु इस माता को बिलकुल न हुई, साधारणतः बालक का शिर पहले गर्भ से बाहर होता है परन्तु इस बालक के पैर बाहर को आये थे। विशेष कर बालक गर्भ से बाहर होते ही रोता है, यह हँसा था मुख में दन्तावली विद्यमान थी और १ वर्ष के पुष्ट बालक जैसा शरीर था। कान्तिमान् ललाट, गौर वर्ण, दिव्य मुख, आजानुबाहु एवं कमल के समान नेत्र इस बालक की विशेषता प्रगट कर रहे थे।

ज्योतिषी को बुला कर उत्पन्न हुए बालक का लग्न और भविष्य पूछने पर ज्योतिषी ने अपनी गणना लगा कर बतलाया कि यह एक "दैवी पुरुष" है। यह बालक आपके कुल का दीपक होगा, इसका जन्म एक ऐसे नक्षत्र में हुआ है कि यह दयालु, परोपकारी पूर्ण ब्रह्मचारी, राग द्वेष से रहित, ईश्वरीय

ज्ञान का पूर्ण ज्ञाता महा योगी और पूर्ण वैरागी होगा। यह वालक वाल्यकाल से ही अपना अद्भुत चमत्कार संसार को दिखावेगा। और कुछ समय पश्चात् सन्यासी वन कर दुनियां में भ्रमण करता रहेगा। वड़े २ पण्डित और साधु इसकी विचित्रता से चकित होंगे और इसका यश बहुत फैलेगा। इस के अमृत-मय उपदेश और चरित्र से हजारों मनुष्यों का उद्धार होगा, वहुतों को इसकी दया दृष्टि से आत्मानन्द-प्राप्त होगा, लाखों रोगी और दुखी इसकी कृपा कटाक्ष से सुखी होंगे।

यह संसार के सामने अपने अद्भुत अनुभव रखेगा और इसके आदर्श पर चल कर मनुष्य समाज अपना पर्याप्त उद्धार करने में समर्थ होगा सारांश यह है कि यह "दैवी पुरुष" संसार में, सन्मार्ग सौजन्य सात्विकता और ईश्वर-भक्ति का अभ्युत्थान करने को प्रगट हुआ है। इसका नाम यशराम है। यह अपने यश की पताका वहुत ऊँची फहरायेगा और वह चिरकाल तक वनी रहेगी। वालक का भविष्य सुन कर चेतनराम परमानन्दित हुए। उचित दक्षिणा देकर ज्योतिषी को विदा किया।

द्वितीयोल्लास २

श्रीचेतनराम का स्वप्न

नव जात वालक ने अव तक माता का दूध नहीं पिया यद्यपि पाँचवां दिन व्यतीत हो गया। इस कारण घर में, ग्राम में और मुख्यतः चेतनराम जी के हृदय में भारी चिन्ता

छाई हुई थी। रात को जब चेतनराम चिन्तामग्न अवस्था में लेटे २ निद्रा देवी की गोद में पहुँचे तो इन्होंने एक विचित्र स्वप्न देखा।

बालक ने "दिव्य पुरुष" के रूप में चेतनराम को दर्शन दिया इसकी कान्ति और शान्त प्रभा से चेतनराम अतीव प्रभावित हुए और इन्हें स्पष्ट सुनाई देने लगा कि "तुम क्या सुख से सो रहे हो किस स्वप्नावस्था को सत्य मान कर आनन्द की तान गाते हो। संसार अनित्य है एवं इसके भोग भी अनित्य हैं। आज जो वस्तु नेत्रों से देखने को मिलती है वह कल लुप्त हो जायगी उसका चिन्ह मात्र भी देखने को अवशेष न रहेगा, स्त्री पुत्र, धन, कुटुम्ब, बल, वीर्य, राज्य, विद्या, इत्यादि जो कुछ दृश्यमान पदार्थ हैं सब नाशमान हैं फिर क्यों इनमें फँस कर अलभ्य मनुष्य जीवन व्यर्थ गँवा रहे हो।

मैं यद्यपि तुम्हारी स्त्री के गर्भ से पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ हूं, किन्तु न तुम मुझे अपना पुत्र समझो और न मैं तुमको अपना पिता ही समझता हूं। इस संसार में न जाने कितनी बार पुत्र और पिता आदि मानवी देह धारण करके यह आत्मा जन्मता और मरता रहा है इसका कोई अन्त नहीं है।

तुम किस भ्रम में पड़े हो संसार-माया इन्द्र-जाल का खेल है आशा में विश्वास, माया में मोह, सुख में सान्त्वना लाभ में हर्ष और हानि में दुख का अनुभव होता है किन्तु यह सब क्रियाएँ शरीर यन्त्र का सञ्चालन मात्र हैं। देखो गर्भ में कैसी

यतना भोगनी पड़ती है और जन्म लेने पर बाल्यावस्था किस अज्ञान और पराधीनता में व्यतीत होती है न खा-पी सकता है न चलने फिरने और अपनी इच्छा पूर्ण करने का सामर्थ्य रहती है, बड़े कष्ट में यह अवस्था कटती है । इसके बाद किशोरावस्था का आरम्भ होता है। घर के काम काज, माता पिता की ताड़ना, पढ़ने लिखने का कष्ट, और खेल कूद की इच्छाओं में बाधा के कारण दुखी रहना पड़ता है। इसके पश्चात् युवावस्था आरम्भ होती है। विवाह बन्धन में पड़ एवं स्त्री की मोह फाँस में फँस कर विषयी बन जाता है। दिन रात विषयों की पूर्ति में आतुर-रहता है, धन कमाने की चिन्ता में इधर उधर भटकता है। कहीं झिड़की खानी पड़ती है, झूठ बोलनी पड़ती है। चोरी और बेईमानी का आधार लेता है सारांश यह है कि चाहे जिस प्रकार की बुराई भलाई के द्वारा पैसा कमा कर लाता है। सन्तान पैदा होती है इनकी ममता लाड़ प्यार में अपने आपको भूला रहता है वृद्ध माता पिता अब भार दिखाई देने लगते हैं सन्तान यदि नीच निकल आती है तो दिन रात अपने कर्मों को रोता हुआ हाय हाय करके नीच सन्तान से दुखी रहता है किन्तु फिर भी इनकी चिन्ता करनी पड़ती है और इस प्रकार कष्ट में ही सुख मान कर युवावस्था को पूरी कर देता है।

अब आती है वृद्धावस्था इसमें इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं शरीर जर्जर और निर्बल तथा रोगी होकर केवल भार रूप

हो जाता है। अपनी देह की आवश्यकताएँ भी अपने आप पूरी नहीं कर सकता पर-मुखापेक्षी बनजाता है। जिस सन्तान को बड़े लाड़ प्यार से और कष्ट पाकर पोषित की थी उसकी अब खुशामद करनी पड़ती है। किन्तु वह प्यारी सन्तान उपेक्षा करती है, अवहेलना करती है और यहाँ तक कि स्पष्ट शब्दों में वृद्ध माता पिता को दुर-दुराया और फटकारा जाता है।

किन्तु फिर भी ममता और अज्ञान के वशीभूत होकर इस दुखमय जीवन को बनाये रखने की इच्छा प्रबल होती जाती है वृद्धावस्था में मनुष्य की बुद्धि वृद्ध हो जाती है इससे कोई काम सूचारु रूप से नहीं बन सकता।

अब आता है मृत्यु का घोर दुःखदायक समय। इस समय न श्वास ठीक चलता है, न वाणी काम देती है न भूख प्यास की सुधि है न अपने पराये का ज्ञान है, न बुराई भलाई का ध्यान है। है तो केवल इतना ही है कि किसी प्रकार शान्ति मिले। मृत्यु के समय—शरीर से प्राण वायु के निकलने के समय जो असह्य कष्ट होता है वह वाणी से कहा नहीं जा सकता है। किसी प्रकार मृत्यु होती है और फिर जन्म लेना पड़ता है।

यह है जन्म-मृत्यु की कहानी ! इस आगमापायी व्यवहार को सुखमय समझ कर इसमें फँसे रहना कहाँ तक उत्तम

और उचित है इस पर निर्मल विवेक से विचार करो। यद्यपि मेरी इन बातों से तुमको विस्मय अवश्य होगा परन्तु इनको सत्य जानो, मेरी बातों पर विश्वास करो और इस कठिन यातना से मुक्ति पाने का प्रयत्न करो। मेरा जन्म तुम्हारे घर में होना यह तुम्हारे बहुत बड़े पुण्य का फल है!

इसको तुम स्वयं जानोगे और पीछे तुम्हारा अवश्य ही कल्याण होगा। मेरे इस शरीर द्वारा कैसे २ कार्य होंगे यह भी तुम अपनी आँखों से देखोगे, किन्तु जो ज्ञान तुमको इस समय है वह पीछे रहना कठिन है। जैसे अर्जुन को भगवान कृष्ण के संग रहने और उनका सखा होने पर भी वह ज्ञान जो कृष्ण विषय में होना चाहिये था न उत्पन्न हुआ और अतीव पश्चात्ताप् करना पड़ा।

लो अब मैं जाता हूं तुमको मेरी शिक्षा याद रखकर इसका पूर्णतया पालन करना चाहिए नहीं तो जो होना है वही होगा इतना कह कर वह दिव्यमूर्ति अदृश्य हो गई।

चेतनराम की निद्रा भङ्ग हो गई। अब वह इस विचित्र स्वप्न पर गम्भीरता से विचार करने लगे। रात्रि समाप्त होने पर जब चौपाल में आये, बहुत से मनुष्य बैठे थे, इनकी मुख मुद्रा को मलिन देख कर इनसे इनका कारण पूछा तो चेतनराम ने रात का स्वप्न और अब तक बालक का दूध न पीना आदि बातें कह सुनाई। इसे सुन कर सब ही लोग असमञ्जस में पड़

गये और इसी विषय पर कई प्रकार की बातें होती रहीं। होते २ यह बात गाँव भर में फैल गई।

अब बालक ने दूध पी लिया और धीरे २ यह बात लोग भूल गये। समय २ पर चेतनराम के तीन पुत्र चैनसुख, टीकूराम, और धानूराम उत्पन्न हुए। अब यह कुटुम्ब खासा कुटुम्ब हो गया और आनन्द पूर्वक रहने लगे।

तृतीयोल्लास ३

बाल्यकाल

अब बालक "यशराम" शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति बढ़ने लगे और अद्भुत चेष्टाओं द्वारा घर वालों को चकित करने लगे। छः मास के होने पर तो आप दो वर्ष के बालक की भाँति क्रीड़ा करने लगे। अब आप प्रायः डेढ़ वर्ष के हो गये तो संग में खेलने वाले ४–६ वर्ष के बालकों को हराने लगे और दौड़ने में तो आप ऐसे तेज हो गए कि एक अच्छा युवक भी आपको न पकड़ पाता था। प्रथम तो आपको किसी प्रकार की वस्तु से ममता थी ही नहीं और यदि पास में कोई चीज हुई और किसी ने माँगली तो तत्काल उसे दे डालते थे (आगे में पुस्तक के नायक को "आप" लिखूँगा।) एक दिन जब कि आप प्रायः ३ वर्ष के हो गये थे। एक साधु आया और घर के दरवाजे में खड़ा रहा। आप अपने साथियों के साथ खेल रहे थे। साधु ने कहा "सुनतू जैसा जाट, तेरे खुल गये हृदय के कपाट।"

लोग इस बात को सुन कर साधु से कुछ बातें करना चाहते थे परन्तु साधु तत्काल वहाँ से चल दिया।
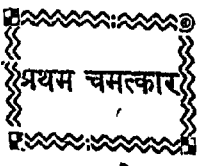
आपकी दयालुता, त्याग शारीरिक बल और दैवी-शक्ति अब प्रगट होने लगी थी। आपका दृढ और बड़ा शरीर भारी मस्तक, आजानुबाहु और विशाल वक्षस्थल, दिव्य नेत्र, मधुर और बल पूर्ण वाणी, निर्भीक स्वभाव, सरलता, दृढता एवं अचञ्चलता देख कर लोग आश्चर्यान्वित होने लगे थे।

धीरे धीरे आपके अद्भुत कार्य और दर्शनीय शरीर की चर्चा आस पास के गाँवों में फैल गई, और जनता दौड़ दौड़ कर आपके दर्शनार्थ आती थी और आपके दर्शन करके नाना प्रकार की बातें करती हुई अतृप्त हृदय लौट कर जाती थी। आपके दर्शनों से लोगों का मन भरता ही न था। सब कहते थे "भाई चेतनराम तुम्हारे घर में तो राम ने जन्म लिया है।"

आप बालको चित खेल कूद के समय अतीव गम्भीर एवं मन्द हास्य से लोगों को मन्त्र मुग्ध सा कर देते थे। सखा साथियों के साथ प्रेम और सहानुभूति का व्यवहार करते थे। साथी बालक स्वभावतः आप से डरे हुए से प्रेम के बन्धन में बँधे रहते थे। माता-पिता भाई आदि घर वाले आपकी क्रियाओं को बड़े ध्यान से देखते और प्रभावित रहते थे। कार्य करने में आप ऐसे दत्त-चित्त हो जाते थे कि किसी के कहने सुनने का कुछ भी प्रभाव न पड़ता था।

आपका खान-पान इसी अवस्था से इतना नियत और नियमित एवं सादा था कि लोग आश्चर्य करते थे। साथी बालक भी आपको एक आदर्श मान कर अनुकरण किया करते थे। धीरे २ घर वाले भी आपकी क्रियाओं की नकल करने लगे थे। बातों ही बातों में आप घर वाले साथी और अन्य लोगों को आध्यात्मिक शिक्षा की बातें कह जाते थे, जिनसे लोग बहुत ही प्रभावित होते थे और आपके प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ रही थी।

कभी २ आप गम्भीर मुद्रा धारण करके एकान्त में बैठ जाते थे और घण्टों बैठे रहते थे। इस काल आपके पास जाने तथा बात करने का साहस किसी को न होता था। माता के साथ आप बड़ा प्रेम पूर्ण व्यवहार किया करते थे और यदि थोड़ा बहुत प्रभाव मानते थे तो माता का। आपके व्यवहार से माता भी बड़ी सन्तुष्ट रहती थी और आपके किसी कार्य में बाधा न डालती थी। प्रथम तो चेतनराम स्वयं ही सज्जन साधु भक्त और सदाचारी पुरुष थे अतः घर में सदा ही शान्ति और प्रेम रहता था, परन्तु आपके जन्म धारण करने के पश्चात् तो घर में सर्वदा स्वर्गीय वातावरण रहता था।

प्रथम चमत्कार

चेतनराम जी का पूर्व निवास बऊ (सीकर) था अब पुनः वहीं जाकर रहने का निश्चय हुआ और आप से भी पूछा गया तो आप सहमत हो गए। घर का सामान ऊँटों

तथा बैल गाड़ियों पर रखा और चलने को प्रस्तुत हुए। ग्राम निवासी इस परिवार से मुख्यतः आपसे बहुत प्रेम करते थे अब वियोग का समय देख कर दुखी हुए, यहीं रहने का आग्रह करने लगे। आपके सखा बालक किसी प्रकार भी आपको न छोड़ते थे, यहीं रहने का या स्वयं साथ चलने का आग्रह कर रहे थे। यह समय बड़ा हृदय द्रावक था क्योंकि "मिलन भलो बिछुरन बुरो, मिल बिछुरो मत कोय" के अनुसार वियोग होना बड़ा दुःख दायक होता है। आप बड़े गम्भीर भाव से बालकों को बोले तुम लोग मुझ से प्रेम करते हो तो सुनो "जब मुझे याद करोगे उसी समय तुम्हारे पास आऊँगा" यह सुनते ही बालकों पर गहरा प्रभाव पड़ा और वह तत्काल आपको विदा करने पर राजी हो गए।

सब लोग सवारियों में बैठे आपको भी बैठने के वास्ते कहा परन्तु आपने सवारी में बैठ कर चलना अस्वीकार कर दिया और बोले "मैं पैदल चलूँगा" और तुमसे पहिले पहुँचूँगा। इस पर कुछ लोगों ने आपत्ति की परन्तु आपके स्वभाव को भली प्रकार जानने वाली माता ने कहा इससे आग्रह मत करो जैसा यह चाहे वैसा करने दो। अस्तु, ऊँट और गाडियों पर बैठ कर लोग चलने लगे आप भी कुछ दूर तक इनके संग चले किन्तु पीछे आपने इनका साथ छोड़ दिया और अन्य मार्ग से चले "बऊ" जा पहुँचे और एकान्त में जाकर लेट रहे। जब घर के लोग आपके विषय में चिन्ता करते हुए बऊ पहुँचे

और आप को न पाया तो वहुत चिन्तित हुए। परिचित लोगों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि वह तो ३ घण्टे पूर्व ही आ पहुँचा था। कुछ देर में आप घर वालों के पास आ गए और इनकी चिन्ता दूर हुई।

पिलाणी से वऊ २३ कोस है। ३ वर्ष के वालक का २३ कोस तक पैदल चल कर ऊँटों से तीन घंटे पूर्व पहुँचना, मार्ग का न जानना, किसी प्रकार का भय न मानना एक ऐसी वात है जो चाहे जैसे मनुष्य को भी चकित किये विना नहीं रह सकती।

ग्राम और घर के तथा समीप के ग्रामीण मनुष्य इस दुष्कर कार्य को सुनकर अचम्भित हो गए और ऐसे विलक्षण वालक के दर्शनार्थ आने लगे। धीरे २ यह वात दूर २ तक फैल गई और कई दिन तक दर्शनार्थियों की भीड़ रही। "कोई आपको गरुड़ का अवतार कहता था कोई शिव का और कोई गोरक्षनाथ का अवतार कह कर अपने को तृप्त करते थे"। इस कार्य से आप वहुत प्रसिद्ध हो गये और घर वालों ने आपको सदा के लिए "दैवी पुरुष" मान लिया। आपके शरीर का ढङ्ग इन दिनों वड़ा विलक्षण और दर्शनीय था "होनहार विरवान के होत चीकने पात"।

चतुर्थोल्लास

युवक के समान

आपकी आयु अब ७ वर्ष की हुई होगी कि शरीर का आकार और ढङ्ग था १५ वर्ष के कुमार के समान, मुख की कान्ति के सामने लोग नेत्र न उठा सकते थे। बल तो पूर्ण युवा और बलवान युवक के बल को मन्द करता था। किसानों के रहन सहन के अनुसार इस आयु का बालक पशु चराने को वन में जाना चाहिए परन्तु आपसे कोई भी इस विषय में कुछ भी न कहता था।

समान आयु के बालक जब वन में पशु चराने के अर्थ जाते तो आप भी अपने पशु लेकर उनके साथ चले जाते परन्तु वन में जाकर एकान्त में बैठे रहते, न किसी से बोलना न पशुओं की सम्भाल करना। पशु भी आप से कुछ ऐसा प्रेम करने लगे कि जिस प्रकार मनुष्य अपने साथी पर करता है। नियत स्थान में फिरना चरना और नियमित समय पर घर को लौटना यह पशुओं का स्वभाव हो गया। आप कई २ दिन तक बिना अन्न जल के वन में रह जाते। घर वाले इस पर चिन्तित हो कर ढूँढते परन्तु आपको न पाकर हताश लौट आते थे। आपके वियोग से पशु भी उदास रहा करते थे।

घर के लोग विशेष कर आपकी माता हठात् आप को भोजन वस्त्र देते परन्तु बहुत कम बार आप शरीर रक्षार्थ भोजनादि लिया करते थे।

अपनी इच्छा से जब कभी आप गृह कार्य करते तो ४, ६ मनुष्यों जितना कार्य थोड़े समय में ही निपटा दिया करते थे। कई दिन तक खान-पान बन्द और कभी खाते पीते तो कई दिन का एक ही बार खा, पी लेते थे। इससे लोग आश्चर्य चकित रहते थे।

आप जब कभी बात चीत करते तो उपदेश-मय किया करते। कहते संसार अनित्य है, इसके स्वप्न-तुल्य व्यवहार में फँस कर अपना बहु मूल्य समय नष्ट करना भारी भूल है। जहाँ तक हो सके खान-पान कम करो, व्यवहारी वस्तुओं की आवश्यकता कम करो जिससे जीवन का आनन्द आवे।"

आप की एक सहोदरा (बहिन) जिसका नाम "न्योजाँ" था। पास के ही ग्राम "जालेऊ" में ब्याही थी. दुर्भाग्य से इसका पति मर गया। इसके एक पुत्री और एक पुत्र था यह कुछ ऋणी थी बोहरे लोग इसको दुःख दिया करते थे। इससे वह सदा उदास रहा करती थी। आप उसके पास जाते और ढ़ाढस (विश्वास) दिया करते थे।

बर्षात के दिनों आप "न्योजाँ" बाई को अपने ग्राम बऊ में लाकर खेती करवाई। जब धान पक कर तैयार हुआ और काट कर खलियान में एकत्र किया गया तो लोगों ने अनुमान लगाया कि ६-१० मण अन्न निकलेगा। आपने कहा जाओ सब

लोग मैं ही इस धान को निकालूँगा। जब धान निकाला गया तो वह ७० मन हुआ, लोग आश्चर्य करने लगे और वहिन प्रसन्न हो गई। इसका ऋण चुक गया और खाने के लिए भी रह गया।

एक वार अपने पिता और भाई मनसाराम सहित अपने खेत में बैठे थे, मनसाराम जल लेने को चले आप भी एक मटका लेकर साथ हो लिये। पानी दूर से लाना पड़ता था। घड़े भर कर लौटने पर आपका घड़ा किसी कारण से गिर कर टूट गया। दूर से लाया हुआ पानी व्यर्थ जाने से चिढ़ कर आप वहीं खड़े होकर कहने लगे "यदि आज इस खेत में पानी न भर जायगा तो मैं अपना शरीर त्याग दूँगा" इस भयानक प्रतिज्ञा को सुन कर मनसाराम घबरा गये।

रात को जोर की वर्षा हुई और खेत की तलैयों में पानी भर गया इस घटना से लोगों को आश्चर्य और आपके प्रति सद्-भावना उत्पन्न हुई।

अक्षरीय ज्ञान से अनभिज्ञ होने पर भी आप दर्शन, शास्त्र, पुराण, स्मृति आदि की बातों को यथावत् समझा दिया करते थे।

आप का प्रेमी भोजन "छाछ (लस्सी) राबड़ी, मतीरा, शहद गाजर, मूली, आदि था। इन्हीं पदार्थों के खाने की आप विशेष रूप से शिक्षा एवं सम्मति दिया करते थे।

जब इस प्रकार आपकी अद्भुत् बातें आस पास के ग्रामों में फैली तो जनता आपके दर्शनार्थ आने लगी। आपकी

उदासीनता और समान व्यवहार लोगों को चकित करते थे कई रोगी भी आपके पास आने लगे थे।

आप दयालु थे योंही कहते भाई, जैसे तुम हो वैसा ही मैं हूँ। मैं तो छाछ रावड़ी खाता हूं तुम भी खाया करो लोग आपके इस कथन पर विश्वाश करते छाछ रावड़ी खाते इससे रोगियों का रोग मिट जाता था। आप सर्वदा ही दृढ़ विश्वासी बनने का आदेश दिया करते थे।

अब आप युवावस्था को पहुँचने लगे थे। चेतनराम जी अपनी सन्तति का विवाह क्रमशः कर चुके थे। आपका भी नम्बर आया। जब आपको ज्ञात हुआ कि मेरा भी विवाह किया जाने वाला है. तब आपने स्पष्ट शब्दों में कहा, "मैं कदापि विवाह न करूँगा आजन्म ब्रह्मचारी रहूँगा। आपकी इस भीष्म प्रतिज्ञा से लोग स्तब्ध रह गए। किसी का साहस न हुआ कि विवाह के सम्बन्ध में आपसे कुछ वार्तालाप करें।

आपका व्यवहार सब लोगों के साथ समान रूप का रहता था आपको न पाने का हर्ष होता था न जाने का शोक। आपका न कोई मित्र था न कोई शत्रु था, आपकी उदासीनता प्रति दिन बढ़ती जाती थी। लोग आप से प्रभावित होकर डरते रहा करते थे।

अब आपकी आयु तीस वर्ष के निकट पहुँच गई थी। संसार से अलग रहने की आपकी इच्छा अतीव बलवती

और स्वभाव में प्रबल वैराग्य के लक्षण दिखाई देने लगे थे। परन्तु माता की स्नेह-पूर्ण वृत्ति आपको बलात् रोक रही थी।

दैव योग से चेतनरामजी का चित्त अब "बऊ" ग्राम से उठ गया और इनका विचार "उदासर" (बीकानेर) जाकर रहने का हुआ, अतएव अपने कुटुम्ब सहित उदासर पहुंच गये। यहाँ के ठाकुर (जागीरदार) अभयसिंह सज्जन प्रकृति के पुरुष थे चेतनरामजी से इनकी मैत्री हो गई। यहाँ आनन्द पूर्वक रहने लगे। आपके विचित्र कार्यों से ठाकुर अभयसिंह अतीव प्रभावित हुए और अपने पुत्र बलवन्तसिंह सहित ठाकुर आपके अनन्य भक्त हो गये और आपको दैवी पुरुष और सच्चा सन्त मान कर आपकी आज्ञानुसार रहन सहन बना लिया।

यहाँ पर आपके द्वारा कई असाध्य रोगी रोग मुक्त हुए। और कई जिज्ञासु आत्म-चिन्तन में लय हुए। दूर दूर तक आपका यश फैल गया। शान्ति के इच्छुक आपके पास आने लगे। कुछ वर्षों तक यहाँ रहते हुए आपने एकान्त निवास किया इन दिनों आपकी तपस्या, त्याग, वैराग्य, दयालुता, दुखियों के प्रति सहानुभूति और सदुपदेश का जनता पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा।

पञ्चमोल्लास

माता का देहान्त और आपकी यात्रा

वि० सम्वत् १६४५ के शीतकाल में आपकी माता का अचानक देहान्त हो गया। इनकी अस्थियाँ लेकर (पिता की प्रेरणा से) आप "हरिद्वार" पधारे। यद्यपि इन दिनों रेल गाड़ी का आविष्कार हो चुका था परन्तु आपने अपने कुछ साथियों सहित पैदल ही यात्रा की।

उस समय राह में चोर डाकुओं का उत्पात था एक दिन रात्रि के समय कहीं विश्राम किया था। वहाँ आपके संग वालों का कुछ सामान चोर चुरा ले गये। प्रातःकाल अपने सामान को न पाकर साथी दुःखी हुए और क्योंकि आपकी शक्ति को जानते थे अतः सहायता करने की प्रार्थना की। आपको दया आई और न जाने कहाँ से और किस युक्ति से यह सामान चोरों से ले आये। इससे साथी लोग प्रसन्न हो गये और आपको अवतार कहने लगे। हरिद्वार आदि की पैदल यात्रा करके आप घर पहुंच गये।

पिता से कहने लगे "मुझ में ममता रखने वाली माता का देहान्त हो गया है" आपके पास सब प्रकार का आनन्द है! अब मैं घर में न रहूँगा। ऐसा कह कर आप विना कुछ उत्तर

गुने ही चले गये इस प्रकार ३६ वर्ष ६ माह १४ दिन गृह निवास किया।

घर से बाहर होकर आप कुछ समय तक भारत के अन्य प्रान्तों में एकाकी भ्रमण करते रहे। भोजन पान के लिए किसी से याचना व उद्योग न करते थे। विना माँगे किसी ने कुछ दे दिया तो खा लिया, अन्यथा आवश्यकता पड़ने पर वृक्षों के पत्ते आदि का आहार करते थे।

इस प्रकार कठोर तपस्या और साधन में लगे रहे। दो बार आपने श्री द्वारिका, गिरि नार और बृज भूमि आदि की यात्रा की और पुनः राजस्थान में ही पधार आये।

इन दिनों आप कहा करते थे कि "भारत में राजस्थान जैसा और इसमें भी शेखावाटी जैसा अच्छा दूसरा प्रान्त नहीं है।" क्योंकि यहाँ का जैसा अन्न जल-वायु और साधारण रहन सहन दूसरे प्रान्तों में नहीं है। और यही पदार्थ मनुष्य जीवन मुख्यतः साधु के लिए आवश्यक और लाभ प्रद हैं। अन्य प्रान्तों के मनुष्य आडम्बर और विकृत रहन सहन के अभ्यासी हैं और वहाँ पर यह दोष बढ़ता जा रहा है। अतः मुझे राजस्थान के अतिरिक्त और मुख्यतः शेखावाटी प्रान्त के बाहर रहना रुचिकर नहीं है।

मनुष्य को मुख्यतः साधु को शान्ति की लालसा रहती है। स्वच्छ वायु, शुद्ध और स्वास्थ्य कर जल, नीरोग अन्न

और निष्कपट एवं सीधे साधे मनुष्यों का संग, निर्लोभ प्रकृति, एकान्त निवास, हल्का और सूक्ष्म भोजन, ब्रह्मचर्य का पालना यही स्वर्गीय आनन्द है। यही शान्ति देने वाले साधन हैं।

भ्रमण करते हुए आप दैव योग से ऋणी (बीकानेर) पहुंचे। यहाँ पर श्री स्वामी मोतीनाथजी की मण्डली ग्रीष्मावकाश कर रही थी। मोतीनाथजी उच्च कोटि के विद्वान् थे।

भारत की प्राचीन शिक्षा व्यवस्था के अनुसार साधु और विद्वान् मनुष्यों की मण्डलियाँ कथाएँ शिक्षाएँ एवं शङ्का समाधानार्थ भ्रमण किया करती थीं। अब भी करती हैं परन्तु वैसे साधु और सदाचारी विद्वानों का अब प्राय: अभाव सा हो गया है। और भोजन-भट्ट लोगों का बाहुल्य है। कितनी अच्छी थी यह व्यवस्था इसके द्वारा नागरिक और ग्रामीण मनुष्यों को सरलता से ज्ञान प्राप्त होता रहता था और साधु पुरुषों का लोक कल्याणकारक कर्त्तव्य पालन भी अनायास ही साधना में आता रहता था।

अब पुन: इस नवीन युग में "ग्राम सेवा सङ्घ" आदि संस्थाओं का ध्यान इधर गया है यह अपने चलते फिरते पुस्तकालय संग में लेकर ग्रामीण जनता में पहुंच रहे हैं। किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि यह शिक्षक लोग जितने त्यागी,

सदाचारी एवं सरल जीवन वाले होंगे, उतना ही ग्रामीणों को ज्ञान प्राप्त करा सकेंगे।

अस्तु, आप भी मोतीनाथजी की मण्डली में जा पहुंचे आपका दीर्घ शरीर, गौर वर्ण एवं कान्तिमान मुख देख कर मण्डली के साधु और स्वयं मोतीनाथजी तृप्त हो गये। आप एकान्त में बैठे थे, अपनी स्वाभाविक दशा में। मोतीनाथजी आपके पास आये और कुछ वार्तालाप किया किन्तु आपने उदासीनता पूर्वक उत्तर दिये और बातें करते समय भी आपके नेत्र नासिका पर स्थिर और गहरी उदासीनता देख कर मोतीनाथजी ने जान लिया कि यह योगी पुरुष है।

साधु मण्डली परस्पर बातें करती रही कि यह कैसे दर्शनीय मनुष्य हैं इन्हें किसी प्रकार मण्डली में रखने का प्रयत्न करना चाहिए। आप कुछ दिन तक इसी मण्डली में रहे परन्तु उदासीनता पूर्वक।

इसी मण्डली में एक साधु पुरुष श्री स्वामी चम्पानाथ जी भी थे। यह संयमी मिताभाषी और श्रीमद्भगवत् गीता के प्रेमी थे यह साधुत्व के नियमों का पालन करने वाले और दर्शन योग्य मूर्ति थे। इनकी धारणा हुई कि मैं इस पुरुष को अपना शिष्य बनाऊँ।

एक वार मोतीनाथजी ने आपसे कहा कि तुम पढ़ा करो। कुछ अक्षर (स्वर) एक स्लेट पर लिख कर आप को दिये आपने अक्षरीय ज्ञान से अनभिज्ञ होते हुए भी सम्पूर्ण वर्ण—माला लिख कर तत्काल ही दिखा दी।

मोतीनाथजी इस से अतीव प्रभावित हुए और आगे भी कुछ लिख कर देने लगे। तव आपने कहा मैं पढ़ूँगा तो सही परन्तु यह तो वताओ "पढ़ने से मेरी वृत्ति एकाग्र हो जायगी मुझे शान्ति का—अतीव शान्ति का आनन्द प्राप्त हो जावेगा।"

मोतीनाथजी ने कहा कि शान्ति और एकाग्रता तो आपके संयम और साधन से ही हो सकती है।

आप हँस कर बोले, तो फिर मैं व्यर्थ ही इस झंझट में क्यों पड़ूँ। पण्डितजी निरुत्तर हो गये और आपको दिव्य-आत्मा समझ कर सेवा करना ही अपना कर्त्तव्य समझा।

वास्तव में अधिकतर देखा जाय तो विवाद और उदर पूर्ति के साधन प्राप्त करने के सिवाय आज कल विद्वान करते भी क्या हैं।

स्वामी गणेशनाथ जी ने विसाऊ में (जयपुर) अपना आश्रम वनवाया था यह अद्यावधि वर्तमान है। अभी श्री स्वामी

ज्योतिनाथ जी ने सं० १६६५ वि० में इसका, जीर्णोद्धार किया है। यहाँ पर आपके शिष्य श्री पूर्णनाथजी को रखा हुआ है। विसाऊ का आश्रम अच्छा है, यह नाथजी की बगीची के नाम से प्रसिद्ध है और यहाँ की जनता की-मुख्यत: ※ बूचासिया परिवार की इसमें असीम श्रद्धा है। इस परिवार के सेठ नेतसी दास जी आपके अनन्य भक्त थे और अब सेठ जी के पुत्र नागरमलजी और पूर्णमलजी आदि अतीव सदाचारी और आपकी शिक्षाओं के अनुसार चलने वाले साधु सेवी व्यक्ति हैं।

मण्डली अपना ग्रीष्मावकाश समाप्त करके अन्य जगह चली गई। स्वामी चम्पानाथजी अपने गुरु द्वारे वारवास (लोहारू) चले गये। वारवास में श्री क्षमानाथजी ने आश्रम बनवाया था नव्वाब लोहारू ने इस आश्रम को जमीन भेट की थी यह आश्रम और जमीन अद्यावधि वर्त्तमान है। यहाँ पर श्री स्वामी लालनाथजी रहते हैं। आश्रम का जीर्णोद्धार भी करवाया गया है यहाँ की जनता आश्रम वासियों की सेवा भली प्रकार करती है और विवाह आदि में कुछ नियत की हुई भेंट चढ़ाते रहते हैं।

मण्डली में एक साधु थे सिरजन नाथजी इन्होंने आपसे वार्तालाप का सम्बन्ध बढ़ा लिया और साधु वेष लेने को तत्पर कर लिया। सिरजन नाथजी और स्वामी चम्पानाथजी ने निश्चय कर लिया था कि इनको अवश्य सन्यासी बनाना है।

※ यह अग्रवाल वैश्य हैं कुटुम्ब के सभी स्त्री पुरुष श्रीनाथजी में अटल विश्वास रखते हैं।

छठा उल्लास

सन्यास और भोजन सम्बन्धी विचार अन्वेपण तथा भ्रमण

विक्रम सम्वत् १६४५ के ग्रीष्म काल के अन्त में श्री सिरजन नाथजी श्रुणी में आपकी शिखा त्याग करवाई (चोटी काटी) और वारवास में ले जाकर श्री चम्पानाथजी के भेंट की। साथ में आप भी गये, इस प्रकार आपने श्रीस्वामी चम्पानाथजी का शिष्यत्व स्वीकार किया और नियम पूर्वक नाथ सम्प्रदाय की दीक्षा ली। श्री चम्पानाथजी ने अतीव हर्ष प्रेम और प्रसन्नता के साथ आपका नाम "श्री अमृत नाथजी" रखा श्री चम्पानाथजी का शरीर माघ सु० १३ सम्वत् १६७२ में समाप्त हो गया।

कुछ दिन आपने वारवास में निवास किया परन्तु आपके रहन सहन से श्री चम्पानाथ के हृदय पर कुछ ऐसा प्रभाव पड़ा कि सदा के लिए ही आपको पूज्य समझ लिये। आप भ्रमण के अर्थ चले गये।

वि० सम्बत् १६४६ वारवास में ही श्री ज्वालानाथजी ने आपके चीरा चढ़ाया (कर्ण छेदन किया). चीरा चढाते समय

एक आश्चर्यजनक घटना हुई। ज्वालानाथजी चीरा चढ़ाने में प्रसिद्ध सिद्ध-हस्त थे किन्तु हुआ क्या!

आपके एक कर्ण का तो छेदन कर दिया किन्तु दूसरे का न कर सके इनके हाथ काँपने लग गये और हृदय में भय और कायरता आ गई। कहने लगे मुझ से दूसरा कान नहीं फाड़ा जा सकता- तब आपने कहा "कान को किस जगह से फाड़ना है वहाँ पर करद (छुरा) तो रख दो" ज्वालानाथजी ने करद रखदी और आपने स्वयं ही कान को चीर डाला। इस कार्य से अन्यों को अतीव आश्चर्य हुआ। अपने हाथ से ही कानों में ठेठी (नीम साफ की हुई लकड़ी) डाल ली और यहाँ से जंगल में चले गये।

चीरा चढ़ाने के पश्चात् कई दिन तक नाथ लोग एक ही स्थान पर रहते और केवल हलुवा ही खाते हैं। कानों को प्रति दिन निम्ब के जल से धोते हैं, किन्तु आप तो वन में अकेले रहे (साँगरे) खेजड़े के फल खाये। धोना-ओना भी कुछ न हुआ वहुत कम दिन में ही कान अच्छे हो गये।

अन्य साधु सम्प्रदायों की भाँति नाथ सम्प्रदाय में सन्यास लेकर मिलना साधारण बात नहीं है। अपनी इच्छा से छुरे द्वारा कानों का फड़वाना नाथ बनने की प्रबल इच्छा का द्योतक है। इतनी पीड़ा का सहन करना तो नाथ सम्प्रदाय के महत्व को बहुत ऊँचा चढ़ा देता है। लोगों के चित्त में नाथ

सम्प्रदाय के प्रति विशेष प्रेम और श्रद्धा का प्रतीक यह "कान फड़वाना नाथ के लिये आवश्यक है। इसे प्रचलित करके जगद्वन्द्य श्री गोरक्षनाथजी ने अपने मतानुयायियों के लिए कठिन परीक्षा रखदी और मनुष्य के हृदय को आगे जाकर डावाँ डोल होने तथा गृहस्थ के कार्यों में फँसने से बचाया एक हद तक।

नाथ सम्प्रदाय के साधु के यदि कान फटे हुए न हों तो उन्हें "औघड़" कहा जाता है। वेष-पन्थ की मर्यादा के अनुसार उन्हें आधी दक्षिणा दी जाती है और वह मुद्रा धारियों की सेवा के लिये बाध्य किये जा सकते हैं। यह तथा अन्य कुछ कारणों से नाथों में औघड़ कम होते हैं। कुछ भी हो कर्ण छेदन होना सांसारिक दृष्टि से साधु के लिये अच्छा है। अन्य सम्प्रदायों की भाँति इच्छा न होने पर सम्प्रदाय न बदला जा सकता है और न उसकी इच्छा ही होती है। आपका कर्ण छेदन ३६ वर्ष की आयु में हुआ।

इसके पश्चात् आप भ्रमण करने के अर्थ पधार गये कहाँ कहाँ कितने २ समय तक रहे इसका कोई ठीक समय और स्थान ज्ञात न हो सका। क्योंकि आप सर्वदा एकाकी रहे। इन दिनों जन समाज से दूर-बहुत दूर रहना आपको विशेष रुचि कर रहा।

वास्तव में शान्ति और आत्म चिन्तन का आनन्द अकेले रहने से ही प्राप्त होता है "एक स्तपो" के अनुसार

आत्म चिन्तन और आत्म दर्शन एकान्त निवास के बिना होना असम्भव है। तभी तो वर्णाश्रम धर्म के अनुकूल चौथे आश्रम सन्यास की परिपाटी प्रचलित की गई थी। सन्यासी का प्रधान कर्म एकान्त निवास होगा यतदर्थ उसे आत्म दर्शन होगा।

इस भ्रमण काल में आपने भोजन पान सम्बन्धी अन्वेषण (खोज) करने का निश्चय करके खाद्य और पेय और औषधि पदार्थों का अपने शरीर पर भली प्रकार प्रयोग करके देखा आपने इस विषय में बहुत भारी अनुभव प्राप्त किया। ऐसे २ प्रयोग किये कि जिन्हें सुनने से ही भयातुर और चकित होना पड़ता है। आपका यह अनुभव अब तक के खान-पान सम्बन्धी विशारदों, प्रचारकों, उपदेशकों और अन्वेषकों की श्रेणी से बहुत आगे पहुँच गया है। खान-पान सम्बन्धी आपके विचार अतीव उच्च कोटि के थे फलतः लाभ-प्रद और शान्तिदायक एवं सुख कारक हैं।

इस विषय में तो यहाँ तक कहना पड़ेगा कि अब तक किसी ने खान पान सम्बन्धी ऐसी सरल तरल और योग्य विधि को न तो जाना ही और न सर्व साधारण को बतला ही सके। इस विषय के तो सर्वतो-भद्र ज्ञाता अन्वेषक और शिक्षक केवल पूज्यपाद अवधूत अमृतनाथ ही संसार के सन्मुख प्रादुर्भूत हुए। और कल्याणकारक भोजन पान और व्यवहार के सुख का सार निकाल कर जनता को

वारम्वार शिक्षा दी, चैतन्य की ओर किया चिर स्थायी आनन्द का महान् दान। यह तो आपका नूतन आविष्कार ही है। आपके लाखों अनुयायियों ने खान-पान सम्बन्धी आपकी शिक्षानुसार आचरण किया अनुभव किया और इससे यथोचित् लाभ और आनन्द उठाया और उठा रहे हैं।

आपका यह परम सात्विक भोजन-पान शरीर को निरोग और वलिष्ठ रखने वाला तथा आत्म चिन्तन में लगाने वाला और अखण्डानन्द प्राप्त कराने वाला है इसमें किञ्चित् मात्र भी सन्देह को स्थान नहीं है इस विषय में आपके आदेश हैं।

सुधरे अहार विहार तव होवे वृत्ति पवित्र।
रोग मुक्त काया रहे, अमृत विमल चरित्र ॥१॥
हुए चिकित्सक अव तलक, पंडित सन्त महान्।
इस आवश्यक विषय पर दिया न विधिवत् ध्यान ॥२॥
खान पान वाणी अरु, आसन दृढ़ धार ले।
पूरी हो आयु "अमृत" जीवन सुधरता है ॥३॥
संयम् को प्रत्याहार कहे, मैं अपने अनुभव से कहता।
विन खान-पान सुधरे न शान्त मन होता है वहता रहता ॥४॥
कुछ काल ध्यान धरने से ही ध्यानी को ज्योति लखाती है।
है सुधरे अहार विहार तभी तो दिव्य विभूती पाती है ॥५॥
युक्ताहार विहार से रोग न होय शरीर ॥६॥
शान्त वासना होय जब सुधरे अहार विहार।
तव अमृत निशि दिन रहे, केवल ब्रह्म विचार ॥७॥

ठण्डा खाना रे अवधू जमीं का लेटना।
कठिन फकीरी रे अवधू सहज सध जायगी ॥ ८ ॥
जिनके सुधरे अहार विहार, नश्वर जाना है संसार।
होना ठाना भव से पार, उनको विषय नहीं भाते हैं ॥६॥
सुधरे अहार विहार वेग मन का थमे।
जन्म मरण कि व्याधि मिटे सुपुमन रमे ॥ १० ॥
उचित खान पानादि से शीत उष्ण सम रूप।
सम गति से श्वासा चले, अमृत भेद अनूप ॥ ११ ॥

यह आपके आदेश आहार-विहार की उत्तमता के प्राधान्य के विषय में है। क्या २ खाना कैसे रहना आदि बातें आपके उपदेशों की पुस्तक "श्री अमृतानुराग (शंकर विलास)" में जो कि वि० सं० १६८८ में मुद्रित हुई थी पद्य रूप में लिखी है और इस ग्रन्थ में आगे जाकर स्पष्ट रूप में लिखी जावेगी।

आत्म चिन्तन और आत्म दर्शन इस स्थूल शरीर द्वारा ही हो सकता है। स्थूल शरीर का सञ्चालन आहार-विहार पर अवलम्बित है। जैसा भोजन पान होगा वैसी वृत्ति रहेगी, और वैसे ही साधनों की ओर मनुष्य को झुकना पड़ेगा "या दृशो भक्षते अन्नं बुद्धिर्भवति ता दृशि" जैसे पदार्थ खायेंगे वैसी बुद्धि रहेगी।

ब्रह्मचर्य की अखण्डता के विना आत्म दर्शन होना असम्भव है खान-पान के सुधार के विना ब्रह्मचर्य रहना नितान्त असम्भव है अतः साधुता प्राप्त करने वाले,को निरोग रहने की

इच्छा वाले एवं सुखमय जीवन के आकांक्षी के लिये अहार विहार का सुधार अत्यावश्यक है।

सप्तमोल्लास

भोजन पान सम्बन्धी अन्वेषण

भ्रमण काल में आपने प्रायः छः मास तक आधा सेर नीम की पत्तियाँ प्रति दिन खाईं। अन्नादि कुछ भी अपने काम में न लिये इन दिनों आपने कठोर "मौन" का साधन किया, इस से शरीर में कोई विशेष परिवर्तन न हुआ।

वि० सम्वत् १६४७ में कुछ काल भ्रमण करने के पश्चात् आप राजपुरा (बीकानेर) पहुँच गये। यहाँ के श्मशान में निवास करते हुए श्री सन्तोषनाथजी आपके पास आये इन्होंने इस समय साधु वेष नहीं लिया था। यह अच्छी प्रकृति के मनुष्य थे। आपने इन्हें अपने पास आने दिया। इन्होंने भली प्रकार आपकी सेवा की, आपके कृपा पात्र रहे और आपके निर्वाण प्राप्त तक प्रायः साथ रहे। सन्तोषनाथजी की समाधि वर्तमान आश्रम में पञ्जाबी बाबा के पास बनी हुई है। राजपुरा में हीरानाथ नाम के एक साधु रहते थे। यह भी आपके पास आने लगे। हीरानाथ आप से कुछ द्वेष रखने लगे और धूर्तता और घमण्ड से आप को कष्ट पहुँचाने के अर्थ कहा यदि आप "सींगी मोहरा" और "हींगलू" खाओ तो एक विशेष आनन्द

प्राप्त करोगे। यद्यपि आप इन उप धातुओं के गुणावगुण को जानते थे परन्तु मानवी अनुभव प्राप्त करने के अर्थ ही यह दोनों उपधातु ५६ सेर परिमाण में कोई १०, १२ दिन में आप ने खा डाले। इन दिनों आपने अन्न जल का त्याग रखा। इन विषैले धातुओं से आपके शरीर पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा देख कर हीरा नाथ घबड़ा गये और अपने कुकृत्य के लिये क्षमा प्रार्थी हुए। राजपुरा और आस पास की जनता पर इस भीषण कृत्य का वड़ा प्रभाव पड़ा और लोग आपको सिद्ध पुरुष जान कर सेवा करने लगे।

आपने लोगों से कहा यह दोनों धातु इतने तेज जहरीले और गर्म हैं कि साधारण मनुष्य थोड़ा भी खाले तो उसकी बुरी दशा में मृत्यु हो जाय।

राजपुरा से कुछ दिनों वाद आप चूरू (वीकानेर) आ गये सन्तोषनाथजी भी आपके संग थे। यहीं पर पञ्जाब प्रान्त के निवासी युवक शरीर गोस्वामी मुरजान पुरी भी आपके पास दर्शनार्थ आये। आप "पीथाणा" नामक जोहड़ा (तालाव) पर निवास करते थे।

सं० १६५१ वि० में चूरू निवासी श्री कनीराम कोठारी आपके दर्शनार्थ आये। कोठारी जी पर आपकी शिक्षाओं का पर्याप्त प्रभाव पड़ा और इन्होंने गृहस्थ त्याग दिया। वहुत दिन घर से वाहर रहे। इस से घर वालों को वड़ा क्लेश हो

गया । तब आपने इन्हें समझा कर घर में रहने को भेजा ।

श्री कनीराम ने आपकी शिक्षाओं को यथार्थ रूप में ग्रहण की और अनन्य भक्त बन गये । कोठारी जी का रहन-सहन खान-पान अतीव परिमार्जित (पवित्र) हो गया । प्रान्त की मारवाड़ी जाति पर इनका काफी प्रभाव पड़ा और इन्होंने बहुत से मनुष्यों को अपनी शिक्षा के द्वारा सन्मार्ग पर चलाया ।

आपके वरदान से सब लोग इन्हें "कान गुरु" कहने लग गये कोठारी जी अपनी मृत्यु से कुछ दिन पूर्व कुछ रुग्ण रहे परन्तु औषधि सेवन न किया और आपके प्रेम में मग्न रहे । आत्म चिन्तन को ऐसे कष्ट में भी न त्यागा । आपके विश्वास पर ही रहे । यह निष्ठावान् मनुष्य थे ।

श्री कनीराम उन इने गिने श्रेष्ठ पुरुषों में थे जो कि आप के पूर्ण अनुयायी और कृपा पात्र रहे हैं । सं० १९८४ वि० में आपका जीवन चरित्र मुद्रित हुआ था उसके प्रकाशक कोठारी जी ही थे वास्तव में कनीरामजी ने आपकी कृपा से अपना जीवन सुधार लिया । धन्य !

सं० १९८३ वि० में जब आपका भण्डारा हुआ तो कोठारी जी ने पर्याप्त सेवा की ।

चूरू में इन्हीं दिनों बजरङ्गलाल गोयनका, तोलाराम पारख आदि भी आपके सत्सङ्ग में आये और शिक्षा ग्रहण करके अपने को अच्छे मार्ग पर चलाया।

इन्हीं दिनों आप आकड़े (अर्क) का आधा सेर दूध प्रति दिन पान करते रहे, यह कार्य १५ दिन तक होता रहा। अन्न जल बिल्कुल त्याग दिया। इस कार्य से जनता में दूर दूर तक बड़ी सनसनी फैल गई। कई लोगों ने इस अर्क दुग्ध पान का कारण पूछा परन्तु आपने कुछ न बतलाया।

इस भयङ्कर कार्य की सूचना समस्त शेखावाटी प्रान्त में फैल गई। सीकर के राव राजा स्वर्गीय श्री माधवसिंहजी ने जब यह कठोर कर्म सुना तो आपके दर्शनार्थ आने का निश्चय किया। जब आपको ज्ञान हुआ कि राव राजाजी आ रहे हैं तो अपना निवास अज्ञात स्थान में कर लिया इन दिनों आपने मनुष्यों को अपने पास आने से रोक दिया। कुछ दिन निर्जन स्थान में रहे। अर्क दुग्ध का प्रगट में कोई प्रभाव दिखाई न दिया श्री सुरजान पुरी और आप एक साथ रहे। एक बार दो सन्यासी साधु आपके पास आये और आपके रहन सहन पर आपत्ति की। आप दोनों के पास केवल एक खप्पर था। और कुछ भी सामान न था। आगन्तुक सन्यासी पूछने लगे क्या आपको खप्पर शुद्धि का मन्त्र याद है। इस पर आपने कहा, हम को चारों युग के मन्त्र ज्ञात हैं, बोलो तुम कौन से युग का मन्त्र पूछते हो। आपकी वार्ता से सन्यासी

प्रभावित हुए और चरण स्पर्श करके चले गये। आप मंत्र तन्त्र के प्रपञ्च से दूर थे यह बात सर्व साधारण लोग क्या जानें।

वि० सं० १९५४ में बऊ (सीकर) में हैजे की बीमारी फैली बहुत मनुष्य मरे। विशालसिंह नामक एक क्षत्रिय जो आपका भक्त था, मर गया। लोग घबरा कर आप का स्मरण करने लगे। इस समय आप उदयपुर के जङ्गलों में थे। बऊ की स्थिति देख कर शीघ्र ही वहाँ पहुंचे, लोगों का भय मिट गया और बीमारी तो उसी दिन दूर हो गई।

इन दिनों में आपने खान-पान रहन-सहन सम्बन्धी बड़े २ अनुभव किये।

कुछ काल पश्चात आपने बऊ लक्ष्मणगढ़, फतहपुर, रामगढ़, मँडावा, बिसाऊ, नवलगढ़ आदि की परिक्रमा करना आरम्भ कर दिया। प्रातःकाल बऊ से बाजरे की दो [illegible]याँ और कैर (करील) का शाक भोजन करके चल[illegible] और उपर्युक्त स्थानों की ५२ कोस यात्रा करके २४ घंटों [illegible] बऊ पहुंचते ही उसी प्रातःकाल यहाँ के मंगेजसिंह * भाटी [illegible]पके

---

* अब यह श्री ज्योतिनाथजी महाराज द्वारा शिष्यत्व ग्रहण कर [illegible] हैं इनका नाम अब वैननाथ है। और प्रायः किलाणे (बीकानेर) रहते हैं।

लिए वही रोटी शाक तैयार रखते और आप भोजन करके पुनः चल देते। यह यात्रा प्रायः छः मास तक करते रहे।

इन दिनों आपको शीत घाम आदि का बहुत कम ध्यान रह गया था, अन्न जल २४ घंटों में एक बार लिया करते थे और प्रायः मौन रहते थे।

चूरू में आपने २ सेर संखिया भक्षण किया इससे यहाँ जनता में घबड़ाहट फैल गई परन्तु इस भयानक विष-पान से आपका शरीर तनिक भी विचलित न हुआ, यहाँ के लोग यह न जान सके कि यह संखिया कहाँ से आया और आपने क्यों खाया। कैसा अलौकिक है यह कर्म।

आपको अपने शरीर पर पूर्णतः अधिकार प्राप्त हो गया था तत्व दर्शी योगी पर बाहर के किसी पदार्थ का उसकी इच्छानुसार प्रभाव पड़ता है, या यों कहे कि उसके लिए विश्व के समस्त पदार्थ अपना ही रूप बन जाते हैं। यह स्वयं अनुभव करने की बात है। आप योगी के बल की प्रशंसा करते हुए कहते हैं।

"वह कर्ता हुआ अकर्ता है जागृत में तुरिया बन जावे
मन वाणी की गम रहे नहीं अमृत अमृत में सन जावे"

एक बार मायानाथ नाम के साधु ने आपकी एकान्त निवास पर कटु आलोचना की आपने उसको कुछ भी न कह कर उसकी ओर से मुँह फेर लिया मायानाथ डर गया और उसके

तत्काल ही प्रमेह का रोग हो गया, और मरणकाल तक न मिटा।

सं० १६५६ वि० में आप बिहाणी पधारे थे यहाँ एक हँसनाथ नाम के योगी स्वरोदय के साधक थे परन्तु वह रोगी हो गये थे भय के मारे इस साधन को छोड़ भी न सकते थे। आपने इनका भय मिटा कर रोग मुक्त कर दिया।

आपका स्वभाव दयालु था इसी कारण से भ्रमण काल में ही हजारों रोगी आपके द्वारा आरोग्य लाभ करते थे। आप औषधि बतलाया करते थे दही, छाछ, राबडी, मतीरा, गँवार मूली, गाजर, घृत, शहद, दूध, आदि इन पदार्थों के अल्प मात्र सेवन करने से ही रोगी को लाभ पहुँच जाता था। यह आपके अनुभव और आत्म-शक्ति का फल था जो कि आपने कठोर अन्वेषण और तपस्या से प्राप्त किये थे। या यों कहें कि वह आपका शरीर इन्हीं कार्यों को सम्पादन करने के अर्थ संसार में आविर्भूत हुआ था।

आप केवल एक कोपीन लट्ठ और कम्बल अपने पास रखते थे आपके रहने का इन दिनों मुख्य स्थान न था "अनिकेत" थे। धातु के वर्तनों से आप दूर रहा करते थे, आप प्रत्यक्ष त्याग की मूर्ति थे आपके दर्शन मात्र से दर्शक के हृदय में श्रद्धा और वैराग्य उत्पन्न होते थे।

सं० १६५६ वि० में आप चूरू निवास करते थे। यहां पर "जैसा" नाम का वितण्डावादी खाती आपके पास आया और आप से तर्क करते हुए कहने लगा, तुम्हारे में क्या करामात है दिखाओ। आपने कहा करामात मुझ में कहाँ है। तू जा यहाँ से "साल आगई छप्पन की, तू कर तैयारी कप्फन की।" जैसे ही बेचारा घर पहुँचा था कि मर गया।

एक बार फतहपुर के बाजार में रात के समय थाने के बाहार से आप जा रहे थे। थानेदार ने आपको टोका तो आपने उत्तर न दिया। थानेदार ने आपके पास पहुँच कर एक बेंत मारदी। आप बोले शाबास! यह शब्द सुनते ही थानेदार पागल हो गया कपड़े फेंक दिये।

आप तो यहाँ से समीपवर्ती बीड़ में चलें गये। थानेदार कई दिन बीमार-पागल रहा। अन्त में लोगों को ज्ञात हुआ कि इसने नाथ जी के साथ दुर्व्यवहार किया था। लोग उसे लेकर आपके पास पहुँचे क्षमा चाही। आपने कहा मैं क्या करूँ इसे गर्मी चढ़ गई है छाछ पिलाओ। २ बार छाछ पिलाने में ही थानेदार ठीक हो गया।

बाला चौधरी टीडियांसर (बीकानेर) के गम्भीर (एक विशेष प्रकार का फोड़ा) निकल आया बहुत दुखी था, आप भी वहाँ पहुँच गये। उसे लेकर लोग आपके पास आये आपने कहाँ भाई यह रोग तो १२ वर्ष रहता है।

निराश होकर चले गये. बहुत औषधि की परन्तु १२ वर्ष समाप्त होने पर ही वह फोड़ा मिट सका।

नेतसीदास बूचासिया बिसाऊ निवासी आपके अनन्य भक्त थे। इन्हें हवा और बादल की गति का अच्छा ज्ञान था। इसी कारण कई लोग इनके साथ रहा करते थे और सट्टे बाजी किया करते थे एक बार बूचासिया जी आपके सामने घमण्ड के साथ अपने इस ज्ञान की बड़ाई करने लगे अपने कहा "भाई तुम घमण्ड करते हो यह तुम्हारा ज्ञान विस्मृत हो जायगा। ऐसा ही हुआ। बूचासिया जी ने वह ज्ञान खो दिया। कई वर्ष के बाद आप के वचन से ही वह ज्ञान उन्हें पुनः प्राप्त हो गया।

नेतसीदास आपके अनन्य भक्त, विश्वासी, आत्मानुसन्धान करने वाले सच्चे आदमी थे। आपकी सेवा खूब किया करते थे। इनकी आर्थिक स्थिति अच्छी न थी आपकी दया से यह धनाढ्य हुए थे। अब आप की सन्तान, उसी प्रकार प्रेम से वर्तमान आश्रम की सेवा करती है और अटल विश्वास रखती है।

अष्टमोल्लास

भ्रमण और आत्म शक्ति का परिचय तथा उदारता

आपके त्याग तपस्या और दयालुता से जनता पर्याप्त परिचित हो चुकी थी। कई ऐसे असाध्य रोगी आपके कृपा कटाक्ष से रोग मुक्त हुए जो कि अच्छे २ वैद्य डाक्टरों का इलाज कराने से थक कर निराश हो गये थे। कई बार ऐसा देखा गया कि रोगी आपके पास आकर गिड़ गिड़ाया, आपको दया आई और तत्काल निरोग हो गया और उसका रोग आपके शरीर में दिखाई दिया।

सिद्ध पुरुष में यह शक्ति उत्पन्न हो जाती है कि वह अपना शरीर त्याग कर दूसरे इच्छित शरीर में प्रवेश कर जाय। अपने शरीर को लुप्त करदे। महान या अणु बनाले। ऐसा ही या और भी कुछ इसी प्रकार की बहुत सी बातें आपके शरीर द्वारा लोगों के देखने में आई।

सूरसिंह नाम के एक क्षत्रिय बऊ के रहने वाले थे इनके शरीर में कुष्ट रोग उत्पन्न हो गया और इसने भयानक रूप धारण कर लिया। सूरसिंह ने बहुत औषधि की परन्तु लाभ कुछ न हुआ दुखी थे। यह आपके पास आये, अपना दुख सुना कर दया की याचना की।

आपने कहा नीम के पत्ते चवाया करो। यह बोले महाराज कड़ुए कैसे खाऊँगा। आपने कहा चबाने से कड़ुवापन दूर हो जायगा। सूरसिंह ने नीम के पत्ते चवाये इन्हें यह पत्ते मीठे लगे और दो चार दिन में कुष्ट रोग समूल नष्ट हो गया।

इन दिनों आप विशेषतः जङ्गल में निवास किया करते थे। ग्राम से दक्षिण की ओर ऊँचे टीले पर एक नीम का वृक्ष था यहीं आप ठहरा करते थे। लक्ष्मणगढ़ निवासी वैश्य रामदेव जाजोदिया ने इस विशाल निम्ब के चारों ओर एक गट्टा चबूतरा बनवा दिया। यदा कदा आप यहाँ रहते थे। इस गट्टे पर लोगों को अतीव शान्ति और आनन्द प्राप्त होता था। यह गट्टा अब तक विद्यमान है। इसी स्थान के पीछे की ओर श्मशान भूमि है यहाँ जोड़ा है। यह तालाव आपके द्वारा छुड़ाया हुआ है और इसके वृक्षों (खेजड़ों) का कटना भी आपने ही बन्द करा दिया था। वऊ के चौधरी (नम्बरदार) तुलसा जाट ने एक बार इस जोहड़ के वृक्ष कटवा लिये। इस पर आपने कहा "तुलसा ने खेजड़ी नही छाँगी है साधु का शिर काटा है"।

आपके इस वाक्य से तुलसा भय भीत हो गया। भोमदासजी इन दिनों आपके साथ रहा करते थे इनके द्वारा आपने तुलसा को अपने पास बुलवाया, परन्तु उसकी बुरी दशा हो रही थी भय के मारे न आया और कुछ घण्टे में तुलसा

मृत्यु को प्राप्त हो गया। इस जोहड़ का अब भी इसी आश्रम से सम्बन्ध है और इसके पेड़ नहीं काटे जाते। इस में पशु चरते हैं और पक्षी आनन्द पूर्वक रहते हैं।

आपके देहावसान के बाद इस स्थान पर श्रीलालनाथजी और भोमनाथजी ने कुछ मकान भी बनवा लिये और यहीं रहने लगे भोमनाथजी की यहीं पर समाधि बनो हुई है। स्थान रम्य है। आज कल यहाँ पर शिवजीनाथ रहते हैं यह अपने आप को भोमनाथजी का शिष्य बताते हैं तोतानाथजी की भी यहीं समाधि बनी है।

बऊ निवासी तेजसिंह क्षत्रिय का छोटा पुत्र बीमार था और मृत्यु चिह्न प्रगट हो गये थे। यह आपके पास लाया गया आप हँसते हुए बोले यह तो भूखा जान पड़ता है इसे दूध पिलाओ। माता ने इसे गोद में लेकर दूध पिलाया असाध्य रोगी बच्चे ने दूध पिया और तत्काल ही अच्छा हो गया।

इन दिनों आपकी सेवा में नारायणदास, नारायण गिरी अमीनाथ भोमनाथ आदि साधु रहा करते थे। ग्रीष्म ऋतु और शेखावाटी का रेतीला मैदान ! ज्येष्ठ मास की धूप में आप खुले मैदान मिट्टी में रहा करते थे। आपके सेवक साधु भी आपही की भाँति रहते। यद्यपि इन साधुओं में इतनी सहन शक्ति न थी कि इतनी कड़ी धूप को सह सकें परन्तु आपकी दया और छत्र छाया में इन्हें कोई कष्ट न होता था।

ग्रीष्म ऋतु व्यतीत होने पर आप नवलगढ़ पधारे और वर्षा ऋतु के चार मास खुले में ही व्यतीत किये चाहे जैसो वर्षा होती रहती परन्तु आप छाया की ओर जाते ही न थे। सङ्ग वाले साधु भी वैसे ही रहते। यहाँ पर शीतकाल के चारों मास भी बिना वस्त्र लिये खुले मैदान में ही व्यतीत किये। अब आप चूरू चले गये।

चूरू में एक वैद्य की प्रेरणा से कोई ८१ कच्चा संखिया खाया जब यह बात समीपवर्ती साधु और सर्व साधारण जनता को ज्ञात हुई तो सब में घबड़ाहट फैल गई, परन्तु आपके शरीर में इस संखिया पान से कोई भी खराबी न हुई। इससे जनता में आश्चर्य की लहर दौड़ गई, और कई व्यक्तियों ने आप से इस अलौकिक कार्य का कारण पूछा परन्तु आपने कुछ भी न बतलाया। अन्न जल सर्वथा त्याग दिये।

इन दिनों आपने खान पान सम्बन्धी बहुत से प्रयोग और अनुभव किये। और सङ्ग रहने वाले साधुओं से भी करवाये इससे जनता पर काफी प्रभाव पड़ा।

आप फतहपुर आ गये और यहाँ के विशाल बीड़ में एक गुफा बना कर निवास करने लगे। संतोषनाथ जी इन दिनों आपके संग थे। शीत अपनी तीव्र गति से मनुष्य और पशु पक्षियों को कष्ट पहुंचा रहा था। वृक्ष प्रायः जल गये थे। एक दिन आप ढाक के नीचे बैठ गये थे वही सन्तोषनाथजी ने

एक मोर को मरा हुआ पड़े देखा। आपको यह घटना सुनाई आप वहीं पहुंचे और मृत मोर को हाथ में उठाकर जोर से फेंका मोर, पी कौं, को, करके उड़ा और वृक्ष पर जा बैठा।

स्त्री की मृत्यु से चिन्तित होकर बलवन्तसिंह नामक चऊ का क्षत्रिय आपके पास आया और चरण पकड़ कर रोने लगा आप इसको गुफा के भीतर ले गये और वहाँ जाकर न जाने उसे क्या उपदेश दिया। जब वह बाहर आया तो बलवन्त-सिंह की चेष्टा बदली हुई थी और उसमें आत्मानन्दी जैसे लक्षण प्रकट हो गए थे। यह चले गये और आपने कहा बलवन्ता महात्मा है। लोग इसे पूज्य दृष्टि से देखने लगे आपका कृपा पात्र हो गया।

कुछ दिन बाद जयनारायण वैश्य बिसाऊ निवासी ने ११००) रु० आपको भेट किये। इन दिनों अकाल था यह रुपये बल-वन्त के पास रहे और कह दिया कि किसी कुंए या जोहड़ में इन्हें खर्च करना बलवन्त को देवयोग से लोभ उत्पन्न हो गया और इन रुपयों को अपने काम में ले लिये।

कुछ दिन पश्चात् जब आपने पूछा कि बलवन्त रुपये किस काम में लगाये तो बोला जोहड़ खुदवाने में लगा दिये आप तो अन्तः करण की जानने वाले थे. बोले तुम झूठ बोलते हो सत्य कहो रुपयों का क्या किया, परन्तु दुर्भाग्यवश बलवन्त ने सत्य

बात न कही। आपने कहा मुझे झूठा आदमी सुहाता नहीं "जाओ यह रेखा खीचता हूं" तुम इसके भीतर न आ सकोगे, ऐसा कह कर अपना मुख दूसरी ओर फेर लिया। बलवन्त की दशा बिगड़ गई आत्मानन्द लुप्त हो गया और कुछ दिन तक हाय हाय जला! हाय जला! पुकारते पुकारते मृत्यु को प्राप्त हो गया।

संसार में रु० अनर्थ की जड़ है, अन्याय का मूल है इसके चक्कर में फँसने पर भले बुरे का ज्ञान ऊँच नीच का ध्यान और मान अपमान का भान नहीं रहता। इसी के वश हो कर न जाने कैसे २ अच्छे मनुष्यों का पतन हो जाता है और पवित्र भावना और प्रेम नष्ट हो जाते हैं। संसार में जितने कुकर्म हैं प्राय: रुपये के लोभ और संग से ही होते हैं बड़े २ राज्य इसी के द्वारा बनते और बिगड़ते हैं. यही रक्त की नदियाँ बहाता है, ममता में फँसाता नरक में गिराता और न जाने क्या २ दुर्दशा कराता है इसके द्वारा अच्छे कर्म भी होते हैं परन्तु बहुत ही कम।

लक्ष्मण गढ़ निवासी भगवान दास निरंजनी साधु ने एक बार आपको भोजन करने को कहा, आपने स्वीकार न किया इससे भगवान दास ने आपके साथ अशिष्ट व्यवहार किया होते २ यह घटना स्वर्गीय सीकर नरेश श्री माधवसिंहजी तक पहुंच गई। राव राजाजी ने भगवानदास को गिरफ्तार करवा

कर सीकर मँगवा लिया। जब आपको इस घटना का पता लगा तो आप स्वयं सीकर नरेश से कहलवा कर उसे छुड़वा दिया।

यह घटना आपकी क्षमता और दयालुता का निर्मल उदाहरण है आपके इस क्षमा भाव से राव राजाजी पर जनता पर और समीपस्थ साधुओं पर गहरा प्रभाव पड़ा।

हमें इस क्षमा भाव की घटना से शिक्षा लेना और तदानुसार आचरण करना चाहिये।

इन दिनों श्रावण तक वर्षा न हुई थी वऊ तथा सीकर के कई ग्रामों के आदमी आपके पास आये और अपना दुःख सुनाया "आपने कहा जाओ हल चलाओ" जाकर देखा तो इनके ग्राम में पानी वर्ष चुका था।

भाद्रपद मास में वऊ निवासी शिवनाथ सिंह जवाहर-सिंह का खेत सूखे से जल रहा था आपके पास आकर गिड़ गिड़ाये। आपने कहा तुम्हारे खेत में पानी वह रहा है जाओ। जाकर देखा तो इनके ५००) वींघा खेत में पानी वह रहा था।

इन्हीं दिनों आपने एक गड्ढा खुदवा कर उस में आठ मण के करीब बेर के काँटे भरवाये और अग्नि लगवादी। जब वह जल कर तैयार हो गई तब दो पत्थर उसके बीच में रख कर

आप उन पर जा बैठे। अग्नि की तप्त पाँच सात कदम तक मालूम होती थी। इस पर तीन दिन तक बैठे रहे और जब उठे तो ८ सेर पानी खूब गरम करवा कर ऐसा गरम कि जिस में खिचड़ी पक सके पिया। यह पानी दश दिन तक पीते रहे इस भीषण अतीव भीषण क्रिया से लोग सन्न रह गये।

अब आप फतहपुर के उत्तर पूर्वी श्मशान में सेठ जगनाथ सिंघानियाँ के त्रिवारे में निवास करते थे। कभी २ घोली-सत्ती, राणी-सत्ती आदि स्थानों में भी रहा करते थे। फतहपुर में यह स्थान आपको रुचिकर थे, परन्तु जगन्नाथ जी का त्रिवारा विशेष रुचिकर था। इस त्रिवारे में पहुँचते ही अब भी शान्ति प्रतीत होती है।

नवमोल्लास

> श्री ज्योतिनाथजी को अंगीकार करना भ्रमण काल में उदारता और आत्म बल का परिचय

वि० सं० १६५६ में आप चूरू में आसीन थे। चूरू का जलवायु और मनुष्य बहुत ही आनन्द प्रद और सज्जन प्रकृति एवं साधु भक्त हैं आपको यहाँ रहना विशेष रुचि कर था।

यहीं पर श्री ज्योतिनाथजी आपके दर्शनार्थ आये थे। स्वामी ज्योतिनाथजी बड़े सज्जन पुरुष और निर्मल आत्मा हैं

रंग गौर और मन मोहक विशाल नेत्र, दीर्घ ललाट पुष्ट शरीर, कान्ति मान मुख, प्रसन्न चित्त, मधुर भाषी. निष्कपट और दूर दर्शी एवं बाल ब्रह्मचारी हैं। इनका जन्म हरियाणा प्रान्त के दणोदा ग्राम में मार्गशीर्ष शुक्ला ८ सं० १९३४ विक्रम में हुआ था। इनका आन्तरिक भाव बाल्यावस्था से ही वैराग्य पूर्ण था और योग्य गुरु की खोज में रहा करते थे। इन्होंने अपनी आयु के २४ वर्ष घर में व्यतीत किये और पुनः प्रबल वैराग्य के कारण गृह त्याग दिया। क्योंकि आपका नाम चिरकाल से सुन रहे थे। अतः भ्रमण करते हुए चूरू पहुँच गये। प्रसिद्ध मारवाड़ी सेठ भगवान दास बागलां के डण्डे में इन्होंने आपके दर्शन करके पूर्णतः सन्तोष प्राप्त किया और भक्ति तथा प्रेम पूर्वक आपके चरण कमल में आत्म समर्पण कर दिया।

विलक्षण अवधूत आपने जब देखा कि यह मनुष्य पूर्णतः जिज्ञासु सरल चित्त संयमी और सद्वक्ता है तो अपनी कृपा कटाक्ष से उन्हें प्रेम और दया पूर्वक कृत कृत्य कर दिये और अपनी ओर आकर्षित कर लिए।

श्री ज्योतिनाथजी ने आपकी निकट सेवा में रहते हुए अपने को धन्य समझा, कई बार आपने इनकी परीक्षा ली और यह इन परीक्षाओं में पूर्णतः उत्तीर्ण हुए। इन्होंने अपने आपको इस प्रकार आपके चरणों में अर्पण कर दिया। जैसे नमक अपना अस्तित्व जल को भेंट कर देता है। आप सदा ही इन पर

सन्तुष्ट रहे और अपनी अमोघ योग शक्ति से इन्हें आत्म दर्शन करा दिए और कर दिए इन्हें सरलता से ही परम पद पर आसीन ! धन्य ! आपके भ्रमण काल में यह प्रायः पूरे समय साथ रहे और जब आपने विश्राम ले लिया तो वर्त्तमान आश्रम का आपके द्वारा निर्माण हुआ जो कि बड़ी उत्तमता से इस स्थिति को पहुंच गया कि दर्शक लोग इसे स्वर्ग कहते हैं।

स्वामी ज्योतिनाथ जी आत्मानन्द का आस्वादन लेते हुए सांसारिक कार्य-विधि का समुचित रूप से सञ्चालन करने में दक्ष हैं।

आपके निर्वाण काल के पश्चात् आश्रम को शिष्य समुदाय और भक्त मण्डल के आग्रह से वृद्धिगत् किया और सं० १६८३ के फाल्गुण में आपका एक बहुत बड़ा भण्डारा किया जो कि सुचारु-रूप से पूर्ण हुआ। सेवक मण्डल की इनमें अटल और अविचल श्रद्धा है। इन्होंने अपने दादा गुरू श्रीचम्पानाथ जी महाराजा बिसाऊ के आश्रम का भी पूर्णतः जीर्णोद्धार करवाया है। इन्होंने करीब ५० व्यक्तियों को अब तक शिष्य बनाया है। इनमें कई एक होनहार सन्त दिखाई देते हैं।

सं० १६४८ से इन्होंने भ्रमण करना त्याग दिया है और आश्रम में ही आत्मानन्द का आस्वादन लेते हुए अतीव उचित विधि से आश्रम का सञ्चालन कर रहे हैं।

यद्यपि आपकी दया और शिक्षा से यह "सच्चे सन्त" आत्म दर्शन करके तृप्त हो गए हैं तथापि अपने नियत और नियमित आहार विहार के साथ संयम पूर्वक रहते हुए अपने सहज योग में निवास करते हुए अपने प्रेमी भक्तों को सन्मार्ग दिखा रहे हैं तथा आपत्ति काल में सहायक हो रहे हैं।

वास्तव में श्री स्वामी ज्योतिनाथजी पूज्य गुरू के योग्य शिष्य हैं सं० १६५६ से १६६२ वि० तक आपने भ्रमण किया था, वन तथा शमशान में निवास करते रहे। आपके योग वल और उदारता से वहुत से मरणासन्न रोगी आरोग्य हुए और कई दरिद्र गृहस्थ धनाढ्य भी हुए।

एक पञ्जाव निवासी जिज्ञासु आपकी विमल कीर्ति सुन कर दर्शनार्थ आप के पास आए। और दर्शन करके पूर्णतया तृप्त हो गये। यह जिज्ञासु चिरकाल से महात्माओं की खोज में रहते थे, तथो संगति किया करते थे। अपने आपको आत्मानन्दी वनाने की अतीव चिन्ता रखते थे। आपके उपदेश और सेवा से समय पाकर इनको आत्म दर्शन हुआ। यह अपने शरीरान्त के समय स्वयम् कहने लगे "मैं अक्षय हूं, संसार मेरा ही रूप है, मेरा जन्म मरण कुछ नहीं है।

यह वड़े प्रेमी परिश्रमी, संयमी और सिद्धान्तवादी पुरुप थे, सुना है कि यह पञ्जाव-लाहौर के अच्छे रईस एवं खत्री जाति के थे आपने पूर्ण ऐश्वर्य को त्याग कर आपकी सेवा में अपना जीवन न्यौछावर कर दिया था।

इनका देहान्त फतहपुर में ही हुआ था। यह पञ्जाबी "बाबा" के नाम से प्रसिद्ध थे। इनकी समाधि वर्तमान आश्रम में उत्तर की ओर पूर्व दिशा में बनी हुई है। शिर की चाहे जैसी पीड़ा हो इनकी समाधि पर श्रीफल भेंट करने से पीड़ा दूर हो जाती है।

यद्यपि आपने नियम पूर्वक श्रीनाथ सम्प्रदाय (पन्थ) में दीक्षा ली थी और योग की प्राय: समस्त क्रियाएँ करते हुए कठिन तपस्या की थी परन्तु वास्तव में तो यह सब केवल विधान ही पूरा करना था आप तो अन्य २ अवतारों की भाँति विशेष रूप से कार्य सम्पादन करने और संसार को कल्याण मार्ग दिखाने के अर्थ दैवी शरीर में प्रादुर्भूत हुए थे कितनी ही घटनाएँ तो आपके द्वारा ऐसी घटित हुई जो कि अवतारों की कृति और कार्य शैली से ज्यादा विस्मय जनक ज्ञात होती हैं, आप केवल योगी और जीवन मुक्त ही न थे प्रत्युत पूर्णत: वेदान्ती और सिद्ध पुरुष थे।

आपके समान संसार में सिद्ध पुरुष बहुत कम संख्या में आविर्भूत हुए होंगे ऐसी मेरी दृढ़ धारणा है। आपकी शिक्षाएँ और साधन प्रणाली आदि बातें हम आगे लिखेंगे।

आप इन दिनों लक्ष्मणगढ़ में मुत्सद्दियों की धर्मशाला में ठहरे हुए थे यहाँ पर बन्शीधर नाम का एक स्वर्णकार (सुनार) आया इसके नेत्र में दुस्सह पीड़ा हो रही थी और दिखाई नहीं देता था। अतीव दु:ख और दीनता से आपके चरण पकड़

कर गिड़ गिड़ाता हुआ प्रार्थना करने लगा कि मैं मर रहा हूं। मेरी रक्षा करो। आप तो मूर्तिमान दया ही थे। हँसते हुए कहने लगे इस नेत्र में तुम अग्नि का अङ्गारा डाल दो! वन्शी-धर यह सुनते ही शून्य हो गया, परन्तु वाहरे दृढ विश्वासी! साहस करके तत्काल ही एक अग्नि का दहकता हुआ खीरा अपनी आँख पर रख ही तो दिया बस तत्क्षण अंगारा शान्त हो गया और नेत्र की पीड़ा तत्काल ही दूर हो गई। भली भाँति दिखाई भी देने लगा। वन्शी धर के आश्चर्य और हर्ष का ठिकाना न रहा। वह आपके चरणों से लिपट गया और वहुत देर तक प्रेमाश्रु वहाता रहा कैसी अघटित है यह घटना! धन्य! सिद्ध पुरुष अवधूत अमृतनाथजी और वाहरे दृढ श्रद्धालु वन्शीधर! लक्ष्मणगढ़ में ही कई असाध्य रोगी रोग मुक्त हुए और इस कारण आपकी ख्याति और श्रद्धा बहुत बढ़ी। भक्त और सर्व साधारण जनता के हृदय में आपके प्रति दृढ़ विश्वास था और थी आपके वचन में अचल श्रद्धा।

गंगाबख्श माहेश्वरी का एक मात्र पुत्र मन्दाग्नि का जीर्ण रोगी था वह मरणासन्न अवस्था में आपके पास लाया गया। इसके शोकातुर माता पिता ने इसे आपके चरणों में डाल दिया और दया की भिक्षा माँगने लगे। आपने उदासीनता पूर्वक कह दिया इसको तुमने भूखा मार दिया अब जो इसकी इच्छा हो वह पदार्थ खिलाओ।

गंगाबख्श अपने घर जा कर रोगी से पूछने लगा क्या खाओगे। रोगी का श्वास शान्त गति से चल रहा था, परन्तु ज्यों त्यों करके वह बोला "दही वड़ा" यह सुन कर एक वार तो लोग घवराये परन्तु विश्वास अटल था अतः दही वड़े खिला ही तो दिये। जिस प्रकार निर्वाण होते हुए दीपक में तेल डाल देने से उसका प्रकाश वढ़ जाता है। ठीक वैसी ही दशा रोगी की भी हुई। उस में तत्काल ही शुद्ध प्राण का सञ्चार हुआ और ४ दिन में तो वह दही वड़े खाकर विलकुल निरोग हो गया।

रङ्गलाल चूड़ी वाला लक्ष्मण गढ़ निवासी क्षय रोग से पीडित था अच्छे २ वैद्य और डाक्टर इसकी औषधि करके थक गये थे और इसे अत्यन्त असाध्य कह कर दवा वन्द करदी थी। इस मृत प्रायः रोगी को लेकर घर वाले आपके पास आये और रोगी की दशा पर दया करने की प्रार्थना की। आपनें हँसते हुए कहा "भाई इसको तो छाछ रोटी खिलाओ"। घर जा कर रोगी को छाछ रोटी खिलाई यह आपकी दया से शीघ्र ही स्वस्थ हो गया।

मनुष्य शरीर में कुछ ऐसे रोग होते हैं जिनका कोई इलाज नहीं होता परन्तु "सिद्ध पुरुषों" के द्वारा ऐसे अमिट रोग भी तत्काल समूल नष्ट हो जाते हैं।

क्योंकि:—

अन होनी कर देत हैं, होनी देय मिटाय।
सिद्धन की सामर्थ्य है, अमृत सत्य सुनाय॥

ऐसे ही एक "मोतिया बिन्द" का रोगी रङ्गलाल वैश्य आपके पास आया, यह चिरकाल से अन्धा, कुटुम्ब द्वारा प्रेम युक्त सेवा से हीन अत्यन्त दुखी था। आपने इस से बहुत सी बातें पूछीं और इसकी करुण कहानी से आपका हृदय द्रवीभूत हो गया। कहने लगे भाई तुम ठण्डा जल पिया करो रङ्गीलाल ने ठण्डा पानी पीना आरम्भ कर दिया और कुछ दिन में नेत्र ठीक हो गये।

इसी प्रकार मुरलीधर सेठ लक्ष्मणगढ़ वाला भी बवासीर का रोगी था। इसे भी ठण्डा पानी पिला कर ही आरोग्य प्रदान किया।

आप इन दिनों दही का भोजन किया करते थे. एक दिन सायंकाल में एक वैश्य कोई १०, १२ सेर छाछ लेकर आपके पास आया, आपने मनोरञ्जन के साथ कहा भाई इस समय दूध नहीं पीते, इसे जमा दो सवेरे दही खायँगे। वैश्य ने कहा बाबा यह दूध नहीं छाछ है, आप बोले हम कहते हैं वैसा करो, इस बेचारे ने छाछ रखदी और संशय में भरा बैठ गया। इस समय आपके पास और भी कुछ साधु थे, कुछ देर बातें सुन कर वैश्य तो चला गया। समीपवर्ती साधु तो आपकी लीला को जानते ही थे, सवेरे दही खाने का सङ्कल्प करके अपने २ आसन पर आराम किया। सवेरा होते ही वैश्य एक प्रकार के उत्साह में भरा आपके पास आया। इसे देखते ही आपने साधु से कहा "लाओ रे रात वाले दूध का दही" साधु हण्डियां

उठा कर लाया तो देखा कि उस में मलाईदार अच्छा दही है। सबने मिल कर दही खाया वैश्य को भी खिलाया। दही बड़ा स्वादिष्ट और मीठा था, वैश्य के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

अब आप चूरू चले गये, सेठ बागला के डण्डे में आप प्राय: निवास करते थे अब भी इसी में ठहरे। देखने में यह स्थान तपो-भूमि ज्ञात होता है, यहाँ शान्ति मिलती है। यहीं पर एक रोगी सूर्यमल कोठारी का पुत्र गङ्गा प्रसाद आपके पास लाया गया। यह बहुत दिनों का असाध्य अस्थि-पिञ्जर मात्र रोगी शरीर था। जिसमें केवल क्षीण प्राण बह रहा था आपने इसे देख कर कहा "अरे इसे तो लड्डु खिलाओ" घर ले जाकर इसे लड्डू ही खिलाये गये। थोड़े दिन लड्डू खाने से वह अच्छा हो गया।

यहाँ पर एक वैश्य की औरत पागल हो गई थी। परिवार वाले दुखी थे आपने कहा "देखो भाई उसे भर पेट छाछ पिलाओ"। उसको छाछ पिलाई गई और वह ठीक हालत में हो गई।

एक बार आप एक खेत में गये। यहाँ के किसान का लड़का पागल हो गया था इसकी माता लड़के को आपके चरणों में डाल कर रोती हुई उसके ठीक होने की प्रार्थना करने लगी। आप कुछ खीज कर बोले "मैं क्या करूँ इसका, फैंक इसे बाड़ से बाहर" उस स्त्री ने तत्काल ही इस लड़के को

ग्राड़ के बाहर फेंक ही तो दिया, लड़का ठीक दशा में उठ कर माता के पास आया।

आप पुनः लक्ष्मणगढ आ गये। दर्शकों और यात्रियों की भीड़ तो जहाँ आप जाते वहीं एकत्र हो जाया करती थी। यहाँ पर "महतूडी" नाम की एक ब्राह्मणी प्रसूतावस्था (जापा की दशा) में त्रिदोष में आगई आपने कहा "रामजी उसको तो केवल छाछ ही पिलाओ" बस यह छाछ पिलाने से २ घण्टे में निरोग हो गई।

बन्शीधर सुनार के हाथ पैर वायु से जकड़ गये आपके कथनानुसार दो दो तोला शहद चार दिन तक पानी के साथ पिलाया गया और वह ठीक हो गया

सं० १६६१ वि० में लक्ष्मणगढ निवासी मदनलाल वैश्य चूड़ी वाले की स्त्री प्रसूतावस्था में सन्निपात में आ गई। रामनारायण वैद्य का इलाज करवाया गया परन्तु कोई लाभ न हुआ, अन्त में आपकी आज्ञा से दही रोटी खिलाई गई और रोगिणी स्वस्थ हो गई। मदनलाल आपके पूर्ण भक्त और विश्वासी मनुष्य हैं।

दशमोल्लास

विचित्र चमत्कार
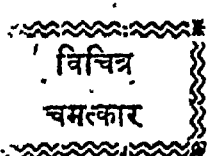
आप उदयपुर पधारे यहाँ की दादू पन्थी जमाअत के कई नागे साधु आपके प्रेमी थे। इनमें कई अच्छे सा· भी थे जैसे-नारायणदासजी तूहीरामजी आदि।

एक बार चन्द्रदास नामक साधु सहित आप नागली के ठाकुर के घर पहुंचे। चन्द्रदास ने ठाकुर से दूध मँगवाया। परन्तु ठाकुर थोड़ा दूध लाया इस से चन्द्रदास ने क्रुद्ध हो कर दूध को गिरा दिया इस पर आप हँसते हुए वोले "भाई खीजते क्यों हो जा ठाकुर तेरा दूध तेरे ही आ गया" इतना कह कर चल दिये। ठाकुर अपुत्र था। इस वचन से उसके ठीक समय पर सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ।

एक बार आप रिड़मलासर (जोधपुर) पहुंच गये। यहाँ गो स्वामी रतनपुरी रहते थे। इस ग्राम का पानी खारा था आप से प्रार्थना की गई मीठे पानी के अर्थ। आपने कहा कुआँ खुदवाओ, पानी तो मीठा निकलेगा परन्तु राहगीरों को पानी पिलाते रहना। ऐसा न करोगे तो जल खारा हो जायगा। कुआ खुदवाने पर पानी मीठा निकला, कई वर्ष तक रहा परन्तु पथिकों को पिलाना वन्द कर देने पर खारी हो गया।

रतनपुरीजी वहुत समय तक आपकी सेवा में रहे। यह अच्छे साधु थे, इनकी स्मरण शक्ति अच्छी थी इनको कथा कहानी आदि वहुत ही याद थी।

एक बार लक्ष्मण गढ़ के पास वाले किसी ग्राम के वाहर वाले वन में आप वैठे थे। इन दिनों आपको मनुष्यों से घृणा सी उत्पन्न हो रही थी। एक दिन संयोग-वश एक आदमी आपके पास आही तो गया। भाई मैं अकेला रहना चाहता

हूँ जाओ तुम यहाँ से आपने कहा। वह दुराग्रही न माना, वहाँ से न हटा, विवाद करने लगा आप बहुत देर तक उसकी बातें सुनते रहे। अन्त में उसको डराने के अर्थ अपना "डण्डा" उसकी ओर फेंका।

अब क्या था वह डरा और भागने लगा, परन्तु डण्डा भी उसके पीछे हो लिया पक्षी की भाँति। आगे वह और पीछे डण्डा भगे चले जाने लगे। यह दौड़ते दौड़ते घबड़ा गया परन्तु डण्डा तो छाया पुरुष की भाँति उसके पीछे चल पड़ा था। जिस प्रकार भगवान् रामचन्द्र का बाण जयन्त के पीछे चल पड़ा था, इसी भाँति ठीक उसी भाँति विलक्षण अवधूत भगवान अमृतनाथ का यह दण्ड इस वितण्डावादी के पीछे चला जा रहा था। न जाने कितनी दूर तक यह इसके पीछे उड़ता रहा। राह में मनुष्य यह अद्भुत लीला देखते और आश्चर्य में रह कर भय के मारे दूर भाग जाते थे। इस प्रकार दौड़ते दौड़ते बहुत समय हो गया। तब एक बुद्धिमान मनुष्य इसको राह में मिला और डण्डे के इस प्रकार साथ दौड़ने का कारण पूछा उसने दौड़ते २ सब हाल कहे तो वह मनुष्य बोला अरे भाई! तुमने अनर्थ कर दिया कि उन शान्त सिद्ध को छेड़ा, जाओ और उनके चरणों में पड़ कर अपने अपराध की क्षमा चाहो अन्यथा इसी प्रकार दौड़ते २ मर जाओगे।

वितण्डावादी अत्यन्त अधीर हुआ। हो गई थी जिसकी बुद्धि और धैर्य नष्ट। किसी प्रकार वापिस फिर कर आपके पास पहुंचा और आर्त होकर चरणों में गिर पड़ा अपने अपराध की क्षमा याचना की आपने दण्ड को पकड़ लिया तब मिली उस नीच प्रकृति मनुष्य को शान्ति!

इस प्रकार निर्जीव डण्डे का अविराम गति से चैतन्य व्यक्ति की तरह दौड़ना और फिर उसको चोट न मारना आपकी पूर्ण योग शक्ति और आत्म-बल का ज्वलन्त उदाहरण है!

इस घटना ने लोगों को आश्चर्य चकित और भयभीत कर दिये और जब तक आपने न चाहा पास में आने का किसी को साहस न हुआ।

शिव भगवान लक्ष्मण गढ़
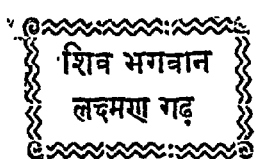
सं० १९६२ में शिव भगवान ने प्रार्थना की कि मुझे आत्म चिन्तन का मार्ग बतलाइये। यह बहुत समय से आपका सत्संग किया करते थे। आपने शिव भगवान को खान पान और आत्म चिन्तन की विधि बतलाई। यह अब तक उसी मार्ग पर चल रहे हैं और आपके पक्के प्रेमी हैं।

खारे कूप का जल मीठा कर दिया

एक बार आप भ्रमण करते हुए बीकानेर राज्य के किसी ग्राम में पहुँचे। इधर उधर जल का चिन्ह नहीं। बहुत देर बाद एक कूआ मिला। इस पर एक व्यक्ति स्नान कर रहा था आपने कहा भाई थोड़ा जल पिलाओ। इसने कहा बाबा इसका पानी खारा और विराजना (विषैला) है पीने का नहीं है। आप गाँव में चलिये मीठा पानी पिलाऊँगा आपने कहा नहीं मुझे तो इसी का जल पिलाओ यह चाहे जैसा हो। उसने वही पानी आप को पिला दिया। पीकर आपने कहा नारायण, यह तो मीठा जल है, तुमने खारा कैसे बतलाया। सदा के खारी जल को मीठा सुन कर उसे विश्वास न हुआ। उस ने स्वयं पीकर देखा तो जल वास्तव में मीठा था। उसके आश्चर्य का ठिक ना न रहा. आपके चरणों में गिर पड़ा और अपने घर चलने का आग्रह किया, आपने कहा मैं गाँव में न जाऊँगा तुम जाओ। आराम से जल पीओ पिलाओ, यह कहकर आप आगे चल दिये इस प्रकार आपने इस ग्राम वालों का सङ्कट मिटा दिया।

बीकानेर राज्य में जल का अत्यन्त कष्ट है, बारह २ कोस तक पानी नहीं मिलता और मिलता भी है तो विषैला। जिसे पीने से मनुष्य और पशु पक्षी मर जाते हैं। कैसा है कष्ट इस बालुकामय भू-भाग में जल का। हरे!

तीन क्यारी गाजर का भक्षण किया और वरदान से क्यारियां वैसी ही हो गई

एक वार आप भ्रमण करते हुए रामगढ़ के समीप एक ग्राम में पहुंचे, श्री सन्तोषनाथजी आपके साथ थे वहाँ एक माला के क्षेत्र (खेत) में गये । माली भक्ति पूर्वक बोला महाराज गाजर खाइये आपने कहा भाई थोड़ी गाजरों के खाने से मुझे तृप्ति नहीं होती । माली ने कहा वावा आप स्वयं ही उखाड़ कर जितनी खाना चाहें उतनी ही खावें । अब क्या था आप श्री सन्तोषनाथजी सहित गाजरें उखाड़ कर चर्वण करने लगे, तीन क्यारियों की गाजर खा चुके जब माली आया, देख कर घवड़ाया और बोला वावा आपको तृप्त करने की मेरी सामर्थ्य नहीं है क्षमा कीजिये । आपने गाजर खाना वन्द कर दिया । कुछ देर ठहरे और चलते समय माली से बोले "तेरे तो खेत में गाजरें वहुत हैं आनन्द कर"। आप के चले जाने के वाद माली ने आकर देखा, क्यारियाँ भरी हैं । माली आश्चर्य में डूव गया । यह क्या इन्द्र जाल का खेल है !

श्रद्धा और विश्वास में भरा आप को ढूँढ कर लाने के अर्थ दौड़ा परन्तु आप तो अन्तर्धान हो चुके थे। माली को खेत की गाजरों से पर्याप्त आय हुई और वह सदा के लिये आपका दृढ भक्त वन गया । कैसी है यह आश्चर्य जनक घटना !

जमाल गोटे की १०० गोली खाना, औषधि प्रयोग का विरोध

एक बार नवलगढ में आपने कह दिया कि दस्त में क़ब्जी रहती है। एक वैद्य भूँथाराम जो कि आपके पास आया करता था बोला आप जमाल गोटे की गोली खाइये। इस से आपकी कब्जी दूर हो जायगी और दस्त लगेंगे। आप बोले लाओ न वह गोलियाँ, यदि दस्त न लगे तो? वैद्य बोला आयुर्वेद के घमण्ड में भरा 'कैसे न होंगे दस्त'। वैद्य ने झुँझला कर १०० गोलियाँ आपके पास भेज दी और कहलवा दिया कि चार चार गोली काम में लाना। आपने तो १०० गुटिकाओं को एक ही बार में खाने का विचार कर लिया बोले बार २ कौन झंझट करेगा। बस चट कर गये। इस कठोर रेचक पदार्थ की १०० गोलियों का चर्वण एक ही बार में! समीपस्थ मनुष्य घबडाये और वैद्य से जाकर सब समाचार कह दिये। वैद्य बोला बस हो गया काम!

इन गोलियों के खाजाने के बारह घण्टे पीछे तक भी दस्त न हुआ तो आपने तीव्र स्वर से कहा. बुलाओ उस वैद्य को मुझे दस्त क्यों नहीं हुए। पास वाले पञ्जाबी बाबा साधु घबड़ा कर वैद्य के पास पहुँचे। वैद्य ने तो विचार रखा था नाथजी का शरीर अच्छा न रहेगा। परन्तु जब साधु के द्वारा सुना कि उनको दस्त न हुए और तुमको शीघ्र बुला रहे हैं। यह सुनते ही वैद्य अवाक् रह गया। और भयभीत हुआ आपके

पास आया। आप वैद्य पर खिजे और बोले देखा तुम्हारा जमाल गोटा। क्या खिला दिया मुझे। बतलाओ, मुझे दस्त मामूली दस्त भी क्यों न हुए? वैद्य तो घबड़ा गया, क्या उत्तर देता। चरण पकड़ कर बोला बाबा "क्षमा कीजिये, मेरा अपराध हुआ मुझे मेरे घमण्ड और धूर्त्तता का फल मिल गया आपकी लीला तो अगाध है। आपने कहा लीला क्या अगाध है। तुम को कुछ ज्ञात न था कि ऐसी वस्तुओं ने मेरे शरीर पर मेरी इच्छा के विरुद्ध कभी भी प्रभाव न डाला और न डाल सकेंगी!

तुम लोग मनुष्यों को ऐसी औषधियाँ और पदार्थ खिलाते हो कि जिनसे जन समाज निरोग होने की अपेक्षा रोगी, निर्बल और निकम्मा बनता जा रहा है। संसार में जितने डाक्टर वैद्य और हकीम हो गये हैं उतने ही ज्यादा रोग भी, नाना प्रकार की भयानक बीमारियाँ भी उत्पन्न हो गई हैं और होती जायँगी।

तुम जिस प्रकार खाद्य और अखाद्य बुरे और भले विषैले और गरम पदार्थ मनुष्यों को खिलाये जा रहे हो, इससे उनका रक्त, वीर्य आदि नष्ट हो गये हैं और इस कारण निर्बल छोटी और बुद्धि हीन सन्तान पैदा होने लगी है।

आयुर्वेद का प्रचार परोपकार और सुधार के अर्थ (समय समय पर जब संसार में कोई विशेष रोग फैल जाते) मनुष्यों

के खान पान रहन सहन और आचरण के बिगड़ने के कारण हुआ था। वह बहुत ही कम मात्रा में प्रयोग में लाया जाता था और वह भी जीविका के रूप में नहीं, उपकार के रूप में। तुम लोगों ने तो इसको एक प्रकार का व्यापार धन्धा या रोजगार बना डाला है। न तुमको वनस्पतियों के रङ्ग रूप आकार प्रकार देश काल का ज्ञान है, न तुमको रोग का ठीक कारण और स्वरूप ही ज्ञात होता है। पढ़े लिखे और दूकान खोल कर बैठ गये। कराहते या मरते हुए रोगी तुम्हारे पास आये या तुम उनके बुलाने पर पहुंचे और कुछ यों ही सा देखा भाला चाहे रोगी को अन्तिम श्वास ही आ रहा हो अपनी फ़ीस के पैसे लिये और मग्न होते हुए आ गये अपनी दूकान द्वारी पर। भाई कहाँ तुम्हारे हृदय दया, सहानुभूति और प्रेम तथा उपकार की भावना। तुमको तो पैसे कमाने की चिन्ता है धन का लालच है और है अपनी उस पढी हुई विद्या का घमण्ड।

मनुष्य रोगी ही नहीं हो सकता यदि वह अपने खान पान रहन सहन को मर्यादित रखे। यदि ऐसा करते रहने पर भाग्यवश रोग हो ही जाय तो उसे प्राकृतिक उपचार करना चाहिए। जैसे मिट्टी जल, वायु, धूप आदि का समुचित प्रयोग और लङ्घन तथा मौन। यह ऐसे साधन हैं जिनके द्वारा स्वतन्त्रता से ही आनन्द के साथ रोग को समूल नष्ट किया जा सकता है। ऐसी अवस्था में धातु भस्म, एक सेर पानी में औषधियाँ डाल कर काढा तैयार करना और इस पानी को

एक छटाँक रख कर उसे कराल विष बना कर रोगी को पिलाना और मृत्यु के मुख में पहुंचाना कहाँ की बुद्धिमानी है। विदेशी औषधि वर्षों के सड़े गले पानी यह रङ्ग विरङ्गे अर्क जो भारतीय जलवायु और शरीरों के अनुकूल नहीं ऐसे अज्ञात पदार्थों से बनी औषधियां के लाने वाली यह निरी मदिरा पिलाना क्या मेरे देश को मनुष्य जाति के लिए लाभदायक है ? कदापि नहीं।

रोगी क्षुधा, तृषा और गर्मी से घवडा रहा है और उसे बन्द मकानों में खूब वस्त्र ओढा कर दबाये रखना और उसको इच्छा का उसकी आवश्यकता का उसके जीवन के आधार का ध्यान न रखते हुए उसे दबाए रखना और अन्त में जान बूझ कर या अज्ञान वश काल के कराल गाल में घुसा देना ही तो तुम वैद्यों डाक्टरों और हकीमों का कर्तव्य हो गया है। जो कि मानव जाति के लिए शत्रुता का रूप है।

योग की सैंकड़ों क्रियाएँ और साधन ऐसे हैं कि जिनके द्वारा शारीरिक और मानसिक रोग तत्काल दूर हो जाते हैं। देश के राजाओं, धनियों और विद्वानों को चाहिए कि प्राकृतिक उपचार और योग क्रियाओं के प्रचारार्थ प्रबल चेष्टा करें और भारतीय नहीं, नहीं मानव जाति के इस औषधियां द्वारा होने वाले ह्रास को रोकें।

मेरा यह पूर्ण अनुभव दृढ़ सिद्धान्त और आवश्यक आदेश है कि औषधि सेवन हानिकर अनावश्यक और त्याज्य है। मैं प्रबल अनुभव के बल पर यह घोषणा करता हूँ कि जो मनुष्य मेरे बतलाये हुये मार्ग पर चलेगा इसमें दृढ़ विश्वास रखेगा उसका अवश्य ही कल्याण होगा, इसमें सन्देह मत करो।

आपकी उपर्युक्त शिक्षा का वैद्य के हृदय पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने आयुर्वेद के द्वारा चलने वाली अपनी जीविका को सदा के लिये त्याग दी सर्व साधारण तथा आपके अनुयायी जन समाज पर इसका पर्याप्त प्रभाव पड़ा और इन्होंने औषधि सेवन का परित्याग कर दिया।

यह आपके खान पान औषधि सेवन और रहन सहन के गम्भीर अन्वेषण और गवेषणा का प्रगाढ़ परिणाम है जो कि हमारे लिये चैतन्य-पथ-प्रदर्शक और हार्दिक सहायक सिद्ध हो रहा है और होगा।

देवीदत्त लाटा लक्ष्मणगढ़ निवासी आपके निष्ठावान सेवक थे एक वार आपने इसे जोर से बरसने वाली वर्षा को केवल जोर से चलती हुई हवा करके दिखादी और एक बार वर्षा होती हुई में सूखी पृथ्वी दिखाई इससे देवीदत के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

आप हाकिमों को धर्मशाला के ऊपर के कमरे में ठहरे हुए थे। एक दिन रामदेव वैश्य आपके पास आया कमरे में बैठ कर कुछ देर आप से बातें की जब सीढियों से उतरने लगा तब आप सीढियों में चढते हुए मिले! इस प्रकार आपने अपना शरीर एक ही समय में दो जगह पर दिखा दिया।

एकादशोल्लास

आपसे मेरा प्रथम मिलन और आत्म समर्पण

सं० १६६६ वि० के माघ कृ० ५ को मेरा भाग्योदय इस प्रकार हुआ। मैं और मेरे पिताजी के मित्र श्री गुलाबचन्द जी पुरोहित आमेर निवासी मेरी जमीन का लगान प्राप्त करने के अर्थ फतहपुर गये थे और उपर्युक्त तिथि को श्री मिर्जामल भाथरा की बगीची में हम बैठे हुये थे। गोस्वामी तुलसीदास जी के कथनानुसार:—

जानि शरद ऋतु खञ्जन आये।
पाय समय जिमि सुकृत सुहाये॥

हम लोगों में यों ही बातें हो रही थी कि मिर्जामल बोले यहाँ पर एक विलक्षण साधु श्मशान में रहते हैं और वह बड़े करामाती हैं। यह सुनते ही मेरा चित्त उत्साह से भर गया। और विशेष प्रकार का आकर्षण होने लगा हृदय में। अन्त में

आपके दर्शनों की उत्कट इच्छा और प्रगाढ़ प्रेम को लेकर हम तीनों फतहपुर के श्मशान में श्री जगन्नाथ सिंघानिया के तिवारे पर पहुंच ही तो गये। इन दिनों आपने सर्वसाधारण जनता का अपने पास आना बन्द कर दिया, ऐसा हम लोगों को तिवारे के समीप वाली शीशम के वृक्ष के नीचे बैठे आपके पहरे दार साधुओं से ज्ञात हुआ। हम निराश और हताश हो कर इन साधुओं के पास ही बैठ गये क्या करते। कुछ ही क्षण के बाद आप तिवारे के चबूतरे पर आये और "इन आदमियों को आगे आने दो"। ऐसा कहा।

मैं आनन्दित हो गया और हम शीघ्र ही आपके पास पहुंच गये हा! हा! कैसी की आपने हम लोगों पर दया। धन्य! आपकी दयालुता ने हमको कृतार्थ कर दिया जिस समय हम लोग आपके पास पहुंचे तो आप तिवारे के दक्षिणी चबूतरे पर बिछे हुये एक कम्बल पर केवल एक कोपीन पहिने पूर्वाभिमुख आसीन थे। हम लोग प्रणाम करके बैठ गये।

अहा! उस समय का वह दिव्य-दयामय रूप वह विलक्षण दर्शन, कैसा था उसमें आकर्षण वह अनोखी झाँकी जिसको देख कर मेरा कौमारावस्था को पहुँचने वाला शरीर और मन मुग्ध हो गये मैं तो इतना मग्न हो गया आपके मन हरण दर्शन करके कि मैं कौन हूँ कहा हूँ, कुछ भी सुधि न रही। वह

अलौकिक रूप, वह मन मोहिनी प्रतिमा, कान्ति मान शरीर मेरे हृदय पटल पर आसीन हो गया। सदा के लिये आसीन हो गया।

मैंने तो आत्म समर्पण कर दिया उन पवित्र चरणारविन्द में अहा! कैसा था वह सुन्दर सौभाग्य पूर्ण समय जब कि आपके प्रथम दर्शन हुये थे उसमें अनिर्वचनीय आनन्द का उस सुषुप्तावस्था का, जाग्रत सुषुप्तावस्था का क्या यह लेखनी वर्णन कर सकती है कदापि नहीं। वह प्रेमा मृत का प्रवाह न जाने कितनी देर तक बहता रहा मैं नहीं कह सकता उस समय मेरे साथियों से आपने क्या २ बातें की। मैं आपके सरल सौरभ-मय प्रेम पराग में आवद्ध था और मुझे ज्ञात हो रहा था कि मैं इस समय निष्कंण्टक निर्भय और निर्मल आनन्दामृत के समुद्र में मग्न हूँ। क्या कहूँ अब तक भी मैं नहीं समझ सका हूँ उस समय का कैसा आनन्द था। परन्तु कुछ भी हो उस समय के उस दर्शनानन्द का उस अज्ञानावस्था में किये हुए आत्म समर्पण का और उस दिव्य पुरुष की छाया का जो प्रभाव और परिणाम हुआ उसको मैं अब भली भाँति समझ रहा हूँ।

मेरे स्वर्गीय पिताजी सरल चित्त, साधु भक्त और भजनानन्दी पुरुष थे। उनके पास साधु सन्त आते रहते थे और मैं भी उनकी बातें तथा क्रियाएँ देखता सुनता रहता था। यद्यपि मैं उन दिनों बालक था, साधु संग के यथावत् लाभ को न

समझता था परन्तु साधु को देखने में, उनके पास जाने में मुझे हार्दिक आनन्द आता था, पिताजी भी ऐसे अवसर पर मुझे प्राय: सङ्ग रखते थे और साधु के दर्शन तथा सत्संग की बड़ाई किया करते थे। उनकी इस शिक्षा का मुझ पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा था, उनके किए हुए उस बीजारोपण का उनके निर्मल उपदेश का ही यह परिणाम है कि आज मुझे एक दिव्य पुरुष-विलक्षण विभूति का साक्षात्कार हुआ है और मैं अपने आप को कृतार्थ मान रहा हूँ!

आपने हम लोगों से कह दिया "रामजी अब जाओ तुम्हारे लिये यहाँ आने की रोक टोक नहीं है"। यह आज्ञा समीपवर्ती साधुओं को भी सुनादी हम लोग भी आज्ञा मिल जाने के कारण प्रणाम करके और उस दिव्य-दयामय विलक्षण अवधूत की प्रतिमा को हृदय में धारण करके इच्छा न होते हुए भी चले आये!

आपके पास से हम लोग चले तो आये परन्तु मेरा हृदय आपके प्रगाढ़ प्रेम की पाश में इतना प्रबल रूप से आबद्ध हो गया कि आपके पास ही रहने की इच्छा बनी रही। हृदय की दशा न जाने किस रूप में परिवर्तित हो गई। आपकी आत्म शक्ति से आकर्षित मेरा बाल हृदय वहीं आपके पास ही रहने को व्याकुल था!

फतहपुर में जिस समय नव्वाबी राजा था उस समय शीतलादेवी का एक मन्दिर मेरे पुरुषा "श्री मन्नूजी"

गुजराती को राज्य की ओर से सदा के लिये मिला था यह मन्दिर तो छोटा है परन्तु बाहरी परकोटा लम्बा चौड़ा बना हुआ है और समय समय पर श्री शीतलाजी की भेंट के रूप में यहाँ वैश्य और सुनारों ने मकान बनवा दिये हैं, यहीं मैं और श्री गुलाबचन्दजी ठहरे हुए थे।

फतहपुर में नव्वाबों द्वारा ४०० बीघा के करीब जमीन भी मेरे पुरुषाओं को मिली थी इसी का लगान लेने हम यहाँ आया करते हैं। पहिले तो सं० १६५६ वि० तक यहीं रहते थे मकानात भी अच्छे बने हुए थे, परन्तु कई कारणों से पिताजी आमेर (जयपुर) रहने लगे वह मकानात बेच दिये गये!

मेरी आयु इस समय १५ वर्ष और एक मास की थी। गुलाबचन्दजी प्रतिदिन सायङ्काल आपके पास जाते और रात को ११, १२ बजे तक लौटा करते थे। मैं भी कभी कभी जाया करता था। गुलाबचन्दजी को योग्य पात्र जान कर आपने आत्म चिन्तन का मार्ग बतला दिया, समुचित शिक्षा दे दी।

गुलाबचन्द जी पर शिक्षा का प्रभाव और रहन-सहन

आपकी शिक्षा से गुलाबचन्दजी का रहन सहन खान-पान व्यवहार सब बदल गया यह त्यागी की भाँति रहने लगे सांसारिक कार्यों को प्राय: छोड़ दिया। इससे इनके समीपवर्ती लोगों पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा और कई

मनुष्यों के चित्त में यह आदर्श के रूप में स्थापित हो गये। इनकी आत्मा में शान्ति स्थापित हो गई और यह साधन कार्य में जुट गये। यह वर्ष में कई वार आपके पास जाया करते थे इन पर आपकी विशेष कृपा थी। यह अटल विश्वासी और दृढ़ धारणा वाले वन गये थे।

कई वार इनको भयङ्कर रोगों का सामना करना पड़ा। परन्तु दृढ़ निश्चय भी इन रोगों से दृढ ही होता गया। इन्होने औषधि सेवन का सर्वथा परित्याग कर दिया कष्ट सहते रहे, केवल आपके आश्रय के वल पर।

आप कहा करते थे गुलावचन्द वडा दृढ़ निश्चयी और सच्चा मनुष्य है। उसका अवश्य कल्याण होगा वास्तव में गुलावचन्द जी धन्य है, हमारे लिये आदर्श हैं!

नारायण गिरी को हींगलाज देवी के दर्शन

एक वार आप भ्रमण करते हुये वीकानेर के वालुका-मय-भूभाग के गहरे वन में विचर रहे थे। सङ्ग में *श्री नारायण गिरी नाम के एक साधु थे। एक वर्षाती तालाव पर आप ठहरे हुए थे।

---

* यह अनुभव नाथ नाम से प्रसिद्ध जयपुर चांदपोल के श्मशान में रहते थे इनका यहीं देहान्त हो गया।

नारायण गिरी ने कहा महाराज आप आज्ञा दें तो मैं "भाई स्पर्श आऊँ" (हींगलाज देवी के दर्शन कर आऊँ) आपने कहा भाई देखो यों तो तुम्हारी इच्छा है जाओ परन्तु मैं तो समझता हूं यदि तुम्हारी मनोवृत्ति माई स्पर्श के विचार में पूर्ण तया दृढ़ हो गई है तो यहीं पर तुम्हें माई के दर्शन हो सकते हैं। जितना समय तुम वहाँ जाने में लगाओगे उसके लक्षवें भाग से भी अल्पकाल में ही माई स्वयं यहाँ आकर तुम्हें दर्शन देकर कृत कृत्य कर सकती है।

नारायण गिरी ने आपकी बात का उत्तर कुछ भी न दिया परन्तु उनके मनमें नाना प्रकार के संकल्प विकल्प उठ रहे थे, वह उच्छृंखल हो रहे थे। माई के पास कैसे जाऊँ इत्यादि बातों में यह उलझ रहे थे। रात्रि का समय हुआ वहीं विश्राम किया।

जब मध्य-रात्रि हुई तब आपने पुकार कर कहा नारायण गिरी! मुझे ज्ञात होता है कि माई तुम्हें दर्शन देने आ रही है। तुम चरण स्पर्श करने को सन्नद्ध हो जाओ। माई तुम्हारी भावना पर प्रसन्न हो गई है। इस बात के सुनने से वह चकित हो गये। आसन पर से उठ बैठे स्वस्थ हो कर देखा तो सामने दूर बहुत दूर चका-चौंध उत्पन्न करने वाला तीव्र प्रकाश, कोलाहल पूर्ण भारी भीड़ सी दृष्टी गोचर हुई। देखते ही देखते वह दृश्य बिल्कुल समीप आ पहुँचा। अब तो

साधु जी के छक्के छूट गये। ऐं, यह क्या। यह क्या बात है! स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ !

एक भीमकाय सिंह पर आरूढ़ अष्ट भुजा आयुध और शृङ्गार पूर्ण विचित्र सैन्य मण्डल के मध्य में भगवती महा माया तड़ित वेग से उनकी ओर धाय मान हो रही है। साधु जी घबड़ाये और दौड़ कर आपके चरण पकड़े, कातर स्वर से प्रार्थना करने लगे, महाराज यह क्या लीला है? मैं तो इस दृश्य से भयभीत हो रहा हूं! मेरे नेत्र बन्द हुये जाते है! मेरी रक्षा करिये!!

आपने कहा भाई भयभीत होने की क्या बात है. तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने को भक्त वत्सला महामाया जी स्वयं पधारी हैं! तुम जाओ और इनके चरण स्पर्श कर लो।

साधु जी बोले महाराज मुझ में तो बोलने की सामर्थ्य नहीं मेरा मुँह सूखा जाता है, मैं तो दर्शन पाकर कृतार्थ हो गया, अब तो इस विचित्र दृश्य को नेत्रों से देख भी नहीं सकता। यह कह कर आपके चरणों में गिर पड़े। वह माया-मय दृश्य तत्क्षण लुप्त हो गया!

पाठक वृन्द! इस आश्चर्य पूर्ण एवं विलक्षण कार्य ने तो नारायण गिरी को एक साथ भयभीत कर दिया। यह यद्यपि आपकी योग-शक्ति और आत्म-बल से परिचित थे परन्तु इस लीला ने तो इनको सब प्रकार मूढ़ सा बना दिया। इस विषय

में विशेष क्या लिखूं, केवल इतना ही लिखा जा सकता है कि यह कार्य भगवान अमृतनाथ के दैवी पुरुष होने का और एक ज्वलन्त उदाहरण है !

चूरू के बाहर किसी जोड़े में आप निवास कर रहे थे। कि यहाँ का थानेदार किसी चोर की तलाश में अपने सिपाहियों के साथ आया अँधेरे के कारण आपको ही चोर समझ पकड़ो २ करता हुआ आपके साथ अभद्र व्यवहार किया आप ने इसके उत्तर में कहा, शाबाश !! यह शब्द सुन कर थानेदार को ज्ञात हुआ यह तो श्रीनाथजी हैं, तब तो उसके भय और व्याकुलता का ठिकाना न रहा, वह चरण-पकड़ कर क्षमा प्रार्थी हुआ। आपने कह दिया भाई जाओ यहाँ से, मैं तुम्हें क्या कहता हूँ। थानेदार चला गया परन्तु उसके पेट में दारुण दर्द उत्पन्न हो गया और कई उपचार करने पर भी ३ दिन तक दर्द न मिटा। अन्त में आपके भक्त लोग आये और थानेदार को जीवन दान दे देने की प्रार्थना की। आप तो दया की मूर्ति थे वहाँ गये और आज्ञा दी कि इस पर पानी का लोटा डालो, पानी डाला गया और थानेदार तत्काल ही ठीक हो गया।

भ्रमण करते हुए आप फतहपुर पधार आये। इन दिनों श्री स्वामी ज्योतिर्नाथजी, रामभजनजी आदि साधु आपकी सेवा में रहते थे और जगन्नाथ सिंघानियाँ के तिबारे में निवास करते थे।

सं० १९६९ में आप ५५ सत्तू और घृत पान किया करते थे इसके पश्चात् दुग्ध का आरम्भ हुआ ३५ सेर दूध प्रति दिन पीते रहे कई मास तक।

द्वादशोल्लास

पाँगलनाथ के हाथ पैर ठीक किये

सं० १९६९ ज्येष्ठ। आप फतहपुर के उसी अपने नियत त्रिवारे में आसीन थे, एक पाँगलनाथ नाम के साधु इनका जैसा नाम था वैसा ही शरीर भी था अर्थात् हाथ और पैर दोनों ही बेकार थे कदाचित जन्म से ही यह पंगु और टूँटे थे, बेचारे बड़े कष्ट से अपना जीवन व्यतीत करते थे।

यह आपके पास कभी २ घिसटते हुए दर्शनार्थ आया करते थे एक दिन गर्मी के दिनों मध्याह्नकाल में मरुस्थल की उस जलती हुई मृत्तिका में घिसटते हुए आपके दर्शन को आये त्रिवारे का चबूतरा ऊँचा है अतः यह उस पर चढ़ न सकें, पैड़ियों पर ही बैठे रहे।

कुछ देर में आप त्रिवारे से बाहर आये और इन्हें धूप में पड़ा देख कर आपके करुणामय हृदय में इनके प्रति दया का वेग पूर्ण सञ्चार हुआ और बोले, भाई ऊपर छाया में आ जाओ। दुखी पाँगलनाथ कातर स्वर में बोला महाराज मेरे हाथ पाँव टूटे हुए हैं, ऊपर चढ़ नहीं सकता आपने कहा तुम्हारे हाथ पाँव टूटे हुए नहीं हैं, मैं कहता हूँ कि यदि तुम

किसी चीज को पकड़ कर खड़े हो तो भली भाँति चलने फिरने योग्य हो सकते हो। मेरे वचन पर विश्वास करो और दीवार को पकड़ कर खड़े हो जाओ। पाँगलनाथ आपकी दया और सहानुभूति से द्रवित हो कर रोने लगे! आपने कहा धैर्य रखो आज तुम्हारा भाग्य चैतन्य हो गया है। कष्ट सदा के लिये दूर हो गया है। प्रमाद मत करो शीघ्र खड़े हो जाओ मानलो तुम अब पंगु नहीं हो। यह कह कर आप तो अपने आसन पर चले गये। दे दिया आपने अपने स्थूल पांव पद्म का बल पागलनाथ को! धन्य योग-शक्ति!

पाँगलनाथ उत्साह आश्चर्य और आशा की तरङ्गों में लहराता हुआ कुछ समय तक वहाँ ठहरा रहा। पश्चात् उसी प्रकार घिसटते हुए अपने स्थान पर आया। गट्टे के थम्बों में लगे तारों को पकड़ कर उठने की चेष्टा की और तत्काल ही उसके हाथ पैर सीधे हो गये! उनका हृदय आपके प्रेम दया और महानता से भर गया! मन ही मन आपका स्मरण करके साष्टाङ्ग दण्डवत् की!! इनके हृदय में इस समय जो हर्ष और आशा उत्पन्न हुई होगी उसको लेखनी कैसे लिख सकती है!

यह आश्चर्य पूर्ण समाचार तड़ित वेग से शहर में फैल गया और आने लगे लोग पाँगलनाथ को देखने और करने लगे मुक्त कण्ठ से आपके यश, दया योग-शक्ति और आत्म-बल

की भूरि २ प्रशंसा। कई मुख्य व्यक्ति आपके पास पहुँचे। और पाँगलनाथ की बातें करने लगे। आपने उदासीनता पूर्वक कहा भाई जैसा संस्कार था वैसा ही गया। मुझे क्या कहते हो। मेरे वचन पर विश्वास लाने वालों, मेरी दया के पात्रों, और आदेशानुसार चलने वालों के लिये संसार में कुछ भी दुर्लभ नहीं है अब जाओ यहाँ से। "दैवेच्छा वलीयसी"।

पाठको कैसी है यह अघटित घटना! जिस प्रकार हिन्दू शास्त्र के अनुसार उत्पन्न हुए अन्य २ अवतारों द्वारा मनुष्य जाति का उद्धार हुआ जैसे:—नामदेव, कबीर, मीराँ, अहिल्या, द्रौपदी नरसी प्रहलाद आदि के कष्ट दूर हुए उसी प्रकार विलक्षण अवधूत भगवान अमृतनाथ के द्वारा जन्म पङ्गु पाँगलनाथ का भी उद्धार हुआ। आप भी अन्य अवतारों की भाँति धर्म की स्थापना करने और दुखियों के कष्ट मिटाने के अर्थ इस भारत भूमि पर दैवी शरीर में प्रादुर्भूत हुए और सहस्रों रोगी, दरिद्र और पुत्र हीनों को मनोवांछित फल देकर कृत-कार्य किये।

पाँगलनाथ को हाथ पैर देना आपके दैवी पुरुष होने का एक और उत्कट प्रमाण है। धन्य है दीनोद्धारक भगवान अमृत नाथ! इस घटना से चिरकाल से आपके दर्शनाभिलाषी राव राजा माधवसिंह की सीकर में आपके दर्शनों की इच्छा और भी उत्कट हो गई!

शेखावाटी, बीकानेर और हरियाणा तथा पञ्जाब आदि की जनता पर इस घटना से गम्भीर प्रभाव पड़ा और एक प्रकार से यात्रियों का मेला रहने लगा। इस कोलाहल से बचने के अर्थ आप भ्रमण को पधार गये। थोड़े समय के पश्चात् आप पुनः यहीं पधार आये।

श्री स्वामी शीतलदास

श्री स्वामी शीतलदास वैरागी (रामानुज-सम्प्रदाय) साधु थे यह आपके साथ बहुधा रहा करते थे। आपके कथनानुसार श्री शीतलदास जीवन मुक्त पुरुष थे। आपके कथन पर विश्वास करके जनता ने श्री शीतलदास की बहुत सेवा की। यह शरीर के लम्बे रंग के काले और कुरूप थे परन्तु इनके मुख पर कुछ विशेष प्रकार की आभा और क्रान्ति थी जो कि इनके आत्मिक प्रभाव को प्रगट करती थी और लोग इनसे प्रभावित रहा करते थे। वैसे यह मस्त और निर्भय व्यक्ति थे इनका साधुत्व श्रेष्ठ था। इन्होंने एक मन्दिर धींगड़िया (शेखावाटी) में बनवाने का विचार आपके सामने प्रगट किया।

आपने कहा "क्या करोगे मन्दिर बनवाकर, क्यों पत्थर चूना इकट्ठा करते हो, साधु के लिए यह कर्म दुख दायक है"। परन्तु शीतलदास न माने तब आपने ७००) रु० मन्दिर के अर्थ किसी से इन्हें दिलवा दिये किन्तु मन्दिर बनवाने को मना कर दिया।

शीतलदासजी न माने, मन्दिर बनवाया गया, इसमें हजारों रुपये व्यय हुए इन्होंने इन रुपयों के अर्थ इधर उधर भ्रमण भी किया। शीतलदासजी ने शरीर त्याग दिया परन्तु मन्दिर की व्यवस्था अब तक ठीक नहीं है और लड़ाई झगड़े हो रहे हैं।

ऐसे सन्त भी (शीतलदास जैसे) कम उत्पन्न होते हैं बिसाऊ के बूचासिया लोगों में इनका भी प्रेम था।

श्री ज्योतिनाथ जी का सर्प से बचाया

वैशाख सं० १६६६ वि० में फतहपुर में ही एक बार रात को श्री ज्योतिनाथ जी पानी पीने को उठे तो आपने कहा भाई घड़े के पास सम्हल कर जाना वहां पर एक सर्प होगा। जाकर देखा तो एक काला और बड़ा सर्प घड़े को घेरे बैठा है।

इसी प्रकार अद्भुत अलौकिक और लोकोपकारक कार्य करते हुए आपने २४ वर्ष तक भ्रमण किया इस दो युग के समय में आपने सहस्रों रोगियों को आरोग्य किये। कई पुत्र हीनों को आपकी अनुकम्पा से पुत्र-रत्न प्राप्त हुए हजारों दरिद्रों की आर्थिक दशा सुधरी और सांसारिक व्यवहार सुख-मय बना। आहार विहार और औषधि प्रयोग का गम्भीर अन्वेषण और गवेषण करके जन समाज को खान, पानादि के विषय में आपने अगाढ़ अनुभव के बल पर शिक्षाएँ दीं। कई

आत्मदर्शनाभिलाषियों को आत्म दर्शन की सरल और योग्य विधि की दीक्षा दी आपकी शिक्षाएँ लौकिक और पारलौकिक दोनों विषय में समुचित लाभ प्रद और आनन्द दायक हैं।

आप अखण्ड, ब्रह्मचारी अपूर्व त्यागी, पूर्ण वैरागी, महान् योगी और अद्वैतवादी ब्रह्म वेत्ता महा पुरुष थे। आपके मुख से जो वचन निकला वही अकाट्य और अटल, जिस व्यक्ति पर आपकी उदार दृष्टि पहुँची वही सुखी और शान्त। जो विचार आपने प्रगट किया वही तत्त्वण पूर्ण और जिस मार्ग से गमन किया वही सरल और सीधा।

संखिया जैसे कराल विष का चर्वण, सींगी मोहरा और हींगलू आदि का भक्षण, अर्क दुग्ध का महिनों तक पान करना, कई मास तक बिना अन्न, जल रहना और मणों अन्न, जल एक ही दिन में भक्षण करना, लकड़ी पत्थर आदि निर्जीव वस्तु को उद्दण्ड मनुष्य के डराने के अर्थ फेंकना और कई कोस तक उसका उड़ते चले जाना। कतिपय मृत व्यक्तियों को जीवित कर देना आदि दुष्कर और भीषण कार्य आपके द्वारा सम्पादित हुए जिनसे साधु समाज, पण्डित मण्डल तथा सर्व साधारण जनता अतिशय चकित और तृषित भाव से आपके दर्शनार्थ दौड़े चले आते थे और अपने वांच्छित लाभ को समुचित प्रकारेण प्राप्त होते थे।

अब आप विचार प्रगट करने लगे कि दो युग तक भ्रमण किया अब विश्राम करूँगा।

श्री विलक्षण अवधूत

जीवन चरित्र तृतीय खण्ड.

त्रयोदशोल्लास.

भीषण प्रतिज्ञा और आश्रम-निर्माण

सं० १९६९ वि० के श्रावण में फतहपुर के जगन्नाथ सिंघानियाँ के श्मशानी तिवारे में वहाँ के कई गण्यमान्य नागरिकों तथा निकटस्थ साधुओं के सम्मुख प्रतिज्ञा की कि चिरकाल तक-दो युग तक भ्रमण किया, भौतिक शरीर के सुख दुःख की ओर तनिक भी ध्यान न दिया, अब मेरा दृढ निश्चय है कि मैं इस शरीर को विश्राम दूँगा। आवश्यक कार्य भी लेटे हुए ही करूँगा भ्रमण काल में जो अन्वेषण किया है सर्व साधारण जनता उससे लाभ उठायगी! अक्षय भण्डार का द्वार खुल जायगा!! मेरे आश्रम में आये हुए विश्वासी मनुष्य इच्छित फल पायेंगे!!!

इस प्रकार भीषण प्रतिज्ञा करके आपने वालुका के कोमल आसन पर शयन किया, और सदा के लिये किया! उस समय उस विराट् शरीर का विश्राट दर्शनीय था। जो सज्जन उस समय उपस्थित थे वह भी उस समय के दृश्य का वर्णन करने में असमर्थ रहे।

सायङ्काल हो चुका था, आपने अटल शब्दों में प्रतिज्ञा करके नेत्र बन्द कर लिये इस समय आपकी सेवा में श्री स्वामी ज्योतिनाथजी, सन्तोषनाथजी १ लालदासजी, २ कृष्णदासजी आदि सन्त दिन रात रहा करते थे। आप जिस समय जो कुछ बात कहा करते उसे उसी प्रकार किया करते थे, यह बात सब लोग भली प्रकार जानते थे किन्तु फिर भी लोगों को यह विश्वास न हुआ था कि आप अब आसन के ऊपर से खड़े ही न होंगे। जब एक दो तीन करके कई दिन बीतने लगे और आपने आवश्यक शारीरिक कार्यों के लिये भी आसन को न त्यागा तब तो लोगों में भाँति २ की चर्चा होने लगी।

फतहपुर तथा अन्य स्थानों की जनता में यह समाचार शीघ्र ही व्याप्त हो गया कि "श्री नाथजी महाराज लेट गये और अब न जाने कब तक न उठेंगे।" भक्त और दर्शक उत्सुक हो होकर आपके दर्शनार्थ दौड़े आने लगे।

सेठ जगन्नाथ सिंघानियाँ भी आपके पास आये और कहा कि महाराज आप आनन्द से विश्राम कीजिए। मैं सब प्रकार का प्रबन्ध करूँगा। आप बोले भाई, मुझे ऐसी किस वस्तु की आवश्यकता है जिसके प्रबन्ध की तुम चिन्ता करोगे। सेठ ने बहुत आग्रह किया परन्तु आपने कुछ भी इच्छा प्रगट न की।

---

१ यह दोनों साधु अब नाथ सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये इनकी शिखा काट कर आपके अर्पण की गई। इनका नाम श्री लालनाथ और कृष्णनाथ रहा। लालनाथ बारबाम रहते हैं (लोहारू) और श्री कृष्णनाथ चूरू (बीकानेर) में शरीर त्याग दिया

अब तक आप स्थाई रूप से कहीं भी निवास न किया करते थे "अनिकेत थे" किन्तु अब भ्रमण काल समाप्त हो गया, विश्राम काल आया है। ऐसी अवस्था में (स्थायी निवास काल में) आश्रम का बनना अत्यावश्यक समझा जाने लगा। अतः सेठ गोरखराम चमड़िया, बद्रीदास भूरामल खेमका, कृष्णदेव नेवटिया आदि आपके विशेष सेवकों ने प्रार्थना की कि बाबा यह मरघट का स्थान है यहाँ प्रायः ज्यादा मनुष्य आते हैं और जन-कोलाहल से आपकी शान्ति में विघ्न उपस्थित होंगे यदि आप आज्ञा दें तो कहीं एकान्त स्थान पर आश्रम बना दिया जावे। आप ने उत्तर दिया, यह आश्रम ही है यहाँ कौनसी झंझट खड़ी होगी और यदि होगी तो कहीं अन्यत्र चले जायँगे। परन्तु भक्त लोग अनुरोध और आग्रह पूर्ण प्रार्थना करते ही रहे तब आपने कहा भाई तुम नहीं मानते तो जाओ ज्योतिनाथ से पूछो, जैसे वह कहें उसी प्रकार करो मुझ से इस विषय में बार २ कुछ भी बात न किया करो।

स्वामि ज्योतिनाथ जी आपके अत्यन्त कृपा पात्र, विश्वास पात्र और कार्य कुशल शिष्य हैं। आपके शरीर सम्बन्धी समस्त कार्य इन्हीं के निरीक्षण में होते और मुख्यतः यह स्वयं ही किया करते थे। जब भक्त मण्डल ने इनसे पूछा तो इन्होंने बहुत विचार और ध्यान पूर्वक निश्चय करने के पश्चात् आश्रम का बन ना ही उचित समझा। और अपना विचार आपके सम ट करते हुए प्रार्थना की कि आश्रम तो बनना ही

चाहिए। आपने भी इस कार्य को उदासीनता पूर्वक स्वीकार कर लिया। आश्रम बनना निश्चित हो गया और स्थान नियत करने पर विचार किया जाने लगा।

श्री ज्योतिनाथजी ने फतहपुर से उत्तर की ओर 'रामगढ़ के मार्ग पर दौलताबाद ग्राम से पश्चिमोत्तर कोने में ऊँचे टीले पर जो कि "खाकी का टीबा" के नाम से प्रसिद्ध है आश्रम बनना निश्चय किया और कार्यारम्भ हो गया। उपर्युक्त स्थान पर एक टीन का घर-भण्डार, दो छप्पर की कुटियाँ और आपके लिए एक बँगला फूस का अनुमान पन्द्रह फीट लम्बा बन गया इसके चारों ओर काँटों की बाड़ बनवा दी गई और द्वार पश्चिम की ओर बनवाया गया। इस प्रकार सुन्दर स्वच्छ और छोटा सा आश्रम बन कर तैयार हो गया।

श्री ज्योतिनाथजी सन्तोषनाथजी आदि साधु आपको कपड़े की बड़ी झोली में लिटा कर नव निर्मित आश्रम में ले आये इस प्रकार माघ शुक्ला ५ सोमवार सं० १९६९ वि० से आपने वर्तमान आश्रम में निवास किया।

सेवक मण्डल आवश्यक वस्तुएँ लाकर आश्रम में एकत्र करने लगे, थोड़े दिन में पर्याप्त सामान एकत्र हो गया। आपके विश्राम करने के समाचार समस्त शेखावाटी, बीकानेर राज्य, हरियाणा और पञ्जाब प्रान्त तक व्याप्त हो गये, यात्री

दर्शक और सर्व साधारण जनता बड़ी संख्या में आपके दर्शनों के लिए आने लगी आपने कह दिया "दशां द्वार खुले हैं जो माँगेगा वही पायगा" भ्रमण काल में आप जन समाज को पास नहीं आने दिया करते थे अब विश्राम काल में यह बन्धन हटा दिया गया और जनता उत्साह और आशा और हर्ष के साथ आपके पास आने लगी और एक प्रकार से यात्रियों की भीड़ रहने लगी।

स्वर्गीय सीकर नरेश श्री माधवसिंह जी का दर्शनार्थ आना

सं० १६७० वैशाख में स्वर्गीय सीकर नरेश श्री माधवसिंह जी जो कि आपके दर्शन की इच्छा चिरकाल से रखते थे। जब इन्होंने सुना कि अब आपने स्थायी विश्राम कर लिया है और सर्व साधारण प्रजा का आना जाना आरम्भ हो गया है तब आपके दर्शनार्थ आने की आज्ञा लेने के लिए आपने मुख्य सेवकों को भेजे। जब यह लोग आपके पास आये तो आपने कहा भाई अब यहाँ पर सबके लिये मार्ग है "राव रङ्क एकहि सेरी" अर्थात् "राजा-प्रजा के लिए एक हि मार्ग है" कह दिया। राव राजा आनन्द से आ सकते हैं राजा के मुख्य लोग चले गये।

कुछ दिन पश्चात् राव राजाजी बड़ी उत्सुकता, प्रसन्नता एवं हर्ष के साथ अपनी चिरकाल की अभिलाषा पूर्ण करने के

लिये आये। आश्रम से दूर ही अपने वाहनों को त्याग कर नम्रता पूर्वक प्रणाम करते हुए आश्रम के द्वार पर आये और पुनः अन्तः प्रवेश के लिए आज्ञा चाही, आपने प्रसन्नता से आने की आज्ञा दी। और राव राजा आपके बङ्गले में आये साष्टाङ्ग दण्डवत् कर एक स्वर्ण मुद्रा भेंट की और बैठ गये। आपने राजा के साथ यथोचित वार्तालाप किया और अपनी चमत्कार पूर्ण बातों से सन्तुष्ट कर दिया।

-राव राजा बोले, महाराज मुझे कुछ सेवा करने की आज्ञा दीजियेगा। आपने कहा क्या सेवा तुमसे लेऊँ ? शयन करने को पृथ्वी और शरीर के पोषणार्थ अन्न, जल पर्याप्त मिल जाता है। तुम राजा हो न्याय परायण हो कर प्रजा का पालन करो और सदाचार से रहो, बस इसी से मैं सन्तुष्ट हूं। यह बातें सुन कर राव राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए और अपना साफा उतार कर आपके चरणों में रख दिया और बोले मेरे शिर पर अपना हस्तारविन्द रख दीजियेगा यह मेरी उत्कट इच्छा है कई बार आग्रह करने पर आपने अपना हाथ अनुग्रह पूर्वक राजा के शीष पर धर दिया राजा प्रसन्न चित्त आप से आज्ञा लें कर चले गये।

इसके पश्चात् वर्ष में कई बार राव राजा आपके दर्शनार्थ आया करते। एक बार एक ग्राम का पट्टा (सनद) तैयार करके लाये और आपके चरणों में रख दिया तब आपने पूछा यह

क्या है ? राजा ने उत्तर दिया यह एक ग्राम का पट्टा है मैं आदर और श्रद्धा पूर्वक आपकी भेंट करता हूं। आपने कहा नहीं यह झञ्झट मैं अपने साथ नहीं लगाता समग्र पृथ्वी मेरी है जहाँ जाऊँगा वहाँ बैठने को स्थान और भोजन मिल जायगा। फिर यह पट्टा, छोटा सा पट्टा लेकर क्या करूँ ? तुम राजा हो प्रजा के पालनार्थ धन उत्पन्न होने के लिए पट्टे तुम्हारे पास चाहिए। बहुत आग्रह करने पर भी आपने उसे लेना स्वीकार न किया। तब राजा ने कहा महाराज ! आश्रम के पास की कुछ भूमि तो साधुओं के रहने फिरने के अर्थ आश्रम के निमित्त लगा देने की आज्ञा दीजियेगा। आपने राव राजा जी के इस आग्रह को उदासीनता पूर्वक स्वीकार कर लिया। आज्ञा मिलने पर राजा ने अपने भृत्य ठाकुर "भूपालसिंह" और "हैदर खाँ पठान" को कह दिया कि आज ही इस आश्रम के चारा और २५ बीघा भूमि के काँटों की वाड करवादो "यह भूमि सदा के लिये आश्रम के आधीन रहे" यह आज्ञा सुनादो उसी दिन आश्रम के पूर्व रामगढ़ का मार्ग, दक्षिण में सेठ रामप्रताप चमड़िया का बाड़ा, पश्चिम में सदर मार्ग और उत्तर में दौलताबाद के टोडा चौधरी का खेड़ा। इस चतुर्मुखी सीमा पर बाड़ करवा दी। यह भूमि "श्री नाथ जी की वनी" के नाम से प्रसिद्ध हो गई।

श्रीराव राजा द्वारा पूरे ग्राम का पट्टा भेंट करने, आग्रह और अनुरोध पूर्वक भेंट करने पर भी आपने इसको लेना स्वीकार

न करके अपने त्यागी होने का पूर्ण परिचय दिया। और जनता विशेष कर साधु और ब्राह्मण समाज के सन्मुख यह पवित्र आदर्श रख दिया कि धन सम्पत्ति और जमीन आदि साधु ब्राह्मणों को स्वीकार न करना चाहिये, क्यों कि यह सब सांसारिक झंझट उत्पन्न करने वाले प्रगाढ बन्धन हैं। त्याग का स्थान बहुत ऊँचा है और इसी के द्वारा स्थायी शान्ति प्राप्त की जा सकती है।

सं० १९६० या ६१ में इस भूमि का पूर्वी भाग राज्य से फतहपुर के ठाकुरसीदास हिसारिया को बेच दिया गया था। इस भूमि पर अधिकार करवाने को राज्य कर्मचारी आये तब आश्रम की ओर से उन्हें रोके गये। वर्त्तमान सीकर नरेश राव राजा कल्याणसिंह जी को इस बात की सूचना दी गई। कुछ दिन पश्चात् राव राजा स्वयं आश्रम पर आये। पूज्य पिता के द्वारा आश्रम को भेंट की हुई इस भूमि को देखी, सब समाचार सुने और अपने तत्कालीन प्रधान सचिव (सीनियर आफिसर) ख्वाजा अजीजुर्रहमान को आज्ञा दी कि "श्री नाथ जी को भेंट की हुई जमीन सदा सर्वदा आश्रम के अधीन रहे। यह अन्तिम आज्ञा निकाल दी है।

ठाकुरसीदास ब्राह्मण को दूसरी जगह जमीन दी गई। अब इस भूमि का पट्टा भी हो गया है. यह छब्बीस २६ बीघा के करीब है।

आपने राजा के द्वारा भेंट किया हुआ पट्टा स्वीकार न करके अपने त्याग का पूर्ण परिचय दिया। राव राजा अतिशय प्रभावित हुए। वर्तमान साधु ब्राह्मणों को आपके इस त्याग पूर्ण आचरण से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। साधु और ब्राह्मण सदा से त्यागी हुये हैं। त्याग ही इनका उत्कृष्ट बल है। इसके द्वारा ही यह लोग सांसारिक वन्धनों को काटने में समर्थ हुए थे और हो सकते हैं। द्रव्य और भूमि तथा स्त्री ही सांसारिक वन्धन का आवागमन का क्लेश चिन्ता और रक्त पात का मूल कारण है। इन तीनों महा शत्रुओं को पराजित करने से ही, इनका सर्वथा त्याग करने से ही साधु ब्राह्मण का नहीं नहीं मनुष्य मात्र का कल्याण हो सकता है, अन्यथा नहीं।

राव राजाजी ने अपने आन्तरिक विचार आपके सम्मुख प्रकट किये। और अपने उचित और युक्ति-युक्त उत्तरों तथा शिक्षाओं के द्वारा इनका समाधान किया। इससे सीकर नरेश को सन्तोष हुआ और आपके विश्वाश पात्र वने।

राव राजा भाग्यशाली और प्रजा प्रिय राजा थे, इन्होंने सीकर को नवीन रङ्ग में रङ्गा और आनन्द पूर्वक अपना कार्य काल समाप्त किया इन्होंने वहुत आग्रह करके आश्रम में उत्तरीय त्रिवारा और कोठरी वनवाई तथा पूरे समय में आपकी सेवा करते रहे।
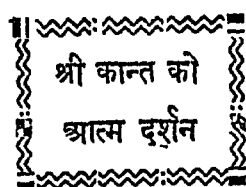
श्री कान्त को आत्म दर्शन

दरभङ्गा निवासी पं० श्री कान्त कुछ समय फतहपुर मे निवास करते और नेवटियों की छत्री में अध्यापन कार्य किया करते थे यह योगाभ्यास और आत्म दर्शन के पिपासु थे और साथ ही सदाचारी और सरल चित्त तथा योग्य पण्डित थे। एक वार कदाचित् सं० १६७० के आरम्भ काल में आपके दर्शनार्थ आये। और वार्तालाप से तृप्त होने के पश्चात् योग सम्बन्धी किये हुए अपने कृत्यों को वर्णन करते हुए अपनी अभिरुचि प्रगट की कि आप यदि अनुग्रह पूर्वक आत्म दर्शन का साधन मुझे वतावें तो मैं कृत-कार्य होऊँ।

प्रथम तो आपका स्वभाव दयालु और उदात्त था ही फिर श्री कान्त को योग्य जिज्ञासु जान कर इन्हें अपनी सत्य सरल और आत्म दर्शन (समाधिस्थ) होने की शिक्षा प्रदान करते हुए बोले।

मन कितहू डोले नहीं, निश्चल पद में वास।
सहज समाधि लगायले, यह पद है सन्यास ॥"

"भाई, चाहे जैसे दुष्कर और दुःसाध्य साधन करते रहो जब तक मन शान्त नहीं होता तव तक आत्म दर्शन नहीं हो सकता और लग नहीं सकती सहज समाधि। अपने अहार विहार को सुधारो। एकान्त सेवन करो, मन वचन और कर्म

से अपने आपको सद्गुरु को समर्पण करो और करो तन्मय होकर श्वास का ध्यान।" आपके वचन श्रवण करके श्री कान्त कातर स्वर से कहने लगे महाराज! मैंने योग और वेदान्त के उत्कृष्ट ग्रन्थों का भली भाँति अध्ययन और मनन किया, कतिपय योगयुक्त साधुओं से शिक्षा सुनी, मेरा समाधान न हुआ। परन्तु जो शान्ति मुझे इस समय प्राप्त हो रही है वह कदापि न हुई थी कृपा करके मुझे अपने आश्रम में लेकर मेरा उद्धार करें यही प्रार्थना है।

आपने कहा:—कहता हूँ, कहे जाताहूँ कहा बजाऊँ ढोल।
श्वास २ में जात है तीन लोक का मोल॥

भाई श्वास में तन्मय हुए विना आत्म-दर्शन नहीं हो सकता बस यही है मेरी शिक्षा तुम इसके अनुसार अपना रहन सहन बनालो बस मिल जायगी तुमको शान्ति।

श्री कान्त आपके वचनानुसार ठण्डे पदार्थों का सेवन करते हुए श्वास के ध्यान में तन्मय हुए। इनका रहन सहन आहार, विहार, बदल गया और कुछ काल में इन्हें आत्मानन्द का आस्वादन आने लगा।

रुपये पिशाच:—परन्तु काल चक्र के प्रबल झोंके से श्री कान्त अपने लक्ष्य से गिर गये। हुआ क्या? एक बार श्रीकान्त के घर से २५००) रु० की अत्यावश्यक माँग आई यह दौड़ कर

आपके पास आये और चिन्तित हो कर अपनी आवश्यकता प्रगट की। आपने कहा भाई देखो, सांसारिक झञ्झट में फँस कर तुम आत्मानन्द की ओर से वहिर्मुख होते हो। आत्मानन्द की इच्छा करने वाले साधक को धनानन्द की इच्छा नहीं करनी चाहिये। सांसारिक व्यवहार को त्यागे विना मनुष्य आत्म शाक्षात्कार नहीं कर सकता। अन्धकार और प्रकाश एक साथ नहीं रह सकते।

"काम राम दोनों कभी रहत न एके ठाम"

श्री कान्त कायर की भाँति करने लगे, तब आपने कहा जाओ यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो कृष्णदेव नेवटिया से रु० लेलो। श्री कान्त विश्वास करके चले गये और कृष्णदेव नेवटिया ने इन्हें २५००) दे दिये।

श्री कृष्णदेव नेवटिया फतहपुर के प्रसिद्ध सेठ रामदयालु के पौत्र और आपके सेवक हैं। सज्जन एवं सरल प्रकृति के पुरुष हैं इन्होंने आपकी आन्तरिक प्रेरणा से श्री कान्त को प्रसन्नता पूर्वक इतना रुपया दे दिया।

श्री कान्त ने रुपये लेकर अपने घर में भेज दिये परन्तु वह आत्मानन्द का स्वाद वह शान्ति का सुख इनसे कोसों दूर चला गया यह दिन रात व्याकुल रहने लगे! कुछ दिन पश्चात् पुनः आपके पास आये और दीनता पूर्वक प्रार्थना

करने लगे, उसी खोये हुए आत्मानन्द की प्राप्ति के लिये। आप तो उदार हृदय थे श्रीकान्त से कह दिया भाई अपने धनानन्द प्राप्ति के प्रमाद की प्रतिक्रिया में कुछ दिन कठोर साधन करो तुम्हें फिर वही आनन्द प्राप्त हो जायगा।

पं० श्रीकान्त ने दृढता पूर्वक पुनः गाढ साधन किया और उनको आत्मानन्द का स्वाद आने लगा। हमको दृढ विश्वास है कि उन्हें आत्म साक्षात्कार हुआ होगा। क्योंकि कुछ समय पश्चात् श्रीकान्त अपने देश चले गये।

चतुर्दशोल्लास

मैं विशेष रूप से आपके सम्पर्क में रहा

वैसे मैंने वि० सं० १९६६ के माघ में जब आपका प्रथम साक्षात्कार किया था तभी अपने आपको आपके श्री चरणों में भेंट कर चुका था परन्तु क्योंकि यह मेरी अज्ञानावस्था थी। अब मैं युवक हो गया था।

और आप भी स्थिर निवास कर चुके। अतः मैं आपके निकट सम्पर्क में आया। इन दिनों में एक छोटा सा गृहस्थी था। माता छोटा भ्राता और मेरी स्त्री तक ही मेरा परिवार सीमित था। परन्तु गृहस्थ के झंझटों से प्रायः मुक्त सा था। कुसंगति में पड़ जाने के कारण यद्यपि मैं सन्मार्ग पर नहीं

चल रहा था किन्तु मेरे हृदय में अपने कृत्यों के प्रति मुझे दुःख था वैसे कोई विशेष रूप में कुमार्ग पर नहीं था। परन्तु थी मेरे हृदय में एक प्रकार की पीड़ा जो कि मुझे चिन्तित रखती थी और चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता था। पिताजी के बोये हुए बीज (साधु संगति और भक्ति सम्बन्धी पद्य पढना) मेरे हृदय में विद्यमान थे। पिताजी की मृत्यु सं० १९६२ वि० में हो चुकी थी अतः मैं ग्रामीण पाठशाला की पढ़ाई से आगे अध्ययन भी न कर सका था, किन्तु मुझे इस बात की चिन्ता रहती थी और मैं अपनी योग्यता बढाने की चेष्टा कर रहा था। इस काल में मुझे श्री गुलाबचन्द जी द्वारा बड़ा लाभ पहुंचा था। इन्होंने ही मुझे समय २ पर सम्हाला और विशेष रूप से मुझे सन्मार्ग पर लाने की चेष्टाएं की, जिससे मैं कुछ काम का मनुष्य बन सका, विविध प्रकार के पुस्तकाध्ययन और अवलोकन से मेरी योग्यता बढी। इस अध्ययन प्रेम ने मुझे पुस्तक संग्रह की चाट लगा दी। आगे जाकर इन पुस्तकों को व्यवस्थित रूप देकर मैं एक "शंकर पुस्तकालय" नाम का छोटा सा पुस्तकालय बना सका जो कि अब तक चल रहा है। ग्रामीण जनता इससे लाभ उठा रही है।

हाँ, तो मैं सं० १९७० में अन्धकार में फँस रहा था। ऐसी दशा में मुझे आपकी ओर से दया पूर्ण प्रकाश की रेखा दिखाई

थी और मैं फतहपुर में रहते हुए आपकी सेवा में अधिक समय व्यतीत करने लगा।

अपने श्री शीतला देवी के मन्दिर में निवास करता था। प्रातः काल आवश्यक कृत्य करके आपके पास चला जाता और सायंकाल तथा रात तक वहीं रहता। इस लम्बे समय में आपके पास रहने से मुझे बड़ा आनन्द मिलता कई प्रकार की शिक्षा पूर्ण बातें सुनता, और जो कुछ मुझसे हो सकती थी आपकी सेवा किया करता था।

इस सत्सङ्ग, वास्तविक सत्सङ्ग से मुझे बहुत लाभ हुआ और मैं अपने आपको प्रकाश में पाने लगा। आपकी संक्षिप्त वचनावली से ही मैं बहुत सी सांसारिक और आध्यात्मिक बातों के गुप्त रहस्यों को समझने लगा। आप मुझे बहुत ही दया और प्रेम से अपने पास बिठाया रखते और छोटे से छोटे सांसारिक कार्यों से लेकर आत्मदर्शन तक की शिक्षाएँ देते रहते, और मेरी शंकाओं का समुचित रूप से समाधान करते रहते थे। मैं अपने आपको एक प्रगाढ आनन्द पूर्ण प्रेम के आन्तरिक स्थान में पाता था, एक प्रकार से निर्भय भाग्यशाली और गुरु-भक्त समझता रहता था, वास्तव में मेरे ४ वर्ष बहुत ही आनन्द, उत्साह और आत्म अनुशीलन में व्यतीत हुए अहार, विहार, रहन सहन और आत्म चिन्तन

की शिक्षाएँ मैंने इस काल में समुचित रूपेण सुनी ग्रहण की और तदानुसार आचरण भी करता रहा।

इसी काल में मेरी स्त्री का देहान्त हुआ सं० १६७१ की जन्माष्टमी को। मैं इस स्त्री वियोग से दुखी हुआ अशान्त सा रहने लगा, दूसरी वार विवाह करने का यत्न भी करने लगा, इस कार्य में माता ने विशेष रूप में चेष्टा की और इन्हें चिन्ता भी ज्यादा रहती थी जो कि स्वाभाविक थी। मैं एक बार फिर अन्धकार में गोते खाने लगा और आपके पास पहुंच कर अपनी दुख गाथा सुनाई तथा दया की भिक्षा चाहते हुए विवाह होने की इच्छा प्रगट की। आप हँसते हुए बोले "भाई प्रकाश में रहना चाहते हो या अन्धकार में, दुर्गन्ध प्रिय है या सुगन्ध बोलो जल्दी ?"

आपके कृपा कटाक्ष पूर्ण इन प्रश्नों के उत्तर में मैंने प्रकाश और सुगन्ध को स्वीकार किया।

आपके वचनों का मेरे हृदय पर इतना पवित्र और प्रबल प्रभाव पड़ा कि विवाह करने की इच्छा सर्वथा विलोप हो गई "आपने कहा बेटा! ब्रह्मचर्य से रहते हुए आत्म चिन्तन करते रहो जिससे आनन्द प्राप्त कर सकोगे। संसार के नाशमान व्यवहार में मत फँसो।" विवाह करने से मुझे घृणा हो गई इसके बाद विवाह करने के साधन बड़ी सरलता से प्राप्त हुए माता तथा सम्बन्धी, मित्र आदि ने मुझे बहुत प्रेरित किया

परन्तु मैंने विवाह न किया। किन्तु दुर्भाग्य से मैं पूर्णतः ब्रह्मचर्य का पालन न कर सका। कुछ समय के बाद मेरे हृदय में सांसारिक कार्यों से घृणा सी हो गई। मैंने सन्यास लेने की इच्छा प्रगट की। तब आपने कहा "भाई माता के जीवन में साधु मत होना। वृद्धा को कष्ट होगा।"

मैं शान्ति पूर्वक साधन करता रहा सं० १६८० विक्रम के फाल्गुन में मेरे छोटे भाई का विवाह किया इस समय स्वामी श्री ज्योतिनाथ महाराज ने कहा था कि "विवाह तो वैशाख में करना अच्छा है" परन्तु माता आदि के हट से इस कार्य को रोक न सका और विवाह करने के ६ दिन वाद ही भाई की मृत्यु हो गई, इससे मुझे गहरा धक्का लगा और मेरे जीवन का अध्याय वदला मैं घर के वन्धनों में बुरी तरह जकड़ गया, गहरा अशान्त रहा, साधन से भी कुछ काल तक गिर गया परन्तु फिर ठीक ढङ्ग पर आ गया और चिन्ता मिट गई। अब तक मैं आपके वतलाये हुए मार्ग पर चल रहा हूँ। मुझे आपकी कृपा ने जगत के वहुत कुछ झंझटों से वचा लिया।

आश्चर्य जनक घटना

सं० १६७० के श्रावण में आपने शहद पीना आरम्भ किया प्रति दिन ऽ१, ऽ१। शहद पिया करते थे पानी मिला कर यह शहद ३ मास तक पिया। इसके बाद प्रति दिन ऽ१ नीवू का

रस २ माह तक पिया। इसके पश्चात् प्रति घण्टा ऽ१ सेर दूध पिया करते इस प्रकार ॥ऽ४ सेर दूध प्रति दिन पीते रहे ४ मास तक फिर आपने सोलह सेर गौ मूत्र प्रति दिन पीना आरम्भ कर दिया और १ मास तक पीते रहे। इस प्रकार इस १० मास के समय में आपने यह आश्चर्य जनक पान किये और अन्न जल का सर्वथा त्याग रखा।

गौ मूत्र (सिंहासन) का इतना परिमाण में पान करना अत्यन्त विस्मय का कार्य है।

आश्रम का कार्य सुचारू रूप से चलता था। आपकी सेवा में श्री स्वामी ज्यौतिनाथजी, कृष्णनाथजी, लालनाथजी, सन्तोष नाथ जी, भोमनाथ जी, ब्रह्मचारी जी आदि साधु रहा करते थे। इन लोगों में आपकी शारीरिक सेवा के कार्य बँटे हुए थे, श्री ज्यौतिनाथजी आपके प्रधान विश्वास पात्र बन सके, क्यों कि इन्होंने अपनी कार्य क्षमता, गुरु भक्ति और सत्यता से आपको सर्वदा सन्तुष्ट रखे। आश्रम का कार्य भार सब इन्हीं के द्वारा सञ्चालित होता/था। वैसे तो प्रायः सभी साधुओं पर आपकी कृपा थी परन्तु श्री ज्योतिनाथजी तो आपके बहुत ही निकट सम्पर्क में थे। और इनके विषय में आप यदा कदा कहा करते थे "ज्यौतिनाथ जीवन मुक्त होगा, यह बड़े राज्य का सिपाही है यह आश्रम के सब कार्य-

करता हुआ भी निर्लिप्त हैं, यह सब की पहिचान में नहीं आ सकता।

इनको आप आत्म चिन्तन में स्थित विवेक शील पूर्ण सदाचारी और दूरदर्शी कहा करते थे, आपका यह कथन अब १५ वर्ष से प्रत्यक्ष देखने में आ रहा है।

भविष्य वाणी

सं० १९७१ के मार्गशीर्ष में आप कहने लगे "जो किसान मोठ" शीघ्र उखाड़ लेंगे वह 'पछतायेंगे' शनैः २ यह बात बहुत ग्रामों में फैल गई। इसी समय श्री सीकर नरेश के भेजे हुए हैदर खां पठान आपके दर्शनार्थ आये। इनके द्वारा आपने राव राजा जी को भी कहला दिया कि अभी मोठ उखाड़ने का समय नहीं आया है। यह बात राव राजाजी को सुनादी गई और उन्होंने भी विश्वास करके आपके इस कथन का प्रचार करवाया, पौष मास में जाकर मोठों के इतनी फलियाँ लगी। इतना धान उत्पन्न हुआ कि किसानों का वर्षों का दरिद्र मिट गया। जिन किसानों ने आपके इस कथन पर विश्वास नहीं किया उन्हें अतीव पश्चाताप करना पड़ा।

ठाकरसी दास सरीफ को कराल सर्प के विष से बचाना

ठाकरसी दास सरीफ जो आपके अनन्य भक्तों में थे फतहपुर से बम्बई जा रहे थे। अर्द्ध रात्री के चांद आपके दर्शनार्थ आश्रम पर आए आश्रम की बाड़ के

पास इन्हें अचानक कराल काले सर्प ने डस लिया। यह घबड़ाये हुए आपके पास बङ्गले में पहुँचे। सर्प डसने का समाचार आपको सुनाया श्री कृष्णनाथ जी इन दिनों पहरे पर रहा करते थे. इन्होंने भी देखा तो पैर के अँगूठे में रक्त बह रहा था। आपने कहा भाई कोई काँटा लग गया होगा। इधर लाओ जरा मैं देखूँ तो सही देख कर कहने लगे सर्प नहीं खाया है। श्री ज्योतिनाथ जी आदि ने जाकर देखा तो सर्प के चिह्न उपस्थित थे परन्तु आपने कह दिया सर्प नहीं खाया है! यदि तुम को मेरे कहने पर विश्वास नहीं हो तो जाओ कोई औषधि करो। ठाकरसी दास तो आपके दृढ़ विश्वासी भक्त थे, तनिक भी न घबड़ाये, बोले आपके शरण रहते हुए मुझे कोई भय नहीं है! और आपके वचन में मेरा पूर्ण विश्वास है!! इनको विष का किञ्चित मात्र भी प्रभाव न हुआ और आपके चरण स्पर्श करके आनन्द और दृढ़ता पूर्वक ऊँट पर सवार हो कर दूँपालसर स्टेशन पहुंचे और बम्बई चले गये।

बिहाणी की रहने वाली वैश्य स्त्री को मन्दाग्नी

ज्येष्ठ का महीना था आप अपने बङ्गले में पृथ्वी पर लगे आसन पर पश्चिम की ओर शिर किये लेट रहे थे मैं पङ्खा कर रहा था। इसी समय एक जीर्ण शीर्ण शरीर की स्त्री बङ्गले में आई इस स्त्री में एक विशेष प्रकार की दुर्गन्ध

आ रही थी, शरीर अस्थि पिञ्जर मात्र था। प्रणाम करके बैठी और अति शब्दों में अपनी दुख गाथा सुनाई। और, प्राण की भिक्षा माँगती हुई रोने लगी। यह कहने लगी महाराज, ३ वर्ष से मुझे यह रोग है, दस्त खूब लगते हैं भोजन नहीं खाया जाता, शरीर में बल नहीं रहा, वैद्य डाक्टरों की औषधि लेते २ थक गई हूं। जीवन भार हो रहा है। या तो जीवनदान दे दीजिये या मृत्यु दान देकर मुझे इस घोर कष्ट से मुक्त करने की दया कर दीजिए।

आप दया पूर्वक हँस कर बोले भाई गाजर खाओ, शहद, मतीरा, मूली, छाछ, राबड़ी, गँवार जो अच्छा लगे वही खाओ। वह घबड़ाई, बोली महाराज किसी भी वस्तु के मुँह में लेने पर उल्टी (वमन) आती है। खाती भी हूँ तो जी घबड़ाने लगता है। मरने लगती हूं। आपने कहा तो भाई मैं क्या वैद्य डाक्टर हूं, किसी वैद्य के पास जाओ और औषध लो। यह कह कर आप मौन हो गए। स्त्री बहुत देर बैठी रही। आप अचानक बोले मुझ से "बतारे दवाई इसको"। मैं हक्का बक्का हो गया। बोला बाबा मैं क्या जान दवाई यह तो आपकी दया की भिक्षुक है। आप बोले अरे! सबसे पीछे की बतादे मैंने विचार किया तो जान लिया और कह दिया गँवार खाओ। आपने कहा औषधि सच्ची बताई है इसने। एक तोला गँवार खाया कर। जाओ किसी धर्मशाला में ठहरना।

स्त्री चली गई और आश्रम से दूर "चण्डी की धर्मशाला में ठहरी साथ में एक नौकर और ऊँट था। स्त्री किसी अच्छे घर की थी वह विश्वास पूर्वक गँवार खाने लगी, दो ही चार दिन तक १ तोला गँवार खाने से उसकी दशा सुधरने लगी और एक सप्ताह में तो वह बिल्कुल निरोग हो गई। अच्छी तरह भोजन करने लगी और पचाने लगी।

गोरख रामप्रताब चमड़िया फतहपुर को हानि से बचाया

सेठ गोरखराम चिरकाल से आपके पास आया करते थे। और समय २ पर आपकी सेवा भी किया करते थे। मारवाड़ी समाज की भाँति यह भी सट्टेबाज ही थे। एक बार इन्हें रुई के सौदे में ५० लाख से ज्यादा की हानि उठाने का समय आया। इन्होंने आपके पास आकर इस महान् हानि से बचाने की प्रार्थना की और आपकी कृपा से बच भी गये।

आश्रम निर्माण के पश्चात् सं० १९७१ वि० में इन्होंने दो गह का त्रिबारा और ४ कोठरियाँ बनवाने का विचार करके आप से स्वीकृति देने के अर्थ प्रार्थना की। आपने इन्हें कहा भाई मैं तो फूस के इस बँगले में रहना ही ठीक समझता हूँ पक्के मकान से मुझे घृणा है। सेठ के बहुत ही आग्रह करने पर आपने उदासीनता पूर्वक कह दिया तुम चाहे मकान बनवादो, मैं तो उसमें निवास न करूँगा।

आप जिस बँगले में निवास करते थे उसे उठा कर दूसरे स्थान पर रखा गया और इसकी जगह त्रिबारा तथा एक

कोठरी वनवाई गई। सेठजी ने अपना वचन पूरा न किया, अर्थात् दो गद्द की एवज एक ही गद्द का त्रिवारा और एक कोठरी वनवाई। हमारी समझ के अनुसार सेठजी ने यह कार्य अच्छा नहीं किया किसी महा पुरुष के सम्मुख दीन प्रार्थना करके स्वीकार कराये हुए अपने विचार को पूरा न करना उचित नहीं ऐसे कार्य अनुचित ही नहीं आगे जाकर हानिकर भी होते हैं। सेठजी के वंशजों को चाहिए कि वह अपने पूर्व पुरुषा के अधूरे कार्य को पूर्ण करें।

जियालाल जैन के मस्सों का रोग मिटा

एक वार आपके पास श्री जीयालाल जैन हाँसी वाले आये। इनके मस्सों (ववासीर) का रोग था। रक्त वहा करता था अपने रोग मुक्त होने की प्रार्थना की। आपने दया पूर्वक कह दिया "१ तोला गँवार चवाओ"। जीयालाल ने गँवार चवाया और उसी दिन उनका रोग मिट गया जीयालाल अव तक आपके भक्त बने हुए हैं यह हाँसी के कानूनगो हैं। आपके पूर्ण भक्त और सज्जन प्रकृति के मनुष्य हैं।

मुझको पद्यरचना का वरदान

सं० १९७२ वि० के ज्येष्ठ में एक दिन मैं जव अपने निवास स्थान से चलने लगा तो एक पुस्तक "कवीर संगीत रत्नमाला" अपने साथ ली, क्योंकि मुझे पद्य पढ़ने की चाट थी, मेरे चित्त में उत्साह था कि आज मैं इस

पुस्तक से आपको पद्य सुनाऊँगा। जब आपके पास पहुँचा तो आप नेत्र बन्द किये लेटे हुए थे। मैं चुप चाप बैठकर पंखा करने लग गया। परन्तु मेरे मन में यह आशा लहरें मार रही थी कि कब आप मेरी ओर देखें और कब मैं पद्य सुनाऊँ। बहुत देर बाद आपने नेत्र खोले। मैं चाहता था कि पद्य सुनाने लगूँ परन्तु आज्ञा मिले बिना ऐसा करने का साहस न हो सका। बहुत देर बाद आपने पुस्तक की ओर देखा और मुझे पूछ ही लिया कि यह कौनसी पुस्तक है मैंने पुस्तक का ब्यौरा सुनाया, और प्रार्थना की कि कबीर अच्छे महात्मा हुए थे-उनके पद्य बड़े अच्छे हैं, आज्ञा हो तो कुछ पद्य सुनाऊँ।

आपने गम्भीरता पूर्वक हँसते हुए कहा कबीर महात्मा नहीं भक्त थे और उन्होंने किसी पद्य की रचना नहीं की। उनके ही समय में या पीछे से उनके सत्सङ्गी लोगों ने उनके द्वारा सुने हुए उपदेशों को पद्य रूप में लिख दिए है।

प्रसङ्ग अच्छा चल गया और आपने थोड़ी ही देर में श्री कबीरदास, दादू दयाल, नानक, चरणदास आदि सन्तों का इतिहास इनकी योग्यता, क्षमता, पन्थ निर्माण रचना विचार आदि को सुना कर कहा भाई इनके जितने ग्रन्थ, पन्थों का प्रचार, नियम आदि बने हैं यह सब इनके अनुयायियों के बनाए हुए हैं महात्मा या भक्त लोगों ने न तो किसी प्रकार की रचनाएँ की थी और न किसी पन्थ का प्रचार ही किया

था यह सब तो उनके अनुगामी लोगों का ही काम है। इसके साथ ही आपने वेद, शास्त्र, पुराण आदि के विषय में इनके गूढ़ रहस्य रचना का कारण और लाभ को बहुत ही संक्षिप्त शब्दों में मुझे सुना डाला। इनके सुनने से मेरे हृदय का अन्धकार एकाएक दूर हो गया और मुझे एक विशेष प्रकार का आनन्द अनुभव होने लगा।

आपने दया भरे नेत्रों से मेरी ओर देख कर मन्द हास्य से कहा "यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम भी पद्य रचना कर सकते हो, विचार करते ही तुम्हारे मस्तिष्क में यह शक्ति उत्पन्न हो जायगी", सरलता और कृपा से अनायास ही यह वरदान पा कर मेरे हृदय में एक विशेष प्रकार का आनन्द और उत्साह उत्पन्न हो गया और मैं शीघ्रातिशीघ्र, इस वरदान का अनुभव करने की इच्छा से चंचल हो गया। सायंकाल होने पर मैं अपने निवासस्थान पर आया और पद्य रचना करने बैठा। मैंने बड़ी सरलता से निम्नांकित पद्य लिख डाला।

॥ पद्य ॥

सत गुरू नौका पार उतारो।
भवसागर का थाह नहीं है मन के खेवट मतवारो।
हूं अनाथ कोई नहीं साथो केवल तव आधारो ॥१॥
पञ्च भ्रमर मग में अति भारी, रोकत गैल हमारो।

अति विकराल रूप है सब विधि मच्छ एक मतवारो ॥२॥

पांच मीन अतिदीन जान मोहि, देत त्रास अति भारो।

काँपत काया डरपत है मन, स्वामी दया विचारो ॥३॥

"अमृतनाथ दया के सागर" मेरे दुःख निवारो।

दुर्गा शङ्कर, तव-शरणागत भव से शीघ्र उवारो ॥४॥

मैंने २० मिनट में यह पद्य लिख डाला। हृदय में उस समय कितना अगाढ़ आनन्द और उत्साह भरा हुआ था मेरे इसको तो मैं ही जान सकता हूं। पद्य रचना का मेरा काम चलता रहा। मेरा नाम दुर्गा प्रसाद पद्य रचना में ठीक न बैठ सकने के कारण दुर्गाशंकर लगाना पड़ता था परन्तु यह भी बहुत बड़ा रहा और आगे जाकर केवल "शंकर" ही अपना उप नाम पद्य रचना के लिये मैंने योग्य उचित और लाभप्रद समझा।

मैं शिव शक्ति आदि की उपासनामय पद्यों की रचना करने में लग गया, परन्तु आगे जाकर मुझे इससे उपराम सा हो गया, और योग, भक्ति, वैराग्य, प्रार्थना, निर्गुण भाव आदि की पद्य रचना की ओर मेरा मन लगा। परिणाम स्वरूप आपके गद्य, पद्य उपदेशों का पद्य रूप बना कर मैंने एक पुस्तक तैयार की जो कि सं० १९८८ वि० के फाल्गुण शिवरात्रि के समय श्री अमृतानुराग (शंकर विलास) के नाम से प्रकाशित हुई।

पद्य रचना का मेरा क्रम चल रहा है। आनन्द की तरङ्गें, नामक एक पुस्तक और भी प्रकाशित की जा चुकी है। और आगे भी कुछ होती रहेगी, पद्य रचना से मुझे विशेष प्रकार का आनन्द, शान्ति और सुख प्राप्त होता है यह है श्री गुरु देव के पवित्र वरदान का सुफल और मेरा सौभाग्य !

आपकी महानता

माघ शुक्ला ५ सोमवार सं० १९६६ वि० से आश्विन शुक्ला १५ सं० १९७३ वि० तक आप एक ही आसन पर लेटे रहे। पर्याप्त मात्रा में मनुष्य दर्शनार्थ आया करते थे। आगन्तुक मनुष्यों में प्राय: ३० तीस मनुष्य रोग (शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक) मुक्त होते थे। गणना लगाने पर सिद्ध होता है कि आपके इस स्थानावस्थित काल में प्राय: पैंतालीस सहस्र रोगी रोग मुक्त हुए। सैंकड़ों मनुष्यों ने दरिद्रता से छुटकारा पाया, बहुत सी वन्ध्याओं ने पुत्र लाभ किया, कतिपय मृत प्राय: शरीरों को जीवन दान दिया और बहुत से जिज्ञासु मनुष्यों को आत्म चिन्तन में लगा कर निज स्वरूप में स्थित किया। कई दुर्व्यसनी और जघन्य कर्म करने वाले मनुष्य आप की संगति और शिक्षा से सुमार्गी बने। यह है आपके दयालु स्वभाव, उदार वृत्ति, आत्मबल एवं तपस्या का परिणाम। कुछ बालक आपकी भेंट किये गये, यह अब आश्रम में हैं।
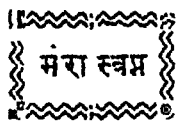
इसमें किञ्चित् मात्र भी सन्देह को स्थान नहीं कि आप का शरीर विशेप रूप से नैमैत्तिक था और मनुष्य समाज के सांसारिक, शारीरिक एवं मानसिक क्लेशों को हटाने में आपने सद् शिक्षा से पर्याप्त सहायता दी।

आपके तपस्या, त्याग, वैराग्य, आहार, विहार सम्बन्धी प्रगाढ़ अनुभव, दयालुता, शान्ति और तितिक्षा मनुष्य समाज के लिये आदर्श और अनुकरनीय है। आप की शिक्षा के अनुसार जिस मनुष्य ने आचरण किया वह सुखी हुआ और होता है। आप त्रिकालज्ञ और ब्रह्म वेत्ता महा पुरुप और उर्द्धव रेता योगी राज हुए हैं।

आप की बालक के समान सरलता, युवकों के समान साहस और उत्साह एवं वृद्धों के सदृश शान्ति, गम्भीरता आदि उत्कृष्ट गुण जन-समाज के लिये आदर्श हैं।

शरीर त्यागने से एक वर्ष पूर्व आपने यों कहना आरम्भ कर दिया था कि "इस घर में रहते बहुत समय व्यतीत हो गया अब रमण करेंगे"। किन्तु आपके वास्तविक भाव को कोई समझ न सका। सं० १९७२ के भाद्रपद में मैं और अन्यत्र लिखित श्री गुलाबचन्द्रजी के दत्तक पुत्र कल्याण वंद्य आपके दर्शनार्थ फतहपुर गये। जब हम लौटने को तैयार हुए तो आपने कहा "भाई आश्विन शुक्ला १५ को रमेंगे। इससे पूर्व तुम आ सको आ जाना, यह तिथि टल न सकेगी मेरा

विचार निश्चिंत है" । हम लोग. आपकी आज्ञा प्राप्त करके अपने घर आ गये ।

मेरा स्वप्न

दुःख है कि मैं आश्विन शुक्ला ६ को अपनी जमीन का लगान प्राप्त करने "गुढ़ा" चला गया आशा थी कि २, ३ दिन में लौट आऊँगा और आपके आदेशानुसार फतहपुर पहुंचूंगा परन्तु दुर्भाग्य वश पूर्णिमा वहीं आ पहुंची । पूर्णिमा की रात्री में मैंने तन्द्रा-वस्था में देखा कि "आप एक खिड़की में पद्मासन लगाये बैठे है । और मुझ को देख कर हँस रहे है" ! मैं इस दृष्य को देख कर व्याकुल हो गया, रात व्याकुलता में व्यतीत हुई । जब जयपुर पहुंचा तो ज्ञात हुआ कि आपने अपना भौतिक शरीर त्याग दिया है । इस दुखद समाचार को सुनते ही मेरे हृदय पर वज्रपात सा हुआ ! शोक ! ! मेरा अताव दुर्भाग्य है कि मैं आपकी आज्ञानुसार तिथि पर सेवा में न पहुंच सका और अन्त्येष्टि क्रिया में भी सम्मिलित न हो सका ! किन्तु यह सोच कर अपने हृदय को सन्तोष दिया कि "यही थी श्री गुरु देव की इच्छा" मैं क्या कर सकता हूँ ! मन कई. दिन म्लान रहा ।

सं० १९७३ की आश्विन शुक्ला ५ से आपने वार्तालाप करना बन्द कर दिया और दर्शनार्थियों पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया यहाँ तक की समीप वर्ती साधुओं को भी अपने पास आने से रोक दिये । भोजन पान भी कम कर दिया इसी

समय में मेरे मित्र और आपके सेवक आमेर निवासी देवी सहाय ब्राह्मण आपके दर्शनार्थ पहुंच गये।

आपका देहावसान

आश्विन शुक्ला १५ बुधवार सं० १९७३ को दिन के तीन बजे आपने अपने प्रिय अनुयायी शिष्य श्री ज्योति नाथजी और कृष्णनाथजी को अपने पास बुलाये और दया पूर्वक अपने समीप बैठा कर कुछ बातें कही। श्रीज्योतिनाथजी के मस्तक पर अपना पवित्र हस्तार्विन्द रखा और एक हाथ से श्री कृष्णनाथजी का हाथ पकड़ लिया और कहा "मैं रमता हूँ तुम निर्भयता और निष्पृहता से अपना काल यापन करो एवं मेरे समझाये हुए मार्ग पर चलते रहो मैं तुम से पूर्णतया सन्तुष्ट हूँ, तुमको पूर्ण शान्ति प्राप्त होगी, मेरे पास तुम्हारे लिये दिव्य स्थान है"। ऐसा कह चुकने पर एक तीव्र, बहुत ही तीव्र, तड़ाके का शब्द हुआ! आपने हँसते २ नेत्र बन्द कर लिये। और प्राण वायु की गति मन्द होते २ शान्त हो गयी! शरीर मन्दिर में से एक ज्योति निकलती हुई दिखाई दी!!

आपके निर्वाण प्राप्ति के साथ ही प्रबल मेघाडम्बर हुआ और वर्षा होने लगी। फतहपुर और आस पास के ग्रामों में आपके देहावसान की सूचना बिजली के सदृश्य व्याप्त हो गई और दर्शक एवं भक्त और यात्रियों के झुण्ड के झुण्ड आने लगे। कई भक्तों ने आपके शरीर की विधिवत् पूजा की।

सायंकाल होते २ जिस बँगले में आप निवास करते थे उसी में आपके शरीर को समाधि दे दी गई। सेवक मण्डली शोकाग्नि से जलने लगी परन्तु आपके कृपापात्र शिष्य श्री ज्योतिनाथजी ने अपने युक्ति युक्त वचनों से सबको शान्त कर दिये। और समाधिस्थान पर अखण्ड दीपक आरम्भ हुआ। यह अब तक जलता है।

दोहा

१   ७   ९   ३
ब्रह्म सिन्धु निधि गुण सहित शरत् पूर्णिमा जान।
सौम्यवार अपराह्न में, सन्त लहा निर्वाण ॥१॥
शरत् पूर्णिमा क्वार की, सौम्यवार अपराह्न।
'अमृत' अमृत में मिले, हुआ इन्द्र आह्वान ॥२॥
१९७३ का क्वार, शरत् पूर्णिमा तिथि बुधवार।
अमृत अमृत माहिं समाये, "शंकर" ने सत गुरु गुण गाये ॥३॥

इति! शान्ति! शान्ति!! शान्ति!!!

१९७३

श्री विलक्षण अवधूत अमृतनाथ का संक्षिप्त जीवन चरित्र समाप्त।

परिशिष्ट संख्या १

पूज्यपाद गुरु देव के महा प्रयाण के पश्चात् नियमानुकूल (श्रीनाथ सम्प्रदाय की प्रथा के अनुसार) आवश्यक क्रियाएँ की गईं। उचित समय पर एक बड़ा भोज (फतहपुर के ब्राह्मणों की ब्रह्मपुरी) हुआ। सीकर नरेश स्वर्गीय श्री माधव-सिंहजी की ओर से तथा सेवक मण्डल की ओर से पर्याप्त भेंट आई।

स्वामी श्री ज्योतिनाथजी को आपने शिष्य मान लिया था अतः यह आश्रम के अधिकारी और मठेश्वर बनाये गये। सेवक मण्डल ने इन्हें उसी आदरणीय और पूज्य भाव से मानना आरम्भ कर दिया।

सं० १६७४ में श्री गुरु देव का समाधि मन्दिर फतहपुर निवासी सेठ डूँगरसीदास नेवटिया ने बनवाया।

आश्रम नियम पूर्वक और ढङ्ग से बन गया। स्वामी ज्योतिनाथजी की स्वच्छता और परिश्रम ने आश्रम को स्वर्गाश्रम के सदृश सुन्दर स्वच्छ शान्तिदायक, सिद्ध पीठ, रम्य और आत्म स्फूर्तिदायक बना दिया। श्री गुरु देव की आभा चहुँ ओर दिखाई देने लगी। यात्रियों की भीड़ रहने लगी आवश्यकतानुसार सब सामान एकत्र हो गया। आप के समय में शहर में से भिक्षा (झोली) लाई जाती थी वह नियम-पूर्वक आती है।

श्री गुरुदेव का भंडारा और श्री ज्योतिनाथजी को पीर पदवी

वि० सं० १६८३ के फाल्गुण की कृष्णा २ से ६ तक आपका बड़ा भारी भण्डारा हुआ इसमें वागड़ प्रान्त के समस्त नाथ सम्प्रदाय के सन्त, महन्त, पीर निमंत्रित होकर आये। यह निम्न प्रकार है :—

झुँझनू, टाँई, अजाड़ी, (जयपुर) हनुमानगढ़, नोहर, सावाँ, गारबदेसर, चण्डालिया, मैडी, ऋणी, थान मठोई, ढिढाल, बूँन्दिया, राजगढ़, नाँवाँ (बीकानेर) सरसा, रुलाणी बिहाणी, रायसिंह पुरा (पंजाब) हलवास (जिंद) ढाणां (पटियाला) जेरपुर, सुलतानपुर, पचोपा, बारवास (लोहारू) सादणवा आदि बत्तीस धूणियाँ और इनके आधीन ६० मेंढियाँ।

इनके अतिरिक्त बीकानेर राज्य और सीकर राज्य तथा नवलगढ़, बिसाऊ जयपुर आदि के बहुत सेवक लोग भण्डारे में एकत्र हुए। सब मिल कर पाँच सहस्र मनुष्य, तथा इनके साथ आठ, नो सौ ऊँट, घोड़े, रथ आदि आये। इस मनुष्य दल को ठहरने का प्रबन्ध सुविधा पूर्वक किया गया। फतहपुर के सेठ रामप्रताप चमड़िया ने आगन्तुक मनुष्य समुदाय के अर्थ स्थान, जल, रोशनी आदि का पर्याप्त प्रबन्ध किया इसी समय आश्रम में एक जल का नल लगा दिया गया जो अब तक वर्तमान है।

फाल्गुण कृष्णा ५ को प्रात.काल नाथ सम्प्रदाय के नियमानुसार स्वामी श्री ज्योतिनाथजी को आगन्तुक पीर महन्तों की ओर से चद्दर ओढ़ाई गयी। जो कि वत्तीस धूणियों की चादर कहलाती है।

उत्तराधिकार का भव्य दृश्य

जब उत्तराधिकार का संस्कार होने लगा वह समय अतीव मन हरण था। चारों ओर भक्त मण्डल का घना झुण्ड, आगन्तुक स्त्रियों के मङ्गल गान, इनके मध्य में मठाधिपतियों का भव्य समाज और इस पूज्य समाज के मध्य में उच्चासन पर आसीन श्री स्वामी ज्योतिनाथजी का मन मोहक शरीर अत्यन्त रमणीय एवं सुन्दर प्रतीत होता था। और गोद में वैठे वाल साधु श्री शुभनाथजी वड़े भले ज्ञात होते थे। नगाड़े, शंख नागफणी और रणसिंहा आदि वाद्यों के गगन् वेधी शब्द चित्त को आकर्पित और आल्हादित कर रहे थे। इस समय इन्द्रदेव भी मुद्रित होकर नन्ही २ वूँदों से उपस्थित समाज को शान्ति प्रदान कर रहे थे।

इस संस्कार के समय भेष की चद्दर के पश्चात् श्रीयुत सीकर नरेश की ओर से २०१) और शाल जोड़ी ठाकुर भूपालसिंह ने भेंट की। इसके वाद भक्त मण्डल की ओर से पर्याप्त भेट चढी इनमें चूरू, सातड़ा, उदासर, किलाणा, विसाऊ, देवास, लछमणगढ़, फतहपुर आदि के लोगों ने मुख्य भाग

लिया। करीब दस हजार रुपये, कम्बल शाल जोड़ी आदि बड़ी संख्या में चढे।

इस प्रकार स्वामी ज्योतिनाथजी ने पीर पदवी प्राप्त की और आपके प्रिय शिष्य श्रीशुभनाथजी को भावी उत्तराधिकारी मान कर उनको पीर महन्त तथा अन्य जन समुदाय ने शाल जोड़ी ओढ़ाई।

पीर महन्त और अन्य साधुओं को १) प्रति मूर्ति चीर्पा (दक्षिणा) दी गई। भेप के सेवक पंख को १००) और एक जोडी आश्रम की ओर से दी गई।

जासासर के ठाकुर ने ७१ बीघा जमीन और उदासर के ठाकुर चिमनसिंह ने ५१ बीघा जमीन आश्रम को भेंट की।

फा० कृ० ७ को सेठ रामप्रताप चमड़िया ने भण्डारे में आये हुए मनुष्यों को एक भोज दिया।

भण्डारे में कदाचित् पन्द्रह हजार रुपये खर्च हुए। यह रुपये यद्यपि भक्त मण्डल से ही प्राप्त हुए परन्तु इसका विशेप श्रेय चूरू की जनता को है और इनमें भी श्री कोठारी कनीराम के प्रेम और श्रम का स्थान ऊँचा है।

—:❁:—

परिशिष्ट सं० २

श्री नाथजी की वंशावली

कदाचित् वि० सं० १७०० के लगभग श्री स्वामी चञ्चलनाथजी मन्नार्थी ने झुंझनू (जयपुर-शेखावाटी) में अपना आश्रम बनाया, जो कि अद्यावधि ठीक दशा में है और यहाँ पर इस समय ❀ श्री शिवनाथजी पीर हैं। श्री चञ्चलनाथजी, के श्री मोतीनाथ, श्री क्षमानाथ, श्री गणेशनाथ और एक और कोई इस प्रकार चार शिष्य हुए।

श्री क्षमानाथजी ने लोहारू राज्य के 'बारावास' नामक ग्राम में अपना आश्रम बनवाया। यह अच्छे साधु थे और इनके कार्यों से नव्वाब लोहारू ने प्रभावित होकर आश्रम के १०० बीघा जमीन भेंट की और ग्राम की तथा आस पास की जनता ने कुछ नियमित सेवा करने की प्रतिज्ञा की। यह दोनों ही चीजें इस समय तक आश्रम के आधीन हैं आश्रम का जीर्णोद्धार भी करवाया गया है।

श्री क्षमानाथजी के शिष्य श्री चम्पानाथजी हुए। श्री गणेश नाथजी ने बिसाऊ (शेखावाटी) में आश्रम बनवाया। इनके कोई शिष्य न था अतः श्री चम्पानाथ यहाँ के मालिक होकर निवास करने लगे। यह अतीव सुन्दर, सत्यभाषी संयमी

❀ नाथ सम्प्रदाय में महन्त को पीर कहते हैं।

और दयालु सन्त थे। बिसाऊ की प्रजा में इनका अच्छा मान था। और यह श्री मद्भगवद्गीता के अत्यन्त उपासक थे। सं० १९७२ वि० के माघ में इन्होंने शरीर त्याग दिया। इस समय इस आश्रम में श्री पूर्णनाथ रहते हैं और श्री पीर ज्योतिनाथजी ने इस स्थान का भली भाँति जीर्णोद्धार करवाया है। यहाँ का बूचासिया परिवार प्रधानतः आश्रम का सेवक है।

श्री चम्पानाथजी के शिष्य इस पुस्तक के नायक श्री स्वामी अमृतनाथजी हुए। आपने जिस प्रकार उत्कट तपस्या की और अज्ञानी अथवा दीन दुखी जन समाज का जैसा उपकार किया वह सब इस पुस्तक में लिखा जा चुका है।

नाथ सम्प्रदाय में कई प्रकार से गुरुत्व और शिष्यत्व का संस्कार होता है यथाः—चोटी गुरु, चीरा गुरु, टोपा गुरु, शिक्षा गुरु, वचन गुरु, और सत्य गुरु, । श्री अमृतनाथजी ने नियम पूर्वक किसी को शिष्य न बनाया। केवल अपने वचन द्वारा और शरीर त्यागते समय अपना हस्तारविन्द शिर पर धर के प्रकट कर दिया कि मेरा शिष्य और उत्तराधिकारी ज्योतिनाथ है।

[1] श्री कृष्णनाथजी और लालनाथजी भी वचन के बल पर ही नाथ बने थे और १ श्री मोहननाथ २ भानानाथ और ३ द्वारकानाथ की शिखा (चोटी) आपकी आज्ञा से श्री ज्योति

१—इन्होंने चूरू में शरीर त्यागा वहीं इनकी समाधि है।

नाथजी ने काटी थी। यह तीनों सं० १६७२ वि० में साधु बने।

श्री ज्योतिनाथजी उच्च श्रेणी के सन्त हैं। इनकी उच्चता तो इसी से प्रकट हो आती है कि विलक्षण अवधूत श्री अमृतनाथ जी की अतिशय कृपा और शिष्यत्व प्राप्त कर लिया। अतः उचित प्रतीत होता है कि इन की थोड़ी सी जीवनी यहाँ पर लिखी जाय।

श्री पीर ज्योतिनाथजी

इस सच्चे सन्त का जन्म हरियाणा प्रान्त के दणोदा नामक ग्राम में मार्ग शीर्ष शुक्ला ८ सं० १६३४ वि० में हुआ था।

आपका आन्तरिक भाव बाल्यावस्था से ही संसार के प्रति उदासीन था। विवाह आदिक सांसारिक बन्धनों की ओर न झुके और अपना जीवन संयम पूर्वक व्यतीत करने की दृढ़ धारणा से, स्वतंत्रता और पूर्ण ब्रह्मचर्य के साथ २४ वर्ष घर में बिताये किन्तु आत्म तत्व की प्राप्ति के लिये सतत प्रयत्न में लगे रहे।

सं० १६५८ वि० में आपने पवित्र वैराग्य के वेग में आकर गृह त्याग कर दिया और एकाकी भ्रमण करते हुए बीकानेर पहुंचे। यहाँ पर पूज्य श्री अमृतनाथजी महाराज के पवित्र-उज्वल यश को सुन कर चूरू आये। भगवानदास बागला के

डण्डे (मकान) में श्री नाथजी के दर्शन किये और कृतार्थ होकर आपके चरणों में आत्म समर्पण कर दिया।

श्री नाथजी ने इन्हें जिज्ञासु, सरल चित्त, संयमी और सद्वक्ता पाकर अपनी कृपा कटाक्ष से कृत्य कृत्य कर दिये और यह यहीं रहने लगे। कर्ण छेदन की इनकी प्रबल इच्छा जानकर चूँदिया के साधु श्री छल्लूनाथजी से कह कर कर्ण छेदन (चीरा चढ़ाना) करवा दिया। इसके पश्चात् श्रीनाथजी भ्रमण करने चले गये और यह भी अन्यत्र घूमते रहे।

सं० १९६१ वि० में श्रीनाथजी ने इनकी कई प्रकार से परीक्षा ली और पूर्ण रूपेण योग्य पाकर कृपा पूर्वक आत्मोपदेश कर दिया और अपने संग रहने की आज्ञा प्रदान की।

सं० १९६६ वि० की माघ शु० ५ को श्रीनाथजी वर्तमान आश्रम में पधारे जो कि इनकी अनुमति और इच्छा से ही बना था। आश्रम का सञ्चालन और दर्शनार्थ आनेवाले यात्रियों का स्वागत आतिथ्य आप ही करते रहे जैसी की श्रीनाथजी की आज्ञा थी। आश्रम का कार्य श्रीनाथजी की सेवा, आने वाले लोगों का आतिथ्य आदि करते हुए यह आत्म चिन्तन में संलग्न रहते थे।

शनैः शनैः आपके मुख की कान्ति, शरीर का वर्ण, वाणी का माधुर्य्य रहन-सहन और खान-पान की नियमितता गुरु भक्ति की संलग्नता, आगन्तुक जन समुदाय से प्रेम और स्वार्थ

रहित व्यवहार, एवं साथ ही योग-शक्ति के चमत्कार दृष्टिगत होने लगे। श्रीनाथजी ने सर्व साधारण जनता के सम्मुख, कई वार स्पष्ट शब्दों में कहा कि "यह जीवन-मुक्त पुरुष है"।

आश्विन शु० १५ बुधवार को जब श्री नाथजी महाराज शरीर त्यागने लगे तब इन्हें अपने पास बुलाकर कृपा पूर्वक आध्यात्मिक विषय की आवश्यक बातें कहीं और इनके शीश पर अपना हाथ रख कर अपनी पूर्ण कृपा का परिचय दिया। इससे सर्व साधारण ने पूर्णतः जान लिया कि यही आपके कृपापात्र उत्तराधिकारी शिष्य हैं।

श्रीनाथजी की निर्वाण प्राप्ति के पश्चात् इन्होंने ही अपनी सम्प्रदाय के नियमानुसार सब अन्त्येष्टि संस्कार किये और समाधि स्थान पर घृत का अखण्ड दीपक(ज्योति)स्थापित करदी।

शिष्य समुदाय और सेवक गण की उत्कट प्रेरणा से इन्होंने वि० सं० १९८३ के फाल्गुण में श्री नाथजी का भंडारा (मेला) किया। मन्नाथ पन्थ के साधुओं की ३२ धूनियाँ और ६० मँढियों के साधुओं में चिरकाल से द्वेष चल रहा था इन्होंने अपनी व्यवहार कुशलता से इसे मिटवाकर सब को एक सूत्र में बाँध दिये और श्रीनाथजी का भण्डारा-उत्सव बहुत सुन्दरता से हुआ और कदाचित् पन्द्रह हजार रु० व्यय हुए। आश्रम में कई मकान बनवाये इन में कुल मिला कर अब तक सत्तर हज़ार रुपये व्यय हुए हैं।

भण्डारे के कुछ ही दिन पश्चात् इन्होंने श्री कृष्णनाथ, लालनाथ, वैजनाथ, द्वारकानाथ और भानीनाथ तथा शोभानाथ सहित सिन्ध प्रान्तीय श्री हिङ्गलाज देवी की यात्रा की। यह स्थान नाथ सम्प्रदाय का मुख्य तीर्थ स्थान है। द्वारकापुरी की यात्रा करके आनन्द पूर्वक लौटे।

सं० १९८४ वि० में इन्होंने कुछ शारीरिक व्याधि का आधार लेकर भ्रमण करना तथा आश्रम के अन्य कार्य त्याग दिये और आश्रम से बाहर एक फूस के बँगले में निवास करने लगे और वार्तालाप तथा भोजन करना प्रायः छोड़ दिया। इसमें रहते २ प्रायः १० दिन में आपका शरीर बहुत पुष्ट, वर्ण अत्यन्त गौर और मुख की कान्ति इतनी तेज मय होगयी कि दर्शकों को आश्चर्य होने लगा। इन दिनों में केवल श्री शोभानाथ ही आपकी सेवा में रहे।

इस प्रकार अकस्मात् शारीरिक परिवर्तन आश्चर्य एवं श्रद्धा जनक ही कहना पड़ता है। शरीर में रोग का कोई लक्षण न दिखाई देता था हाँ, परमानन्द की प्रसन्नता ही दृष्टिगोचर होती थी। कुछ दिन बाद पूर्ववत् साधारण रहन-सहन हो गया।

कदाचित्, सं० १९९७ वि० तक आप प्रायः पलङ्ग पर लेटे ही रहते थे। नियत और नियमित आहारी पूर्ण निस्पृह, निर्भय निष्कपट एव दयालु सांसारिक विडम्बना से निवृत उदार,

प्रकृति के साथ परमानन्द का अनुभव करते थे। इसके पश्चात् किन्हीं प्रेमी सेवकों की प्रार्थना एवं आग्रह पर इधर उधर भ्रमण करना भी आरम्भ कर दिया है।

इस समय तक आपने कई स्थानों पर (ग्रामों में) कुओं का जीर्णोद्धार करवाया है कई जगह मनुष्यों और जानवरों के लिये प्याऊ लगवाते हैं, शायद पन्द्रह सेर अन्न पक्षियों को डलवाते हैं और भी ऐसे भले कार्य सामने आने पर करवाते रहते हैं।

कुल मिलाकर अब तक इन्होंने कोई ५० मनुष्यों को शिष्य बना डाले हैं। इन में श्रीनाथजी के गृहस्थ कुटुम्बी श्री शुभनाथ प्रधान हैं और यही इनके उत्तराधिकारी हैं।

श्री शुभनाथ ने जुहारनाथ, शेरनाथ, भोलानाथ, प्रेमनाथ, हनुमाननाथ और गोमतीनाथ को अब तक अपने शिष्य बनाये हैं।

अन्त में हम को यह लिखना पड़ता है कि श्री स्वामी ज्योतिनाथ वर्तमान के समय के साधु समाज के लिये एक आदर्श सन्त हैं। यदि इनकी तरह भारत का साधु समाज अपने कर्तव्य, प्रतिष्ठा और व्यवहार का पालन करता रहे तो जन समाज का कल्याण हो। और साधुओं के प्रति जो नीची भावना जनता में बढ़ रही है वह रुक जाय तथा भारतीय संस्कृति का प्रधान अंग और आध्यात्मिक शिक्षा देने वाला चतुर्थाश्रम हमारे लिये मंगल प्रद बना रहे। —शान्ति!

मैंने आपके सत्संग, सहवास एवं कृपा के कारण जो शिक्षाएँ प्राप्त की, योग भक्ति वैराग्य आदि आध्यात्मिक विषय मैंने जिस प्रकार आपसे सुने उनको लेख बद्ध करके इस पुस्तक में प्रकाशित करना आवश्यक लाभ प्रद और जन कल्याण कारक है।

इसी अर्थ अब आगे आपकी शिक्षाएँ जो कि किसी प्रकार प्राचीन प्रमाण के आश्रित न होकर आपके अनुभव के बल पर सत्य-सिद्ध हैं लिखी जाती हैं।

आपकी गद्यात्मक शिक्षा को पद्य रूप में जन समाज के सम्मुख रखते हुए मैं श्री गुरू देव से प्रार्थना करता हूँ कि मेरी बुद्धि एवं लेखनी को प्रकाश एवं बल प्रदान करने की कृपा करेंगे।

साधन भाग

प्रथम खण्ड

पञ्चदशोल्लास

॥ सृष्टि रचना ॥

आपके मतानुसार सृष्टिक्रम

आपका कथन है कि ईश्वर का ब्रह्म का न कोई विशेष प्रकार का रूप है, न मुख्य स्थान है, न वह कार्य कारण कर्ता आदि आदि उपाधियों में सीमित है; न वह बनता है, न बिगड़ता है, न पाप, पुण्य, सुख, दुःख, जन्म, मरण आदि बन्धनों में लिप्त है; न बँधा हुआ है ब्रह्म तो सर्व व्यापक, सर्वज्ञ पूर्ण प्रकाशमान, सर्व शक्तिमान और अनन्त है। जगत उसका रूप है, माया उसकी छाया और जीव उसके अंश हैं।

ब्रह्म सर्वदा सामने स्पर्श सके नहीं कोय।
कटे, जले भीगे नहीं, अमृत दूर न होय॥
करि शरीर में करि भयो, चींटी चींटी बीच।
'अमृत' शक्ति अपार है, शान्त होय दृग मीच॥

आदि मध्य नहीं अन्त है, बने मिटे कुछ नाहिं ।
'अमृत' रहता एक रस, तीन काल के माहिं ॥

जगत ब्रह्म का रूप है, जगत ब्रह्म का ज्ञान ।
गुरु प्रसाद कोई लखे, 'अमृत' सन्त सुजान ॥

वही सिंह वही गाय है, वही बनावे खाय ।
वही कर्म, कर्ता, क्रिया, 'अमृत नाथ' सुहाय ॥

माया

माया ईश्वर की छाया है । शुद्ध, बुद्ध, मुक्त ईश्वर में यह संकल्प हुआ कि "मैं एक हूँ बहुत बनजाऊं" "एकोहं बहुष्यामि" । इस स्वतः शुद्ध संकल्प को ही माया नाम मिला है । संकल्प के साथ असंख्य रश्मियाँ किरणें अंश प्रकट हो गये और इनका नाम जीव-या-आत्मा कह कर अब हम जान रहे हैं । ईश्वर के अंश ही जीव हैं । अतः जीव और ब्रह्म में भेद नहीं है, परन्तु माया रूपी आवरण बीच में आया हुआ होने के कारण जीव अपने पिता उद्‌गमजनक को देख नहीं पाता है, जान नहीं सकता कि मैं शुद्ध हूँ ईश्वर का अंश हूँ । अतः सुख दुःख का अनुभव करता है । क्योंकि यह सब माया के प्रपञ्च हैं इसलिये यह जीव 'सोहं' की अपेक्षा 'जीवोहं' ऐसा समझ बैठा है, माया के प्रपञ्च में अपने को भूल गया है ।

माया सनातन है, यह न झूठ है न सत्य है, न इसका आदि है न अन्त है । क्योंकि ईश्वर आदि अन्त से रहित है,

अतः उसकी छाया यह माया भी आदि अन्त रहित है। माया का आवरण प्रकाश और अन्धकार मिश्रित है। यह अनिर्वचनीय है कहने में नहीं आसकती। माया के द्वारा ही संसार की रचना होती है पालन होता है और प्रलय भी होता है। यह तीनों क्रियाएँ सदा सर्वदा होती रहती हैं किसी समय भी रुकती नहीं हैं।

बने, मिटे, उपजे, मरे, सब माया का खेल।
'अमृत' आतम एक रस, जीव ब्रह्म का मेल॥
मैं, तू इस लघु भाव से, भव की रचना होय।
'अमृत' रूप अपार है, द्विधा नाहिं कोय॥

जीव

जीव ईश्वर का अंश है, सनातन रूप है। ब्रह्म का अंश होने के कारण जीव और ब्रह्म में भेद नहीं है। जीव एक होते हुए भी अनन्त है। यह अनन्तता ही चराचर में व्यापकता ही इस बात को प्रमाणित करती है कि जीव ब्रह्म का अंश है। क्योंकि ईश्वर चराचर में व्यापक है अतः उसके अंश जीव का भी चराचर में व्यापक होना अनिवार्य है। जगत के चारों भाग—जड़, अर्द्ध चैतन्य, चैतन्य और चैतन्य समूह में जीव उपस्थित है। सुख—दुःख जन्म मरण, हानि, लाभ, पाप, पुण्य ऊँच—नीच आदि सब अवस्थाओं का जीव को अनुभव होता है। सत्य असत्य और भले बुरे की पहिचान जीव को होती है। यह बिना आधार के

ठहर नहीं सकता इसी कारण जगत के स्थावर जंगम नभचर, जलचर, थलचर आदि उपाधिमय शरीरों की रचना होती है। जीव अविनाशी होते हुए भी इन सब प्रकार के शरीरों में प्रवेश करके जन्म और मृत्यु को प्राप्त होता हुआ दिखाई देता है।

जीव ब्रह्म का अंश है, जीव सनातन भूप।
माया के आवरण से, भूल गया निज रूप॥
स्थावर जंगम, चर, अचर रमा सकल में जीव।
तम प्रकाश की रेख में प्राप्त करे निज पीव॥
जन्म, मरण, सुख दुःख के हानि लाभ की आँच।
पाप पुण्य सत असत को, भोगत है कर साँच॥
शस्त्र काट सकता नहीं, जल नहीं सके भिगोय।
अनल भस्म नहीं कर सके, बाँध सके नहीं कोय॥
प्राप्त करे निज तत्व को होय रङ्क से भूप।
'अमृत' माया आवरण हटा पाय सत् रूप॥

जगत

अब जग की रचना कहूँ सुनलो सन्त प्रवीण।
माया से उत्पन्न है, सत, रज, तम, गुण तीन॥

ब्रह्म के बल से माया के द्वारा जीव के आधार के हेतु जगत की रचना हुई है। जगत के पदार्थ नाशमान हैं। यह सर्वदा एक रूप में नहीं रहते हैं, इनका रूप परिवर्तन होता रहता है। माया अनिर्वचनीय है क्योंकि इसका वर्णन करने

में वाणी का बल पूर्णतः सफल नहीं होता। इस गुणात्मिका माया से तीन गुण उत्पन्न हुए। सत रज और तम।

सृष्टि रचना का सूक्ष्म तत्व यह है कि ब्रह्म रूप महाकाश में भरे हुए प्राण, महाप्राण में स्पन्दन हुआ अर्थात् वह हिला और हिलने से नाद उत्पन्न हुआ यह नाद था "एकोहं बहु स्याम्" मैं एक हूँ बहुत हो जाऊँ। इस नाद की प्रतिध्वनि से परमाणु उत्पन्न हुए। इन परमाणुओं से सृष्टि रचना हुई यह नाद की प्रतिध्वनि ही माया है और तीन प्रकार की शक्ति युक्त यह परमाणु ही तीन गुण है। यह परमाणु भिन्न भिन्न स्वभाव के होने से ही तीन गुणों में विभक्त हुए हैं और प्राण अर्थात् जीव तो इन सब में व्यापक है ही। जगत के समग्र पदार्थ बीज रूप से एक ही बार में बने हैं फिर शनैः २ इनका विकास हुआ है और हो रहा है।

तो इन गुणात्मक परिमाणु के समूहों का नाम सत, रज और तम है। इन्हीं गुणों के प्रभाव से कार्य कारण सम्बन्ध बना है और जगत् की रचना हुई है। यह एक प्रकार की नाट्यशाला है, इसमें प्राण रूप ईश्वर अर्थात् जीव व्याप्त है। कर्ता कर्म और क्रिया इस एक ईश्वर के ही नाम व्यवहार सञ्चालन के अर्थ बनाए हुए हैं।

सत गुण से अन्तः करण, रज से इन्द्रिय जान।
तम से है तन्मात्रा तत्व पुनः पहिचान ॥

सत्वगुण से चार अन्तःकरण, चित, मन, बुद्धि और अहङ्कार उत्पन्न हुए, रजोगुण से दश इन्द्रियाँ-हस्त, पाद, वाणी, लिंग और गुदा कर्मेन्द्रियाँ, और नेत्र, नासिका कर्ण, जिह्वा और चर्म ज्ञानेन्द्रियाँ बनी हैं। तमोगुण से पञ्च तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध और इनसे स्थूल रूप आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तत्व का प्रादुर्भाव हुआ है। यह तत्व एक दूसरे में मिले हुए और भिन्न हैं।

कर्ण गगन की इन्द्रि है, इसका शब्द आहार।
काम क्रोध मद, लोभ मोह, पाँचों प्रबल विकार॥

आकाश तत्व (पञ्ची करण से) के द्वारा कर्णेन्द्रि बनी है इसका कर्म शब्द सुनना है और काम, क्रोध, लोभ, मद और मोह इसके स्वभाव (प्रकृति) हैं।

इन्द्रि वायु की चर्म है, इसका स्पर्श स्वभाव।
लज्जा उठना, चालना बल, भय पञ्च प्रभाव॥

वायु तत्व की इन्द्रि चर्म है इसका धर्म स्पर्श का ज्ञान करना है और लज्जा, उठना, चलना, बल करना और भय का ज्ञान करना है।

नेत्र इन्द्रि है अग्नि की 'अमृत' रूप स्वभाव।
संग, क्षुधा, आलस, तृषा, निद्रा का ठहराव॥

अग्नि तत्व की इन्द्रिय नेत्र है और इसको रूप का ज्ञान होता है। मैथुन, भूख, प्यास, आलस्य और निद्रा इसकी प्रकृति है।

जिह्वा जल की इन्द्रि है इसका रस ले नेह।
स्वेद, बिन्दु, कफ, मूत्र अरु लोहू रचता गेह॥

जल तत्व की इन्द्रि जिह्वा है और रस का ज्ञान करती है पसीना, वीर्य, कफ मूत्र और लोहू इसकी प्रकृति है।

इन्द्रि भूमि की घ्राण है, इस से जानो गन्ध।
माँस, रोम, अस्थि त्वचा, नख से है सम्बन्ध॥

पृथ्वी तत्व की इन्द्रि नाक है और इससे गन्ध का ज्ञान होता है। मांस, रोम, (बाल), अस्थि (हाड) त्वचा और नख इससे उत्पन्न होते हैं।

पञ्च तत्व के पञ्ची करण से (एक दूसरे में मिलने से) उपर्युक्त रचना होती है।

कर्म इन्द्रि। अन्यान्य भेद।

गुदा कर्म, अरु ज्ञान नासिका, होती पृथ्वी से उत्पन्न।
जिह्वा ज्ञान, अरु लिंग कर्म, यह जल से होती हैं सम्पन्न॥

नेत्र ज्ञान, अरु कर्म चरण का, अनल तत्व से प्रादुर्भाव।
हस्त कर्म, अरु त्वचा ज्ञान दो, वायु तत्व का जान प्रभाव ॥
वाणी, श्रवण इन्द्रियाँ दोनों कर्म ज्ञान नभ की लो जान।
दश यों पाँच तत्व से बनती, 'अमृत' ऐसे करे बखान ॥

पञ्च तत्व के अंशांश भेद से इनके पञ्ची करण से एक में पाचों के मिलने से पचीस प्रकृति बनती हैं। पञ्ची करण में एक तत्व का प्राधान्य रहता है और शेष चार गौण रूप में रह कर अपने स्वाभावानुसार शारीरिक द्रव्य (प्रकृति) को उत्पन्न करके इनका पोषण करते हैं।

स्थूल, सूक्ष्म, कारण महाकारण, आतम गेह।
केवल ब्रह्म स्वरूप है, अमृत खोजो देह ॥

स्थूल शरीर—दश इन्द्रिय पाँचों विषय, पन्द्रह का है स्थूल।
इसमें कुछ संशय नहीं 'अमृत' मतकर भूल ॥

पाँच ज्ञानेन्द्रि, पाँच कर्मेन्द्रि और पाँच तत्व इन पन्द्रह द्रव्य से स्थूल शरीर की रचना होती है। इसकी जागृत अवस्था है।

सूक्ष्म शरीर—चारों अन्तःकरण में मिल तन्मात्रा पाँच।
नौ, का सूक्ष्म शरीर है, अमृत मानों साँच ॥

चार अन्तःकरण और पञ्च तन्मात्रा के मिलने से सूक्ष्म शरीर बनता है। स्वप्नावस्था में यह शरीर होता है।

कारण शरीर—सूक्ष्म से है सूक्ष्म तर कारण जान शरीर।
महा कारण—चिदाकाश तुरिया रहै सुप्त जान गम्भीर॥

जिसमें सूक्ष्मता का ज्ञान रहे वह कारण शरीर होता है। यह सुषुप्ति अवस्था है। चैतन्य आकाश का भाव रहे तब महा कारण शरीर होता है, यह तुरिया अवस्था है।

कैवल्य—स्थूल मांहिं निर्लिप्त हो, महा अवस्था सोय।
'अमृतनाथ' वखानते, नष्ट वासना होय॥

इसमें स्थूल में ही निर्लिप्तावस्था हो जाती है। शारीरिक कार्य करते हुए भी वासना रहित अवस्था रहती है।

उपर्युक्त पञ्च शरीर के पञ्च ही पोषक हैं इन्हें पञ्च कोष कहते हैं। यथा-अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, आनन्दमय और विज्ञानमय। स्थूल शरीर अन्नमय है, सूक्ष्म प्राणमय, कारण शरीर मनोमय है, महा कारण आनन्द मय और कैवल्य विज्ञान मय है।

स्थूल शरीर अन्न जल अर्थात् भोजन पान के बिना ज्यादा देर नहीं ठहर सकता। यह अन्य चार कोषों का पोषक है आधार भूत है। इसके पोषण का विधिवत् ध्यान रखना चाहिये।

इन पञ्च शरीर और पञ्च कोष की पञ्च ही अवस्था होती हैं।

जागृत अवस्था का स्थूल शरीर और अन्नमय कोष है। स्वप्नावस्था का सूक्ष्म शरीर और प्राणमय कोष है। सुषुप्ति अवस्था का मनोमय कोष और कारण शरीर होता है। तुर्यावस्था का महा कारण शरीर और आनन्द मय कोष होता है। कैवल्य शरीर में जागृत, तुरिया और विज्ञानमय कोष है। इन पञ्च शरीर में चार गुणमय और पाँचवा गुणातीत है। जागृत-तुरियावस्था में गुणों का प्रभाव शरीर पर नहीं पड़ता। परन्तु इनमें स्थूल और सूक्ष्म शरीर अन्न और प्राणमय शरीर तथा जागृत और स्वप्नावस्था का ज्ञान सर्व साधारण को होता है परन्तु अन्य तीन का ज्ञान अभ्यासी पुरुष को ही होता है, यह अनुभव की बात है कहने से समझ में नहीं आ सकती। प्राण या जीव तो सब अवस्थाओं में एक रूप रहता है। वृत्तियों में अन्तर पड़ जाता है। पञ्च शरीर पञ्च अवस्था और पञ्च कोष इस स्थूल शरीर में ही उपस्थित हैं।

जीव का प्रवेश

उपर्युक्त क्रम से जब शरीर रचना हो जाती है तब इसमें जीवात्मा प्रवेश करता है। पञ्च तन्मात्रा चार अन्त: करण पाँच तत्व, दश इन्द्रिय, इन २४ द्रव्यों से जब शरीर बन कर तैयार हो जाता है। तब गर्भावस्था में ७ वें मास के आरम्भ में जीव शरीर मे प्रवेश करता है। एक शरीर को त्यागते ही आत्मा दूसरे शरीर में प्रवेश कर जाता

है। संसार रचना ब्रह्म का विलास मात्र है। माया, जीव, जगत् और इसके पदार्थ ईश्वर का ही रूप है।

जगत ब्रह्म का रूप है जगत ब्रह्म का ज्ञान।
गुरु प्रसाद कोई लखे, 'अमृत' सन्त सुजान ॥

वेदान्त वादी जगत को मिथ्या मानते हैं। परन्तु क्योंकि जगत् ब्रह्म की सत्ता से, माया के द्वारा, जीव के आधार के हेतु रचा गया है और माया अनिर्वचनीय है, अतः इसकी कृति जगत भी अनिर्वचनीय ही है। इसको सत्य या झूट कहना बनता ही नहीं। क्योंकि यह अनन्त जगत ही तो ब्रह्म का रूप है, ब्रह्म अखण्ड है अतः जगत भी अखण्ड और अविनाशी होना चाहिये। इस पर हम आगे किसी स्थान पर विचार करेंगे।

हाँ, तो जगत की रचना हुई, शरीर बना जीव ने इसमें प्रवेश किया। गुण तत्वों के धर्मानुसार इसे समस्त क्रियाएँ करनी पड़ीं और इसने अपने आप को इन क्रियाओं का कर्ता मान लिया। वास्तव में इसकी सत्ता से गुणों के द्वारा इन्द्रियाँ ही अपने २ व्यापार को करती हैं। परन्तु क्योंकि यह शरीर का सम्पूर्ण बल है अतः इन क्रियाओं का भोक्ता अपने आप को मान लिया। क्योंकि एक ही कार्य को चिरकाल तक करता रहा या उसके फल को भोगता रहा इसलिये उसका अभ्यासी हो गया। अभ्यस्त हुए व्यवहार में ममता उत्पन्न होना स्वाभा-

विक बात है, अनिवार्य है ऐसा होना । इसी कारण ममता वश जीव अपने अस्तित्व को भूल गया, आत्म रूप विस्मरण हो गया। और इन्द्रिय जन्य नाना प्रकार के स्वाद, सुख, दुःख, लाभ, हानि, मान, अपमान, आदि के स्वार्थ में राग द्वेष में आबद्ध होकर व्याकुल होने लगा। ईश्वर से अपने आपको भिन्न समझ लिया और सहायता, उद्धार मुक्ति के अर्थ प्रयत्न करने लगा।

पञ्च तत्व की वृत्तियों के अनुसार शरीरस्थ जीव खाने, पीने, सोने, हँसने और मैथुन आदि कर्म को करने लगा। फलत: इन कार्यों के प्रभाव से तत्वों की प्रकृति के अनुसार सप्त धातु बनने लगे और अब जीव पूर्णत: इनके प्रभाव चक्र में फँस गया। स्त्री के सहवास से जिस प्रकार के रज वीर्य का संयोग हुआ देश काल और पात्रानुसार वैसा ही पिण्ड गर्भस्थल में तत्वों के प्रभावानुसार बनने लगा।

यदि वीर्य बलवान हुआ तो पुरुष और रज बलवान हुवा तो स्त्री रूप शरीर बन कर तैयार हुआ। यह क्रिया गर्भ में सातवें मास में समाप्त होकर जीव इसमें प्रवेश करता है। फिर बड़े कष्ट से गर्भ बाहर आता है जन्म लेता है। दु:ख सुख से मिश्रित वातावरण में अपने बाल्य, कौमार, युवा और वृद्धावस्था को भोगता है। शरीर के जीर्ण शीर्ण हो जाने पर इसे निवास करने योग्य न रहने के कारण जीव शरीर को त्याग देता है। इन्द्रियों के द्वारा भोगी हुई विषय

लालसा से उत्पन्न हुई नाना प्रकार की वासनाएँ सूक्ष्म रूप से इसके साथ चली जाती है और फलतः वासनानुसार शरीर में प्रवेश कर जाता है।

पञ्च तत्व के विशेष रूप

आकाश तत्व के तीन रूप हैं। प्राण युक्त आकाश, महाकाश, घटाकाश और चिदाकाश यह आकाश तत्व की त्रिपुटि है। प्राण युक्त आकाश सब का केन्द्र है, इसमें से ही माया और जीव प्रादुर्भूत होते हैं यह परमाणु का पुञ्ज है। महाकाश समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। घटाकाश समस्त शरीर में और चिदाकाश चित्त में निवास करता है। इसकी स्पन्दन शक्ति से चित्त में चैतन्यता आती है।

वायु

दूसरा तत्व है। इसके कार्य, स्थान, प्रभावानुसार दश भेद हैं। प्राण वायु का नाम ही श्वास है इसका निवास हृदय है, यह समस्त शरीर का पोषण करती है। यह वायु समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक है इसके बिना संसार का कोई भी कार्य नहीं हो सकता। अपान का निवास गुदा प्रदेश है। यह उदरस्थ विकारमय वायु को बाहर निकालता है, और मल विसर्जन करता है। समान वायु का स्थान नाभि है यह हृदयस्थ प्राण एवं गुदास्थ अपान वायु का आकर्षण करती है। और मिलाती है। इस क्रिया से श्वास का रूप बनता है। समान वायु में विकार हो जाने से मनुष्य को श्वास का रोग हो जाता

है। व्यान समस्त शरीर में व्यापक होकर रक्त शुद्ध करती रहती है। उदान वायु का निवास कण्ठ स्थान है इससे शब्द बाहर आती है। नाग वायु उदरस्थ भोजन को यथा स्थान पहुंचाती है। और इस से डकार आती है। कूर्म वायु का स्थान नेत्र है इससे नेत्रोंन्मिलन (पलकें झपकना) होता है। कृकल वायु का स्थान उदर है, यह क्षुधा चैतन्य करती है, छींक लाती है और विषय की इच्छा उत्पन्न करती है। देवदत्त वायु हृदय में रहती है इससे उबासी आती है। धनञ्जय वायु समस्त शरीर में व्याप्त रहती है इसे पुष्ट करती है और मृत्यु हो जाने पर भी शरीर में रहती है।

उपर्युक्त वायु प्राण के ही रूप-नाम हैं। कार्यानुसार नाम बने हैं।

अग्नि

तीसरा तत्व अग्नि है इसके तीन रूप हैं। जठराग्नि इसका निवासस्थान उदर है। यह भोजन का पाचन करती है। 'दावाग्नि' विश्व के दृश्यमान कार्य करती है और समस्त पदार्थों में समाविष्ट है। 'वड़वाग्नि' का निवास पानी है इसी से विजली उत्पन्न होती है। शारीरिक कार्यों को प्रकाश देती है।

जल

चौथा तत्व जल है। इसके तीन रूप हैं। वरुण इससे समस्त संसार के स्थूल कार्य होते हैं। अश्रु इसका निवास नेत्र है, भय प्रेम दुःख में यह नेत्रों से बाहर आता है।

अमृत यह मस्तिष्क में है और बहुत ही सूक्ष्म रूप में श्वास के साथ झरता रहता है, इसीसे समस्त शरीर का पोषण होता है यह जीव का मुख्य भोजन है। इसका झरना बन्द होने पर जीव शरीर को त्याग देता है। इसी को साधारण भाषा में अमी कहते हैं इसी से भोजन पाचन के योग्य होता है। इसके निवासस्थान को भ्रमर गुफा कहते हैं।

भूमि पांचवा तत्व भूमि है। इसके दो रूप हैं। स्थूल यह दृश्य मान जगत का आधार है। सूक्ष्म यह शरीरस्थ बहत्तर हजार आठसौ चौसठ नाड़ियों का आधार है।

प्रत्येक तत्व के ही नहीं समग्र द्रव्यों में दो रूप होते हैं स्थूल और सूक्ष्म। सूक्ष्म रूप से स्थूल रूप बनता है अतः स्थूल सूक्ष्म में कोई तात्विक भेद नहीं है। मनुष्य को चाहिए कि वह सूक्ष्म तत्व को जानने योग्य दृष्टि और ज्ञान सम्पादन करने का सतत् प्रयत्न करता रहे।

अन्तःकरण अन्तःकरण जीव के बल का ही नाम है। कार्य वश इसके चार रूप हैं। चित्त-इससे चैतन्यता आती है। मन—इसका काम संकल्प विकल्प करना है। बुद्धि—इसका कार्य भले या बुरे का निर्णय करना, कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान प्राप्त करा देना है। अहङ्कार से कार्य करने की तत्परता उत्पन्न होती है।

सत, रज और तम तीनों गुण सामुहिक रूप से शरीर में विद्यमान रहते हैं। परन्तु समय २ पर इन गुणों का प्रधान रूप से उदय होता है और अपने २ धर्मानुसार उच्च या नीच कार्य करने की ओर प्रेरणा करते हैं और विवश हो कर मनुष्य को वही कार्य करना पड़ता है। इन गुणों के वेग पर अधिकार लेना ही गुणातीतावस्था कहलाती है।

सत्वगुण—सत् भाषण, निष्काम जप, आर्जव दया सन्तोष।
साधु संग, शान्ति क्षमा, 'अमृत' आतम पोष॥

सत्वगुण के प्रभाव से, सत्य भाषण, कामना रहित हो कर जप इत्यादि कर्म, आर्जव अर्थात् सीधापन, दया, सन्तोष साधु संगति, शान्ति, और क्षमा के भाव उत्पन्न होते हैं अन्तःकरण में। यह सब आत्मा के आहार हैं इनके द्वारा आत्मा में पवित्रता आती है। यह उच्च भावना है।

रजोगुण—भजन करे सिद्धि चहै, मान बड़ाई हेत।
स्वाद, सुगन्धी, धन, त्रिया रजगुण अमृत देत॥

रजोगुण के प्रभाव से, सिद्धि प्राप्ति, मान और यश के लिये भजन, यज्ञ, दान, व्रत, भक्ति आदि करते हैं। इन्द्रियों के नाना प्रकार के स्वाद, धन की इच्छा, स्त्रियां आदि प्राप्त करने के भाव उत्पन्न होते हैं। यह मध्यम नीचे दर्जे की भावना है।

तमोगुण—होय तमोगुण से प्रकट छल निद्रा अरु क्रोध।
अहङ्कार, आलस, असत, इनका होता बोध॥

तमोगुण के प्रभाव से, छल-कपट निद्रा, क्रोध घमण्ड आलस्य, असत्यता का भाव उत्पन्न होता है। यह निकृष्ट भावना है।

सत, रज, तम से भिन्न है, गुरु गम भेद अनूप।
जिन खोजा तिन को मिला 'अमृत' आतम रूप ॥

चित का स्थान हृदय है यह संसार के समस्त कर्म करने की चैतन्यता प्रदान करता है।

मन मन का निवासस्थान नाभि के अन्तर्गत दश दल कमल है मणि पूरक चक्र है। मन की गति अबाध्य है। इसकी एक प्रकार के भ्रमर के रूप में कल्पना की गई है बन्ध और मोक्ष का कारण मन ही है, 'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो:" इसका काम संकल्प विकल्प करना है। यह जिस प्रकार का संकल्प करता है जिस कार्य को करने लगता है उसी में तदाकार हो जाता है। यह सूक्ष्म तो इतना है कि एक से ज्यादा संकल्प इसमें एक साथ उत्पन्न नहीं होते। गतिमान इतना है कि वायु भी इसके सामने तुच्छ है। नीच इतना है कि घोर से घोर पाप नृशंस-कार्य करने में हिचकता नहीं जीव को असंख्य जन्मों तक आवागमन में डाले रखता है। पवित्र इतना है कि संकल्प मात्र से ही आवागमन से रहित कर देता है। संसार के समस्त कार्य इसी को शान्त और निश्चल बनाने के अर्थ किये जाते हैं। इसके निश्चल बनाने का साधन

सत्सङ्ग और आत्म चिन्तन तथा आहार विहार का सुधार मुख्य है। वासना का रूप यह मन ही सुख दुःख का मूल है।

नाभिस्थ मणिपूरक चक्र के दश दलों पर यह भ्रमता रहता है। इस चक्र के पूर्वी दल का वर्ण पीत है और मन जब इस पर निवास करता है तब धैर्य उदारता, धर्म, कीर्ति के भाव उत्पन्न होते हैं।

अग्निकोण के दल का रङ्ग रक्त है। इसके ऊपर मनके निवास करने से निद्रा आलस्य और मन्द बुद्धि उत्पन्न होते हैं। दक्षिण दल पर मनके आसीन होने से क्रोध, द्वेष और दुष्टता उत्पन्न होते हैं। इस दल का रङ्ग कृष्ण है। नैऋत्य कोण के दल का रङ्ग नीला है इस पर मन के जाने से स्त्री पुत्र, धन, मित्र आदि का मोह उत्पन्न होता है। पश्चिम दल का वर्ण कपिल (मट मैला) है जब मन इस पर रहता है तब आनन्द विनोद और हास्य के भाव पैदा होते हैं। वायव्य कोण का दल श्याम रङ्ग का है इस पर मन के रहने से तीर्थ स्नान, उपासना और वैराग्य के भाव उत्पन्न होते हैं। उत्तर दिशा के दल का वर्ण पीला है इस पर मन के रहने से भोग शृङ्गार विलास आदि की इच्छा उत्पन्न होती है। जब मन इन दलों की सन्धियों में रहता है तब रोग भय आदि के भाव उत्पन्न होते हैं। मणि पूरक दल के मध्य में मन अवस्थित होने से शान्ति, मोक्ष की इच्छा और चैतन्यता का भाव उदय होता है।

मन का इस कमल के दलों पर भ्रमण करने का कारण आहार विहार, संग और वातावरण होता है। अतः मनुष्य को चाहिए कि अपने आहार विहारादि को सात्विक और पवित्र रखे। जिससे मन शान्त रहे। कल्पना शक्ति का क्षय हो कर आत्मानन्द की प्राप्ति होवे। मन जब अपने आप कमल के मध्य में लीन (लय) हो जाता है तब सहज समाधि लग जाती है जो कभी उतरती नहीं पूर्णतः सन्यास पद प्राप्त हो जाता है।

बुद्धि और अहङ्कार

इनका निवास मस्तिष्क है। बुद्धि राजा है और अहङ्कार मंत्री। बुद्धि भले बुरे का ज्ञान करती है और अहंकार उस निर्णय को कार्य रूप में लाता है। अहंकार दो प्रकार का होता है; निर्मल और मलीन।

माया रचित इस संसार में नाट्यशाला रूपी शरीर में आश्रय लेकर जीव अपनी शुद्ध चैतन्यावस्था भूल गया। अनुकूल प्राप्ति में सुखी और प्रतिकूलावस्था में दुखी रह कर जीवात्मा दुखी सुखी हुआ करता है। क्यों कि संसार में प्रतिकूलावस्था अधिक परिमाण में सामने आती है, अतः दुख का ही सामना अधिक करना पड़ता है। इस [illegible]जनावस्था से उद्धार पाने के अर्थ जीव अन्वेषण करता है। [illegible]न [illegible]ोग, भक्ति, वैराग्य आदि साधन इसे प्राप्त होते हैं इन स[illegible]नों

के द्वारा जीव अखण्डानन्द अपनी प्राकृतिक अवस्था को प्राप्त कर अनन्त शान्ति का आनन्द लेता है। मन रुक जाता है

षड्दशोल्लास
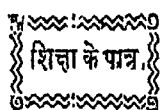
शिक्षा के पात्र। समय के अनुसार शिक्षा देने पर आप बहुत ही बल दिया करते थे। देश काल और पात्र के अनुसार इनकी परीक्षा करके शिक्षा देना चाहिए। इसके विपरीत दी हुई शिक्षा आपने व्यर्थ बतलाई है।

जो शिक्षा सुनने की इच्छा रखता हो, जिसके हृदय में शिक्षा सुनने का प्रेम हो उसी को शिक्षा देनी चाहिए तभी शिक्षा का उत्तम फल मिल सकता है। कुपात्र या अपात्र को शिक्षा देना तो शिक्षा और शिक्षक के महत्व को गिराना है। किसी को बाध्य करके न शिक्षा दी जानी चाहिए और न वह दी ही जा सकती है। शिक्षा जैसी कल्याण कारक वस्तु को किसी पर बलात् नहीं लादी जानी चाहिए।

वर्तमान काल में लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की शिक्षा की गति विधि बहुत ही निकृष्टता को पहुँच गई है। इसी कारण न उत्तम गुरु प्राप्त होते हैं और न योग्य शिष्य ही तैयार होते हैं। प्रारम्भिक अवस्था में छोटी आयु में तो शिक्षा प्रायः बलात्कार से ही दी जाती है। क्यों कि इस अवस्था में मनुष्य

को अपनी भलाई, बुराई का वास्तविक ज्ञान नहीं रहता है। वास्तव में तो शिक्षा युवक प्रौढ़ और योग्य हो तो बालक को भी दी जा सकती है। वही उसको ग्रहण करने योग्य होता है ठीक प्रकार से।

आपकी शिक्षा वर्ण और आश्रम गृहस्थी और साधु सब का ही कल्याण करने वाली है। योग, भक्ति, वैराग्य और संसार सञ्चालन आदि सब ही प्रकार की शिक्षा आप पात्रानुसार दिया करते थे।

आप पूर्ण योगी पूरे वेदान्ती और ब्रह्मवेत्ता त्रिकालज्ञ महा पुरुष थे। वर्तमान के ढोंगी साधु और शुष्क वेदान्ती आपके सम्मुख ठहर नहीं सकते थे। आप के पास वाच्य शक्ति का निर्वाह नहीं था, बातों से काम नहीं चल सकता था। यहां तो प्रत्यक्ष में योग और वेदान्त का क्रियात्मिक रूप सार्थक रूप ही सम दे सकता था। वेदान्त और योग के श्लोक याद कर लेने वाले दम्भी मनुष्य आपके पास नत मस्तक हो रहा करते थे।

हां, तो आप शिक्षा देने के विषय में कहते हैं—

शिक्षा उसको दीजिए, जो जिज्ञासु होय।
देकर सीख अपात्र को मत महत्व को खोय॥
'अमृत' सुधरी भूमि में पड़ता है जब बीज।
विकसित हो फूले फले, प्राप्त करे निज चीज॥

देश काल अरु पात्र को देख लेय सब भांति।
शिष्य करे 'अमृत' तभी, नहीं वर्ण नहीं जाति ॥
श्रवण करे जो प्रेम से मनन भली विधि होय।
निधिध्यासन में लगे तब फल पाता है सोय ॥

उपर्युक्त पद्यों के पढ़ने से ज्ञात हुआ होगा कि आप देश काल और पात्र की भलि भाँति परीक्षा करने के पश्चात् शिक्षा देने की आज्ञा देते हैं। जैसा पदार्थ हो वैसा ही, उसके योग्य ही पात्र न हुआ तो पदार्थ भ्रष्ट हो जायगा। इसी प्रकार जो मनुष्य जिस शिक्षा के योग्य हो उसे वैसी ही शिक्षा देनी चाहिए अन्यथा शिक्षक शिक्षा और शिष्य तीनों ही अधोगति जायँगे। वतमान स्त्री शिक्षा को आप अनुचित समझते थे।

वर्तमान लौकिक शिक्षा किसी विशेष प्रणाली से पात्र की इच्छानुसार नहीं दी जाती है। यही कारण है कि अच्छे विद्वान् उपलब्ध नहीं होते। विद्या तो वही है जो दुःख मुक्त करे परन्तु आज क्या ऐसा हो रहा है?

योग का अंग

साधन

सांसारिक सुख दुःख रूपी आघातों से जीवात्मा का त्राण जिन साधनों से हो सकता है उनमें "योग" प्रधान है। चित्त की वहिर्मुख वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाने के साधन का नाम योग है। "योगश्चित्त वृत्ति निरोधः"। योग के द्वारा ही

मन निश्चल हो सकता है, वासना का नाश हो सकता है, जीवात्मा अपने स्वरूप में अवस्थित हो सकता है, जन्म मरण के संकट का अन्त हो सकता है, अखण्ड मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

वेदान्ती

योग की अन्तिम अवस्था का नाम ही तो वेदान्त है। केवल बातें बनाने वाले, वचन विलासी मनुष्य वेदान्ती नहीं हो सकते। वेदान्त का मूलाधार तो योग ही है। योग क्रिया परिपक्व हो जाती है तभी आत्म साक्षात्कार होता है। तभी संसार को मिथ्या प्रपञ्च जाना जा सकता है। तभी तो शारीरिक विकारों पर विजय प्राप्त की जा सकती है वेदान्त शास्त्र के ग्रन्थ पढ़ २ कर वर्तमान काल के वेदान्तियों ने मनुष्यों को अकर्मण्य बना दिये हैं। इनके द्वारा संसार को हानि के अतिरिक्त लाभ कुछ भी न हुआ। मैं वेदान्त की निन्दा नहीं करता। वेदान्त त्रिकाल सत्य है। परन्तु उस अवस्था की प्राप्ति के अर्थ जो मुख्य साधन योग है, इसके साधनों से, कठिनाइयों से घवड़ा कर दूर रहने वाले और मन मुखी आचरण करने वाले मनुष्य वेदान्ती नहीं हो सकते। वह तो निरे दम्भी और वितण्डा वादी ही कहे जायँगे। ऐसे वेदान्तियों का आज कल बाहुल्य है। यह अपने आपको वेदान्ती घोषित करने में लज्जित नहीं होते। मेरे पास ऐसे कई वेदान्ती आये जिनको मैंने ठीक किया जो वास्तव में

वेदान्ती है वह तो मौन रहने के अतिरिक्त कुछ कर ही नहीं सकता। वह तो आत्म रूप में अवस्थित हो चुकता है। वहाँ तो वचन विलास बनता ही नहीं। साधारण शरीर रक्षा के अतिरिक्त सब बातें उसके लिये तो मिथ्या प्रपञ्च के सिवा कुछ है ही नहीं। तो ऐसी अवस्था में क्या सत्य को पहिचाना हुआ असत्य की ओर चल सकता है, क्या उसके वचन और कर्म समान हो सकते हैं। वेदान्त की शिक्षा देना एक बात है और वास्तव में वेदान्ती बन जाना या बना देना दूसरी बात है। जब तक आत्म साक्षात्कार नहीं हो जाय, कोई भी वेदान्ती नहीं है। कार्य कारण का भेद हट जाय तब वेदान्ती बने। यह मेरा अनुभव है जो मैंने दीर्घकाल के साधन के बाद प्राप्त किया है।

हे मनुष्यों! मेरे इस वचन पर विश्वास करो। योग के द्वारा अपनी वृत्तियों का निरोध करो तभी वेदान्त के अनिर्वचनीय आनन्द को प्राप्त हो सकोगे। जो मेरे इस आदेश का पालन करेगा, मैं उसको सांसारिक दुःख से बचा कर आत्मा के दर्शन करादूँगा, अमृत पद की प्राप्ति करादूँगा। आओ मेरे मार्ग पर!

योग के साधन

विषय त्याग अरु साधना, सत गुरु का सत्संग।
ईश्वर में विश्वास हो, चार योग के अंग॥

समस्त प्रकार के इन्द्रिय जन्य सुखों के स्वादों का त्याग सत् गुरु का संग, ईश्वर में विश्वास और साधन की दृढ़ता पवित्रता और संलग्नता। यह चारों योग साधन में आवश्यक हैं।

इनके अतिरिक्त पूर्व कर्म का बल भी संग में मिलता है।
यह निश्चय है जैसी पृथ्वी हो वैसा वृक्ष निकलता है॥
बिन योग कोई नहीं तिर सकता इस हेतु तुम्हें बतलाता हूँ।
है योग शब्द का अर्थ एकता मैं निश्चय जतलाता हूँ॥
नाना प्रकार के अब तक जो हैं, जग में योगी राज हुए।
माना सब ने है ब्रह्म एक जो उत्तम योगी राज हुए॥

उपर्युक्त चार प्रधान बातों के अतिरिक्त प्राचीन कर्म का बल भी जीव के साथ हो तब योग साधन हो सकता है। निश्चय करो जैसी पृथ्वी होगी वैसा ही वृक्ष उत्पन्न होगा। अर्थात् योग साधन के लिये हृदय की पवित्रता भी आवश्यक है। योग शब्द का अर्थ एकता है। संसार में अब तक जो उच्च श्रेणी के योगी राज हुए हैं उन सब का यही सिद्धान्त है कि "ब्रह्म एक है"।

योग १६ प्रकार का होता है अर्थात् योग की कथा सौलह हैं। भगवान श्री कृष्ण १६ कला योगी थे। इन सौलह में आठ सांसारिक कार्यों की पूर्ति के अर्थ। चार सगुण उपासना के अर्थ। ३ निर्गुण उपासना के अर्थ और केवल १ आत्म-

दर्शनार्थ है। हठ योग समग्र और अष्टांग योग के कुछ साधन शरीर शुद्धि के अर्थ हैं। क्योंकि यह क्रियाएँ शरीर तक सीमित हैं इसे ही प्रभावित करती हैं।

(१) सांसारिक—कर्मयोग, मंत्रयोग, लक्ष्ययोग, क्रियायोग, सिद्धियोग, वासनायोग, चर्चायोग, और ज्ञानयोग।

(२) सगुण उपासना—ध्यानयोग, हठयोग, शिवयोग, और भक्तियोग।

(३) निर्गुण उपासना—राजयोग अष्टांग, लययोग, और निश्चययोग।

(४) आत्म दर्शनार्थ—सहजयोग।

उपर्युक्त सौलह प्रकार के योग में से जब किसी एक में दृढ धारणा होगी तब ही सिद्धि प्राप्त होगी। स्थिर लक्ष्य, धीर, सतत् सावधान पुरुष ही सिद्धि प्राप्त कर सकते हैं। अब हम योग के इन चारों खण्डों का भिन्न २ वर्णन करेंगे।

सांसारिक कर्मयोग

दृढ़ लग्न और सतत् परिश्रम, प्रतिबन्धों का भय न मानते हुए, सत्यता पूर्वक किये हुए समस्त कर्म, कर्मयोग कहलाते हैं। कर्म योगी को चाहिए वह कर्म करता रहे, उसके फल को ईश्वरार्पण करदे।
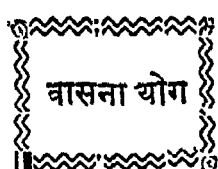
वासना योग

कुवासना को मन वचन और कर्म से त्यागने को वासना योग कहते हैं। वासना ही मनुष्य को जन्म मरण के चक्र में डाले रहती है। अतः वासना पर अधिकार करना चाहिये।

मंत्र योग

तंत्र और मंत्र शास्त्र के साधन को मंत्र-योग कहते हैं। मंत्र तंत्र और यंत्र को सिद्ध करने के अर्थ हृदय को पवित्र बनाना अत्यन्त आवश्यक है। अनेक प्रकार के मंत्र तंत्र और यंत्र होते हैं और पवित्रता और विश्वास के बल पर यह सिद्ध भी होते हैं परन्तु इनके द्वारा किसी को कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिये। वास्तव में तो चिरकाल के साधन से अपनी भावना ही सिद्ध होती है। अधिक समय तक जप और क्रिया करने से आत्मा तदाकार हो जाता है।

लक्ष्य योग

किसी प्रकार का लक्ष्य स्थिर कर लेना या कोई कार्य विशेष को अपना मुख्य धर्म मान कर उस के लिये सतत प्रयत्न करना लक्ष्य योग कहलाता है। समस्त प्रकार के साधन में स्थिर लक्ष्य होना अत्यावश्यक है। स्थिर लक्ष्य मनुष्य ही सफलि भूत होते हैं।

क्रिया योग — संसार के समस्त कार्य करने की सुचारु योग्यता प्राप्त करने के अर्थ किये हुए साधन क्रिया योग कहलाते हैं।

सिद्धि योग — संसार के समग्र कार्यों में सिद्धि प्राप्त करने का नाम सिद्धियोग कहा जाता है, सिद्धियाँ आठ होती हैं।

चर्चा योग — अपने मत को पुष्ट करने की योग्यता को चर्चा योग या तर्क कहते हैं।

ज्ञान योग — किसी प्रकार के कर्म करने की योग्यता प्राप्त करने या किसी भी कर्म में आवद्ध न होने को ज्ञान योग कहते हैं।

सगुण उपासनार्थ योगः—

ध्यान योग — किसी आकार विशेष जैसे पञ्च देव या गुरु मूर्ति या अवतार विशेष की उपासना पूजा, ध्यान करने को ध्यान योग कहते हैं।

हठ योग — शरीर शुद्धि के अर्थ की हुई कष्ट साध्य विशेष क्रियाओं को हठ योग कहते हैं। इसके छः अङ्ग है। यथा—

नेती, धोती, जानिये, वस्ती अरु गज कर्म ।
न्योली, त्राटक, धोंकनी, हठ योगी के धर्म ॥
किये कर्म हठ योग के, निर्मल होवे गात ।
रोग न रहें शरीर में, सुन 'शंकर' निज बात ॥

नेती, धोती, वस्ती गज करणी, न्योली त्राटक, और कपाल भाँति-धोंकनी यह हठ योगी के कर्म हैं । परन्तु गुरु के सन्मुख पूर्ण अनुभव करके ही करने योग्य कर्म हैं । अन्यथा हानि होने की सम्भावना है । इन कर्मों के करने से शरीर निर्मल रहता है । अब हम इन क्रियाओं का भिन्न २ वर्णन करेंगे । यह क्रिया आवश्यकता के समय विचार पूर्वक करनी चाहिये ।

नेती शुद्ध और स्वच्छ सूत्र की डेढ़ हाथ लम्बी पतली डोरी के मोम लगा कर तैयार करे । नासिका के दक्षिण छिद्र में प्रवेश करके वाम छिद्र में से शनैः २ निकाले और दोनों सिरों को पकड़ कर धीरे २ नासिका का मन्थन करे । इससे नेत्र कर्ण और दन्त रोग निवारण होते हैं । नासिका द्वारा जल चढ़ाने को भी नेती कहते हैं ।

धोती सोलह हाथ लम्बी और चार अंगुल चौड़ी दरदरे किन्तु पतले कपड़े की पट्टी को पानी में भिगो कर मुँह के द्वारा निगल जावो । एक सिरा हाथ में पकड़े रहो । थोड़ी देर में बाहर निकाल दो । इस क्रिया से श्लेश्मार (कफ) और पित्त के रोग दूर होते हैं ।

बस्ती कर्म तर्जनी अंगुली को कोमल बना कर गुदा प्रदेश में प्रवेश कर. शनैः २ मल को बाहर निकाल दो फिर गुदा संकुचन की क्रिया (जल के पात्र में बैठ कर गुदा से जल भीतर की ओर खींचे) से पेट में पानी भरे और आकुञ्चन क्रिया से बाहर निकाल दे इस से गुदा और लिंग के रोग दूर होते हैं। यह गहन अभ्यास से होती है।

गज कर्म मुख के द्वारा शुद्ध और ताजा जल पेट में भर ने (पीने) और निकालने को कहते हैं। इससे उदर के रोग निवारण होते हैं। प्रति दिन एक बार ही करे।
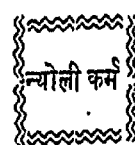
न्योली कर्म पद्मासन लगा कर दोनों हाथ घुटनों पर रखे पेट और मेरु दण्ड को सरल रखे। उदर के दक्षिण और वाम भाग का मन्थन करे। इससे ताप, तिल्ली, शूल आदि रोग और हृदय के रोग दूर होते हैं। यह क्रिया आधे घण्टे से ज्यादा न करे।

त्राटक कर्म पद्मासन से बैठ कर नेत्र एक निश्चित स्थान पर स्थिर करे। शनैः २ इसका अभ्यास बढ़ावे। नेत्र उन्मीलन (झपकना) न करे। इससे बुद्धि निर्मल होती है, मन निश्चल होता है।

इस क्रिया के सिद्ध होने से छाया पुरुष सिद्धि होती है। रोग, आपत्ति और अतिशय अभ्यास होने से मृत्यु तक का ज्ञान हो जाता है। यह क्रिया हठ योग के अन्य कर्मों से श्रेष्ठ तम है। प्रति दिन अभ्यास बढ़ाना चाहिये जब घण्टों तक नेत्रोन्मीलन न हो तब समझो कि त्राटक सिद्ध हो गया।

कपाल भांति धोंकनी

नासिका के वाम भाग से वायु को वेग पूर्वक खींचे और दक्षिण भाग से त्याग दे। क्रमशः छिद्र बदलता रहे। इससे शिर का दर्द मिटता है और कफ रोग शान्त होता है।

हठ योग की समस्त क्रियाओं को आवश्यकतानुसार अनुभवी गुरु की उपस्थिति में करना चाहिये। अन्यथा इस से विपरीत फल भी प्राप्त हो जाता है। आज कल हठ योग जानने वाले बहुत कम मनुष्य हैं। सावधान रहना चाहिये। आहार विहार अत्यन्त सात्विक करना चाहिये। ब्रह्मचर्य का पूर्णतः पालन अत्यावश्यक है।

शिव योग

सदा सर्वदा अपनी मृत्यु को स्मरण रखते हुए मृत्युञ्जय शिव की उपासना नियम पूर्वक करना शिव योग कहलाता है। इससे मनुष्य रोगी नहीं होता और मृत्यु समय कष्ट नहीं पाता।
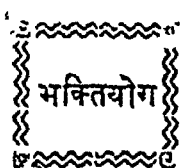
भक्तियोग ईश्वर, गुरु या किसी देवता विशेष में दृढ श्रद्धा रखने, इनकी सेवा करने अपने आपको भेंट कर देने का नाम भक्ति योग है। इसका बहुत भारी महत्व है। भक्ति से अहङ्कार का नाश होकर सरलता और पवित्रता प्राप्त होती है। योगी और ज्ञानी बनने की इच्छा रखने वाले मनुष्य को प्रथम भक्त बनना चाहिये।

भक्ति दो प्रकार की होती है। निर्गुण और सगुण इन्हें रागानुराग (सगुण) वैधी (निर्गुण) भी कहते हैं। भक्ति के नव अंग होते हैं इन्हें नवधा भक्ति कहते हैं। इसके प्रत्येक अंग एक दूसरे से उच्च हैं। एक में दूसरा समाविष्ट होता चला जाता है। इन्हें क्रमशः करना चाहिये। सगुण भक्ति के नव अंग हैं। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पाद सेवन अर्पण, वन्दन दास्य भाव, सखा भाव, और आत्म समर्पण।

[१] सगुण भक्ति अपरा
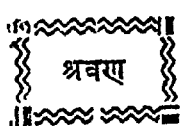
श्रवण कर सन्तन का सङ्ग कथा भक्तों की गाते।
इसको कहते श्रवण प्रेम से हरियश गाते॥

सज्जन पुरुषों का सत्संग करते हुए ईश्वर की यश गाथा को प्रेम पूर्वक श्रवण करता रहे और प्राचीनकाल में हुए

अनन्त महा पुरुष भक्त जनों की कथाएँ सुन २ कर गद् गद् होते हुए इनसे शिक्षा ग्रहण करता जाय और अपने को भक्ति रंग में रंगता रहे। इसी को अपना प्रधान काम समझे और मस्त रहे। आचरण को पवित्र रखे। इसे श्रवण भक्ति कहते हैं।

कीर्तन

होय प्रेम में लीन करे जो प्रभु गुण गायन।
इसे कीर्तन कहे भक्ति मिलती अन पायन॥

संसार के समस्त कार्यों को भूल कर ईश्वर के सुने हुए या भक्तों के जाने हुए गुणों को प्रेम पूर्वक गाता रहे। इनमें तन्मय हो जाय, भूल जाय अपने आपको और संसार को। इससे पवित्र भक्ति प्राप्त होती है। पापों का चढ़ा हुआ भार हलका होता है। इसे कीर्तन कहते हैं।

स्मरण

सदा सर्वदा प्रेम से चिन्तन जो नर करत है।
स्मरण यही 'अमृत' कहे इससे पातक टरत है॥

श्रवण और कीर्तन के द्वारा किये हुए अभ्यास को ईश्वर में प्राप्त हुए प्रेम को, इसके द्वारा प्राप्त हुए आनन्द को याद करके ईश्वर की चिन्ता इनके दर्शनों की चिन्ता करता रहे। संसार को भूल कर ईश्वर का स्मरण करता रहे। श्री अमृत नाथ कहते हैं कि इसी का नाम स्मरण है। स्मरण करने से पापों का क्षय होता है।

पाद सेवन

करे सहित अनुराग सदा चरणों की सेवा।
बहु विधि कर शृङ्गार रिझावे अपना देवा॥
यह है चौथा अङ्ग पाद सेवन कहलाता।
करता है जो भक्त वही उत्तम फल पाता॥

श्रवण कीर्तन और स्मरण करने से भाव में ईश्वर की या देवता विशेष की प्रतिमा स्थिर हो जाती है। इसी प्रतिमा का प्रकट आकार मूर्ति बना कर और नाना प्रकार से उसको सुन्दर बनाकर प्रेम पूर्वक उसके चरण को पूजता रहे सदा सर्वदा इसी काम में लगा रहे (यथा सम्भव) इससे हृदय में उपास्य देव का प्रेम और सेवा का भाव दृढ़ होता रहेगा। यह भक्ति का चतुर्थ अङ्ग है इसे करने से उत्तम फल की प्राप्ति होती है।

अर्पण

भेंट करें जो भक्त जन चरणन में अनुराग से।
'अमृत' प्रेम पदार्थ का अर्पण हो बड़ भाग से॥

अपने प्रिय से प्रिय पदार्थ को जो भक्त प्रेम पूर्वक अपने उपास्य देव के अर्पण, भेंट करता है वह बड़भागी है।

वन्दन

चहुँ दिशि जान प्रमेय विनय जो नर करते हैं।
निशदिन नम्र स्वभाव हृदय में वह भरते हैं॥
इसको वन्दन कहें कटत है इससे बन्धन।
सुधरे अपना जन्म नीम से होवे चन्दन॥

सदा सर्वदा हृदय में नम्रता धारण किये हुए, सर्वत्र ही अपने प्रमेय अर्थात् देवता का ही दर्शन करते हैं, सब घटों में ईश्वर ही दिखाई देता है और उसकी वन्दना प्रार्थना करता है। इसी दशा का नाम वन्दन भक्ति है। इस से जन्म मरण रूपी बन्धन कटता है, दुःख दूर होते हैं ऐसे मनुष्य का जन्म सुधरता है जैसे नीम से चन्दन बन गया हो। नीच दशा से उच्च दशा को प्राप्त हो जाता है।

दास्यभाव

अहंभाव को त्याग कर, दीन भाव से दास हो।
'दास्य' इसी को कहत हैं, स्वामी में विश्वास हो॥

"मैं हूँ", यह भाव त्याग दे और दीनता पूर्वक जिसमें दास भाव भरजाय अर्थात् समग्र जगत को ईश्वर मय जान कर सब की सेवा सहायता करना अपना धर्म समझले। अपने स्वामी अर्थात् ईश्वर में अटल विश्वास स्थापित हो जाय इसी दशा का नाम दास्यभाव है।

सखा भाव

जग झंझट को त्याग प्रेम में लीन रहे जो।
चैन नहीं दिन रैन वचन अटपटे कहे जो॥
गद गद् रहता गात कभी रोता अरु हँसता।
प्रेमी का ही ध्यान, नहीं विषयों में बहता॥
सदा सर्वदा सखा के प्रेम माहिं तड़फते रहे।
अङ्ग आठवां भक्त का 'सखाभाव अमृत कहे'॥

संसार के समस्त प्रकार के झंझटों का त्याग करके जो प्रेम में तन्मय हो जाय, जिसका शरीर पुलकायमान रहे रात दिन प्रेमी के प्रेम के लिए व्याकुल रहे, मुख से अट पट अस्त व्यस्त शब्द निकलें, कभी रोवे प्रेमी की याद में और कभी उसके दर्शन की आशा में हँसने लगे। इस प्रकार दास्य भाव से प्रकट हुआ यह सखा भाव है, भक्ति का आठवां अङ्ग है ऐसे श्री अमृतनाथ कहते हैं।

आत्म समर्पण

चरणन में जो देह राम के अर्पण करता।
सुख दुख का कुछ ध्यान नहीं चित में वह धरता॥
समता उसमें रहे देह की ममता नाहीं।
राम भरोसे होय यही दृढ़ता मन माहीं॥
मैं हूं ऐसा भाव जब रहता है मन में नहीं।
'अमृत नाथ' बखानते आत्म समर्पण है यही॥

जो कुछ होता है सब ईश्वर के भरोसे पर छोड़दे मन में दृढ़ता आजाय, अपने सुख दुख का ध्यान न रहे, हृदय में समता भर जाय, देह की चिन्ता न रहे, मैं कुछ हूं यह भाव सर्वथा नष्ट हो जाय और ईश्वर के चरण में अपने आपको समर्पण करदे। श्री अमृतनाथ कहते हैं कि जब यह काम बन जाय उस दशा को "आत्म समर्पण" कहते हैं।

यह हैं अपरा भक्ति के नव अङ्ग जो कि सावधानी से पूरे करने चाहिए। इन्हें पूर्ण करने वाला भक्त कहा जाता है।

अपरा में कर्म अरु उपासनादि कारण से,
होते नव भेद सो ही मैंने बताये हैं।
भेद-भक्ति अपरा सगुण रूप के उपासक जन.
जग के सुख हेतु करें दुःख के सताये हैं।
दृढता यदि पूर्ण होय, सुख को वह प्राप्त करे,
वासना न होय क्षीण दुःख में तपाये हैं।
निर्गुण के ज्ञान बिना वृत्ति नहीं निश्चल हो,
बार बार ऐसे 'नाथ अमृत' चिताए है॥

२ निर्गुण भक्ति, परा।

शुद्ध, बुद्ध, मुक्त सच्चिदानन्द का ध्यान करते हुए संसार को अपने ही रूप में देखना, निर्गुण भक्ति कहलाती है। इससे जीवन मुक्त रूप प्राप्त होता है। यह परा या वैधी अवस्था है। इसको प्राप्त कर लेने के पश्चात् आनन्द ही आनन्द है।

परा में अभेदता है भेद का नाम कहीं,
स्पष्ट मैं सुनाता हूँ सुनो ध्यान को लगा।
द्वन्द मिटजाय निर्द्वन्द भाव प्राप्त होय,
वृत्ति हो पवित्र और ब्रह्म ज्ञान दे जगा।
सर्वदा सचेत रहे जगत से अचेत रहे,
त्यागे अहेत हेत राग द्वेष दे भगा।

परा भक्ति का प्रभाव "मैं तू" का ही अभाव,
'अमृत' अपना स्वभाव अंजया में दे लगा ॥

परा भक्ति अभेद है इसमें भेद भाव नष्ट हो जाता है। वृत्ति पवित्र हो जाती है। इसका साधक हित अनहित राग द्वेष को त्याग कर संसार सम्बन्ध त्याग देता है और सर्वदा चैतन्य सावधान रहता है। श्री अमृतनाथ कहते हैं मैं स्पष्ट रूप से कहता हूं ध्यान देकर सुनो परा भक्ति में मैं, तू का अभाव हो जाता है। इसका स्वभाव और प्रभाव है कि यह द्वन्द भाव को मिटा देती है, अजया अर्थात् आत्म दर्शन में लगा देती है और निर्द्वन्दता का उदय करा देती है।

तीनों गुण

सत, रज और तम प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान है। अतः भक्ति भी त्रिगुणात्मिका होती है। परन्तु निर्गुण भक्ति में गुणातीत भक्ति में कोई झंझट नहीं, किसी साधन विशेष और पदार्थ की तथा देश काल विशेष की आवश्यकता नहीं है। निर्गुण भक्ति में तन्मयता प्राप्त होने पर सांसारिक सुख दुःख का मनुष्य पर प्रभाव नहीं पड़ता। अतः सर्वदा सुखी द्वन्द रहित और आत्म भाव में मिला देने वाली कामधेनु के समान निर्गुण भक्ति को प्राप्त करो, धारण करो।

मैं दृढ़ता पूर्वक कहता हूँ कि जो मनुष्य सर्वदा सचेत रह कर संसार के मानापमान और राग द्वेष को त्याग देगा वह मेरे लोक, अमृत लोक को प्राप्त कर लेगा।

(१) भक्त

चार भाँति के भक्त जन होते हैं जग माहिं।
ज्ञातेच्छुक, ज्ञानी दुखी और स्वार्थ लपटाहिं॥

संसार में चार प्रकार के भक्त होते हैं, स्वार्थी, दुखी ज्ञान के इच्छुक और ज्ञानी।

(२) दुखी भक्त

इन्द्र का अग्नि का वेग बढे दुक धैर्य नहीं चिललावत है।
धन हीनरु रोग से होय दुखी, तन छीण सदा कलपावत है॥
राजा का कोप समाज अनादर, पाय के जो घबरावत है।
ऐसे काल में 'अमृत' करे, वेही लोक में आर्त कहावत है॥

इन्द्र का कोप हुआ, अत्यन्त वर्षा से घबड़ा गये, चारों ओर प्रचण्ड अग्नि व्याप्त हो रहा है, निर्धनता के दुःख से दुःखी हैं रोग के मारे कराह रहा हैं और जीर्ण शरीर हो गया है इस से व्याकुल होकर त्राहि २ कर रहे हैं। राजा अप्रसन्न हो गया है, जाति वाले रुष्ट हो गये हैं। श्री अमृतनाथ कहते हैं कि इस प्रकार के समय में घबड़ा कर दुःखी होकर जो मनुष्य भक्ति करते हैं उन्हें संसार में आर्त अर्थात् दुःखी भक्त कहते हैं।

(३) स्वार्थी भक्त

पुत्र, कलत्र, महत्व के हेतु भजे अरु भोग को भो[illegible] न [illegible]वे।
भक्ति करे अरु मान चहे, बल बुद्धि मिले सुख सम्पा[illegible]न [illegible] [illegible]ये॥

इष्ट मिले अरु अनिष्ट दुरे, सब सृष्टि प्रभाव में आपके आवे।
भक्ति में भाव रहे जिनके अस, स्वार्थी वही ऐसे अमृत गावे॥

स्त्री, पुत्र, यश, बल, बुद्धि, सुख, सम्पत्ति और बड़ाई प्राप्त होने की इच्छा से जो भक्ति करते हैं। प्रिय पदार्थ प्राप्त हों और अप्रिय दूर रहे, सारे संसार पर अपना प्रभाव पड़े, सब हमारी पूजा करें। श्री अमृतनाथ कहते हैं कि भक्ति करते समय जिन मनुष्यों के हृदय में ऐसे भाव-इच्छा रहते हैं उनको स्वार्थी कहते हैं।

(३) ज्ञानेच्छुक-जिज्ञासु भक्त

ज्ञान पिपासा लगी है जिन्हें, मैं हूँ कौन यह भाव उठे चितमाही।
जीवरु ब्रह्म में भेद किता, त्यागूँ माया प्रपञ्च यह ध्यान सदाही॥
सत्य असत्य रहस्य मिले, ऐसी युक्ति की चाह को चित्त धराही।
इस हेतु से अमृत भक्ति करे, ताको कहत जिज्ञासु है सन्त सराही॥

जिन के चित्त में ऐसी ज्ञान रूपी जल की तृषा उठी है कि मैं कौन हूँ, जीव और ब्रह्म में कितना भेद है, मैं माया के प्रपञ्च से दूर हट जाऊँ, मुझे असत्य और सत्य का भेद मिल जाय श्री अमृतनाथ कहते हैं कि जो मनुष्य इस प्रकार की इच्छा से भक्ति करता है उसे ज्ञानेच्छुक-जिज्ञासु भक्त कहते हैं।

शत्रु में, मित्र में, भ्रष्ट, पवित्र में, एक चरित्र अभेद वही है।
रावरु रङ्क में शंक, निशंक में, दूर में अङ्क में भेद नहीं है॥
ज्ञान, अज्ञान में, मान, अमान में, स्थान, कुस्थान में खेद कहीं है।
रूप अनूप का भेद लखे सोही ज्ञानी है 'अमृत' वेद कही है॥

जिस मनुष्य को शत्रु मित्र उत्तम, अधम के साथ एकसा व्यवहार करने में संकोच नहीं। राजा और कंगाल, भयभीत और निर्भय, दूर और पास में किसी प्रकार का भेद न दिखाई दे। ज्ञान अज्ञान, मान, अपमान, अच्छा स्थान और बुरा स्थान जिसे दुखित न करे। श्री अमृतनाथ कहते हैं भक्ति करते २ जिसने अनुपम रूप का भेद लख लिया है वही ज्ञानी भक्त है। वेद भी ऐसा ही कहते हैं।

सप्तदशोल्लास १७

निर्गुण उपासना योग
राज योग का अष्टाङ्ग

सब प्रकार के योगों में अष्टांग योग का श्रेष्ठ स्थान है। इसके साधन से शरीर शुद्धि के साथ ही आचरण भी पवित्र होता है। योग की शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, इनके द्वारा मनुष्य अपना उद्धार करके

संसार के जिज्ञासु पुरुषों को भी सन्मार्ग पर ला सकता है और यदि इच्छा हो तो (होना नहीं चाहिये) योग शक्ति के चमत्कारों का प्रदर्शन भी कर सकता है। * अष्टसिद्धि योगी को प्राप्त हो जाती है।

अष्टाङ्ग

अष्टांग निम्न लिखित है:—यम, नियम, आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि।

इन में प्रथम पांच अङ्ग बहिरङ्ग है और तीन अन्तरङ्ग। इन अङ्गों साधनों को क्रमशः दीर्घ काल तक करने वाला मनुष्य इच्छित फल प्राप्त कर सकता है। जिन मनुष्यों का आहार, विहार, रहन सहन, और सांसारिक व्यवहार सुधरा हुआ है, पवित्र है, अन्तरङ्ग तीन साधनों में से किसी एक का भी अभ्यास कर सकते हैं, और उन्हें अल्पकाल में ही आनन्दानुभव होने लगता है। वास्तव में तो अन्तरङ्ग तीनों ही (ध्यान धारणा और समाधि) साधन एक परिणाम पर पहुंचाते हैं। इन तीनों को एक ही समझ लिया जाय तो भी कोई हानि नहीं है। इनमें केवल थोड़ा भेद है।

योग साधन करने वाले मनुष्य का आहार विहार पवित्रतम नहीं होगा तो उसे कोई लाभ नहीं मिलेगा। अब हम इन आठों अङ्गों का भिन्न २ वर्णन करेंगे।

---

* अणिमा महिमा आदि।

१ यम

निर्हिंसक हो, सद्वक्ता हो सर्वदा अशौच निवृत्त करे।
दृढ़ता से ब्रह्मचर्य धारे, कामादिक तृष्णा त्याग करे॥
क्षमा और धीरज धारे, हो दयालु निर्दयता जारे।
आर्जव से चले सूक्ष्म भक्षण हो, अमृत तन को रखवारे॥
यम के दश अंग बताये हैं, जो योगी को आवश्यक है।
'शङ्कर' दृढ़ता से पावेगा, जो योगी को आवश्यक है॥

मन कर्म और वचन से किसी को कष्ट न पहुंचाना अहिंसा है। जैसा देखा या सुना हो या जैसा मन में हो, विचारा हो वैसा ही मीठे शब्दों में कह देना सत्य कहा जाता है किसी प्रकार भी दूसरे के स्वत्व (हक) को न छीनना आस्तेय कहलाता है। मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा उत्पन्न हुए काम विकार को रोकना काम के आठ ✽ अंगों से बचे, इसको ब्रह्मचर्य कहते हैं। भोग सम्बन्धी सामग्री का संग्रह न करना अपरिग्रह कहलाता है। इसी प्रकार अन्य पांचों का भी विचार यथा समय करना चाहिए।

इस प्रकार, अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांचों के साधन को यम कहते हैं। इनके अतिरिक्त क्षमा, धैर्य, दया, आर्जव और सूक्ष्म भोजन भी मेरे विचार में यम के अन्तर्गत हैं।

✽ स्त्री का स्मरण, अवलोकन हास्य, स्त्री रूप से देखना, मिलने का उपाय स्पर्श, एकान्त बड़ाई।

२ नियम

अब मैं कहता नियम को, सुनलो ध्यान लगाय।
दृढता से साधन करे, तब अमृत पद पाय॥
है पांच नियम के अंग पांच उप अंग दशों को सुन लेना।
सन्तोष, तपस्या, शुद्धि, और स्वाध्याय भली विधि गुन लेना॥
ईश्वरभक्ति, लज्जा, दृढ़ता, सिद्धान्त एक निश्चय करना।
पूरा आस्तिक रहे, काम को आठ अग से वश करना॥
ऐसा करने से साधक, की प्रज्ञा पवित्र हो जाती है।
शनैः कर्मों की ग्रन्थी ढीली पड़ती जाती है॥
भोग त्याग कर जो सज्जन योगानुराग को करता है।
'अमृत' को वोही पाता है, उसका ही जन्म सुधरता है॥

सुख दुःख हानि लाभ, यश, अपयश, आदि के उपस्थित होने पर पूर्णतः शान्त रहना, सन्तोष कहलाता है। मन और इन्द्रियों को पूर्ण रूप से काबू में रखना और इस कार्य में जो कष्ट मिले उसको सहना तपस्या कहलाती है। शुद्धि (पवित्रता) दो प्रकार की है एक शरीर की यह जल मृत्तिका आदि से होती है (साबुन से नहीं) अच्छे ग्रन्थों का पाठन पठन स्वाध्याय कहलाता है। मन वाणी और शरीर के द्वारा ईश्वर के अनुकूल चेष्टा करना प्रणिधान (भक्ति) कहलाता है। भली भांति समझ कर स्थिर किया हुआ दृढ किया हुआ जो सिद्धान्त है उस पर अटल रहना लोक लज्जा का भय रखना ईश्वर या इष्ट देवता में अटल विश्वास रखना और काम वासना पर पूर्णतः वश रखना यह सब नियम कहा जाता है।

यम और नियम यह दोनों अंग बहुत ही लाभ प्रद और उच्च कोटि के साधन हैं। वास्तविक रूप में इनका पालन करना ही आत्म दर्शन के निकट पहुंचना है।

३ आसन

आसन तीजा अङ्ग है, इस बिन योग न होय।
चौरासी लख योनि के, भिन्न २ हैं सोय॥
तिन में पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिक आसन गौमुख आसन।
वीरासन अरु सुख आसन, हैं मुख्य कहे जितने आसन॥
इन में पद्मासन सिद्धासन, सुख आसन प्रिय योगी को।
यह जीव भाव को दूर हटा, दे ब्रह्म रूप है योगी को॥
सतगुरु से शिक्षा पाकर के जो विधिवत् करते हैं इनको।
'अमृत' पद वोही पाते हैं, दृढ लग्न लगी चित में जिनको॥
जिनका आसन दृढ होता है, उनको न विषय सुख भरते हैं।
है जीवन मुक्त दशा उनकी वह 'शंकर' पद को पाते हैं।

योग का तीसरा अङ्ग आसन है। आसन कहते हैं बैठक या बैठने को। यह चौरासी लक्ष योनियों के पृथक २ हैं। एक ही शरीर की कई प्रकार की बैठक होती है। इस हिसाब से आसन अनन्त हैं। परन्तु एक योनि का एक ही आसन मान कर पुरातन महात्माओं ने चौरासी लक्ष आसन माने हैं। इनमें ८४ मुख्य हैं। किन्तु इन चौरासी में भी अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ मुख्य २ आसन भिन्न २ आचार्यों ने अत्युत्तम समझे हैं।

मैंने कतिपय आसनों का अभ्यास किया है और उनसें केवल यही लाभ पाया है कि यह समय २ पर शरीर के रुग्ण हो जाने पर समशीतोषण दशा को ठीक रखने के अतिरिक्त आत्म दर्शन में किसी प्रकार सहायक नहीं हैं। मैं आसनों का विरोध तो नहीं करता परन्तु यह तो बल पूर्वक कहता हूं कि किसी आसन से हठ पूर्वक बहुत समय तक बैठे रहने से आन्तरिक उष्णता बढ जाती है और शरीर यंत्र का सञ्चालन ठीक तरह शान्ति पूर्वक होने में बाधा उत्पन्न हो जाती है जब शरीर में गर्मी बढ जाती है तब मन का चाञ्चल्य अतीव वेगवान बन जाता है और तमोगुण के जंजाल में फँसाकर वृत्ति को वहिर्मुख बना देता है। हाँ विशेष कारणों के समय आसन कुछ काल के लिये उपयोगी है।

वास्तव में तो जिस प्रकार शरीर सुखी रह सके वही आसन श्रेयस्कर है। केवल प्राचीन ग्रन्थों में लिखा हुआ होने से ही उसे लाभ प्रद नहीं मानना चाहिये। देश कालानुसार व्यवहार करना चाहिये। साधक का यही कर्तव्य है।

मैंने जिन आसनों का अनुभव किया है वह निम्न हैं।

पद्मासन

वाम जंघा पर दक्षिण पैर और दक्षिण जंघा पर वाम पाद रखे। दोनों हाथ गोद में एक के ऊपर दूसरा रखे। कमर सीधी और नेत्र नासिका पर स्थिर रखे। यही पद्मासन का

रूप है। इस आसन के करने से श्वासोच्छ्वास क्रिया ठीक होती है और मेरुदण्ड सीधा रहता है। इसके अभ्यास से उदर रोग, चर्म रोग, तिल्ली आदि का निवारण होता है। इस आसन का अभ्यास करने वाले को ज्यादा चलना फिरना न चाहिये।

सिद्धासन

वाम पांद की ऐडी को योनी स्थान सीवनी में रखे और दक्षिण पैर को इन्द्रिय (शिश्ण) पर सावधानी से रखे कि वह दब जाये और वृषणों को कष्ट न पहुंचे। ठोडी को कण्ठ के नीचे के भाग में लगावे, दृष्टि को भ्रूमध्य में जमावे और दोनों हाथ गोद में रखे। इस आसन का अभ्यास करने से हृदय और फेफड़े बलवान बनते हैं। श्वास तीव्र गति से आने लगता है। गर्मी बढ़ती है। श्वास, काश, हृदय रोग और अजीर्ण आदि दूर होते हैं। गृहस्थी को इस आसन से हानि पहुंचने की सम्भावना है।

कोमल सिद्धासन

इस में दक्षिण पाद की एडी को गुदा के मध्य दबावें और वाम पाद दक्षिण पाद से भिड़ाया रखें। यह आसन श्रेष्ठ है। इससे बहुत समय तक बैठने से भी कष्ट नहीं होता। भोजन का पाचन होता है और मन स्थिर होता है। यह आसन साधु गृहस्थी सब कर सकते हैं।

बद्ध-सिद्धासन

में (जो ऊपर कहा है) घृत दुग्ध का सेवन करना चाहिये अन्यथा गर्मी बढ़ जायगी।

स्वस्तिक आसन

दाहिनी जंघा में वाम पैर और वाम जंघा में दाहिना पैर दबावे। इस आसन में वाम पैर नीचे और दाहिना पैर ऊपर रखे। हाथों को गोद में रखे। और शरीर सीधा रखे। यह साधारण आसन है, निर्बल मनुष्य भी इस से बहुत समय तक बैठ सकता है। शारीरिक अवस्था इस से साम्यावस्था में रहती है।

गोमुख आसन

सिद्धासन और इस आसन में कोई विशेष भेद नहीं है। हाथों को गोद में न रख कर घुटनों पर रखे। इससे क्षुधा वृद्धि होती है।

वीरासन

दाहिनी जंघा के नीचे वाम पैर और वाम जंघा के नीचे दक्षिण पैर रखे। हाथों को दोनों पार्श्वों (बगलों) में पृथ्वी पर रखे। इससे गर्मी बढती है। पाचन क्रिया ठीक होती है।

सुख आसन

जिस प्रकार शरीर को सुख मिले उसी प्रकार बैठा या लेटा रहे। इसी क्रिया का नाम सुखासन है। इससे मन टिकता है, वृत्ति स्थिर होती है।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत से आसन हैं। जैसे भद्रासन, मयूरासन, शीर्पासन पश्चिमतान आदि। परन्तु यह सब बैठने के कई रूप ही केवल दिखाते हैं या दर्शकों को प्रभावित करते हैं। विशेष कोई लाभ नहीं। शीर्षासन और पश्चिमतान से तो गर्मी इतनी बढ़ जाती है। कि शरीर को शीघ्र ही रुग्ण, असक्त और अनियमित रूप से सञ्चालन होने योग्य बना देती है। वर्तमान काल के निर्बल और संयम हीन, निर्वीर्य शरीरों को कोई आसन और मुख्यतः शीर्पासन तो कभी भी नहीं करना चाहिये। योग के आसनों का रूप नियत करने वाले महात्माओं ने समयानुसार ही ऐसा २ रूप नियत किया होगा, परन्तु अब इनके समयोचित और अनुभवी साधकों का प्रायः अभाव है। शारीरिक अवस्था का पूर्ण ज्ञान हुए बिना मन माने आसन करना या करवाना हानि के सिवाय लाभ दायक नहीं है। ऐसा मेरा अनुभव है।

प्राकृतिक रूप को त्याग कर विकृत रूप बनाना और शारीरिक तंत्रियों को अवरोधित करना, उनके प्राकृतिक सञ्चालन में बाधा डालना अनुचित ही नहीं हानिकर भी है।

मेरे अनुभव से पद्मासन और सुख आसन यह दो ही आसन काम के है। शेष आडम्बर हैं परन्तु अनुभवी पुरुष इन से कभी २ रोग निवारण भी कर देते हैं। चित्त वृत्ति का निरोध जो कि योग का वास्तविक ध्येय है, इस प्रकार नहीं हो

सकता। आसन योग का एक वहिरंग भाग है। इसका प्रभाव शरीर तक सीमित है। नाना प्रकार के आसन लगाने से शरीर का प्रत्येक भाग कोमल सरलता से संकुचित और आकुंचित हो सकता है। दर्शक इसके द्वारा प्रभावित हो सकते हैं और इस प्रकार साधक का मान हो सकता है। वस।

४ प्राणायाम

चोथा प्राणायाम है समझ देख मन माहि।
प्राण अपान मिलाप से तन्मयता चित लाहिं॥

विधि से श्वास चढ़ाने को योगी जन पूरक कहते हैं।
नियम पूर्वक ठहराने को ज्ञानी कुम्भक कहते हैं॥
रेचक है नाम त्यागने का यह श्वास २ में होते हैं।
पर सत्गुरु भेद वतावे तव ही ज्ञात यथा विधि होते हैं॥
पूरक कुम्भक अरु रेचक इनके आठ भेद योगी कहते॥
इनके साधक हैं सदा सुखी वह नहीं रोग का दुःख सहते॥
सम गति से श्वास चले तव ही साधक को दुःख दर्शाता है।
कोमल भक्षी एकान्त निवासी ही इसका फल पाता है॥
नाभि कमल सोशि खर लोक तक जो जन निश दिन रमता है।
'अमृत' फल वोही पाता है, "शंकर" जिस घट में समता है॥

यम, नियम और आसन की भाँति प्राणायाम भी योग का वाह्य अंग ही है। प्राचीन पुस्तकों में चाहे जैसा इसका

रूप और क्रिया लिखी हो, परन्तु मैंने जैसा अपने अनुभव से जाना समझा और माना है वह इस प्रकार है।

प्राण और अपान को सम गति करके इनको मिश्रित करके इनके द्वारा बनी हुई वायु अर्थात् श्वास को मेरु दण्ड स्थित सुषुम्ना नाड़ी के द्वारा शिखर में पहुंचाना, वहाँ कुछ विश्राम करना और त्रिकुटी मार्ग से तीन चक्र (आज्ञा विशुद्ध और अनाहत) का भेदन करके नाभि स्थित मणि पूरक चक्र में पहुंचा कर थोड़ा विश्राम लेना। इस प्रकार ब्रह्मनाड़ी (सुषुम्ना) रूपी माला के आधार पर श्वास की गति को आश्रित रखना, इसमें वृत्ति लवलीन करना अर्थात् वहिर्मुख वृत्ति को अन्तर्मुखी बनाना और अपने स्वरूप (आत्म स्वरूप) को खोजना। बस यही है प्राणायाम का मुख्य रूप, सिद्धान्त और लाभ।

इस शास्त्रकारों ने, विद्वानों ने जो कुछ भी प्राचीन पुस्तकों में लिखा है वह प्राणायाम के स्वरूप को बढ़ाना, इस साधन के द्वारा शारीरिक और सांसारिक कार्यों की सिद्धि करना और एक प्रकार से अग्नि के एक पतङ्गे को ज्वाला मुखी का रूप देना है। जो लोग श्वास को रोकते हैं, यद्यपि उनका अभ्यास बढ़ जाता है और कुछ काल तक प्राणों की गति को रोक सकते हैं परन्तु उनके शरीर से गर्मी बढ़ जाती है और अन्त में उन्हें कष्ट पाकर मृत्यु का ग्रास होना पड़ता है। मैंने ऐसे कई साधक देखे हैं और स्वयं का अनुभव है।

श्वास को शिखर में पहुंचाना 'पूरक' कहलाता है विश्राम काल को कुम्भक कहते हैं और त्यागने या उतारने को रेचक कहते हैं। यह क्रिया यदि सम गति से (एक मिनिट में पन्द्रह श्वास आते रहें) तो शरीर निरोग बलिष्ट और आनन्दित रहता है, वृत्ति में शान्ति रहती है और आत्मानन्द प्राप्त होता है। और यदि इस गति में कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है या कर लिया जाता है तो शारीरिक, मानसिक और आत्मिक व्यवहार में विषमता उत्पन्न हो जाती है और अशान्ति रहती है।

प्राणी मात्र के शरीर में श्वास ही मुख्य शक्ति है, जिससे शरीर का सञ्चालन होता है। श्वास के अर्थात् प्राण के अभाव या विपरीत भाव हो जाने पर शरीर सञ्चालन विगड़ जाता या रुक जाता है। शरीर ही नहीं पञ्च तत्व चारों, अन्तःकरण और तीनों गुण सब प्राणों के आश्रित हैं। कहीं प्राण का रूप महान् है तो कहीं अल्प है, परन्तु प्राण की उपस्थिति अत्यावश्यक है विश्व के लिये।

यह निश्चित सत्य है कि स्वस्थ, बलिष्ठ एवं संयमी पुरुष के शुद्ध रज वीर्य से बना हुआ मानव शरीर प्राण शक्ति के ६२,०००००० बाणवें क्रोड़ संघर्ष को सहन करने योग्य होता है। अर्थात् मनुष्य शरीर की पूर्ण आयु बाणवें क्रोड़ श्वांस की होती है और यह श्वास ११८ वर्ष, ३ मास १२ दिन, १४ घण्टे और १३। मिनिट में समाप्त होते हैं। श्वास की

स्वाभाविक और उचित गति के अनुसार एक मिनिट में १५ श्वास और दिन रात के २४ घण्टे में २१,६०० श्वास आने चाहिये। इसके विपरीत होने से मन, बुद्धि को विषमता प्राप्त होने से अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। श्वास की गति को साम्यावस्था में रखने के अर्थ खान-पान व्यवहार आदि की अत्यन्त सावधानी रखने की आवश्यकता है। ऐसा न करने से कोई भी क्रिया और साधन मनुष्य को अपने अन्तिम लक्ष्य-आत्म दर्शन को प्राप्त कराने में समर्थ नहीं हो सकता।

आहार-विहार के सम्बन्ध की हम आगे किसी स्थान पर विषद विवेचना करेंगे।

यह तो निश्चित है कि आहार-विहार के विकृत होने से ही शरीर प्राय: रुग्ण और निकम्मा बनता है और मनुष्य इन्द्रियों के स्वादों के वशीभूत होकर अपने खान-पान व्यवहार की ओर बहुत कम ध्यान देता है। फलत: जीवन को कष्ट पूर्ण, पर-मुखा-पेक्षी और औषधि उपचार के आश्रित होना या हो जाना पड़ता है। खान-पान के विकृत होने पर श्वास की गति असम्य हो जाती है और इस गति भ्रष्टता से रोगी होना पड़ता है। अत: श्वास को पुन: साम्यावस्था में लाकर रोग मुक्त होने के अर्थ प्राणों के इस संघर्ष को (श्वास को) ही सम विषम करने की आवश्यकता होती है प्राचीन काल में न इतने वैद्य, डाक्टर और औषधि उपचार का बाहुल्य था

और न शान्ति प्रिय लोगों को इस ओर ध्यान देने की ही आवश्यकता थी। वह तो शारीरिक क्रियाओं से शरीर को निरोग रखने के साधन प्राप्त कर लेते थे। इन साधनों का उन्होंने प्रगाढ़ अनुभव प्राप्त किया था जो कि किसी न किसी रूप में या अंश में अब भी विद्यमान है। अनुभवी पुरुषों द्वारा उसको भलि भांति जानकारी प्राप्त करके यथोचित लाभ उठाया जा सकता है। प्राकृतिक उपचार बड़े चमत्कारिक लाभ देने वाले हैं।

प्राणायाम के पूरक कुम्भक और रेचक के द्वारा हमारा श्वास साम्यावस्था को पहुंचता है। परन्तु श्वास को रोक कर जो मनुष्य इससे आत्म दर्शन या किसी प्रकार की लौकिक सिद्धि को प्राप्त करने की इच्छा रखता है। वह प्रगाढ़ भ्रम में है, यह सर्वथा सत्य है।

शारीरिक अवस्था को साम्य रूप में रखने के अर्थ यदि श्वास की गति को सम, विषम बनाने की आवश्यकता जान पड़े तो उस काल के अर्थ योगी मनुष्यों ने अपने अनुभव से विशेष प्रकार के प्राणायाम का आश्रय लेने का आदेश किया है। अब भी यह क्रिया काम में लाई जाती है। इन्हें कुम्भक कहते हैं। कुम्भक आठ प्रकार के होते हैं।

कुम्भक अष्ट प्रकार के, प्राण वायु का ध्यान।
तिनमें 'केवल' श्रेष्ठ है, "अमृत" की पहिचान॥

कुम्भक आठ प्रकार के होते हैं:—

सूर्य वेधन, ऊजाई, शीतकार, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा और केवल। इनमें 'केवल' कुम्भक सर्व श्रेष्ठ है।

प्रथम सूर्य वेधन

सूर्य वेधन प्रथम कुम्भक है भेद कहूँ।
सुख आसन लाय इसे करते जो सन्त हैं॥
सूर्य मार्ग द्वारा जो शनैः २ खींच श्वास।
चन्द्र पथ होकर जो त्यागे गुण वन्त हैं॥
उदर के रोग सभी दूर होय निश्चय ही।
वायु होय शुद्ध इससे पाते सत्यपन्थ हैं॥
सतगुरु से प्रेम होय निश दिन निरोग रहे।
'अमृत' की शिक्षा सुन शङ्कर अनन्त हैं॥

सूर्य वेधन कुम्भक सुख आसन से करना चाहिए। सुख पूर्वक बैठ कर दाहिनी नासिका से धीरे २ स्वास खींचे और वाम नासिका से त्याग करदे। इस क्रिया के करने से वायु शुद्ध होता है और उदर (पेट) के रोग दूर हो जाते हैं। गर्मी बढ़ती है, दुग्ध का सेवन करना चाहिए।

(२) ऊजाई कुम्भक

ऊजाई कुम्भक के रूप लाभ सुनो सन्त,
तज कर अभिमान भेद सतगुरु से पाइये।
दोनों स्वर द्वारा भर प्राणन को पेट माहि,
कण्ठन में रोक कुछ काल त्याग दीजिए।

इस प्रकार करने से वृत्ति शुद्ध होती है,
श्वास रोग नाशें इससे स्वास्थ्य लाभ लीजिए।
निद्रा को जीते तब "अमृत" आनन्द मिले,
'शंकर' सत शिक्षा को निश्चय कर मानियें ॥

अर्थः—साधारण रूप से बैठ कर दोनों नासिका से श्वास को पेट में भर कर कुछ काल कण्ठ में रोके रहे, फिर धीरे २ त्यागदे। ऐसा करने से श्वास रोग दमा, गुल्म, क्षय आदि मिटते हैं। वृत्ति में शान्ति आती है। योगी को यथा सम्भव निद्रा जीत होना चाहिए।

(३) शीतकार कुम्भक

शीतकार कुम्भक सुखदायक शरीर को है,
सतगुरु से शिक्षा ले भली भाँति कोजिए।
दोनों स्वर रोक ओष्ठ जिह्वा से खींच वायु
रोके कुछ काल शनैः २ त्याग दीजिये।
होता अधिकार क्षुधा तृषा आदि व्याधिन पर
नाशें ज्वर रोग मुख सुन्दरता लीजिए।
सुख आसन लाय मन गुरु के चरणों लगाय,
व्यापे विष नाहिं सदा 'अमृत' रस पीजिए ॥

अर्थः—दोनों नासिका बन्द करके होठ और जीभ के द्वारा धीरे २ वायु का पान करे और फिर नासिका से त्याग दे। इस प्रकार करने से ज्वर रोग चाहे जैसा हो वह दूर हो जाता है वृद्धावस्था की निर्बलता मिटती है, मुख पर कान्ति आती है।

विप का प्रभाव नहीं पड़ता। यह शीतल प्राणायाम है। ठण्डक उत्पन्न करता है।

(४)
शीतली
कुम्भक

शीतली कुम्भक लाय जीभ तालु में लगाय,
शनैः २ प्राणवायु पीवे सुख होवेगा।
घ्राण द्वारा होय त्यागे तिली, ताप दूर भागे,
गोला आदि रोगन को मूल सहित खोवेगा।
वृद्धता न आवे श्वेत बाल कभी होय नहीं,
क्षुधा तृषा आदिन से सुखी होय सोवेगा।
गुरुवर की शिक्षा से युक्ति को जान लेय,
'अमृत' बखाने 'शंकर' दुखी नहीं होवेगा॥

अर्थः—दोनों नासिका बन्द करके जीभ को तालु में लगा कर धीरे २ वायु का पान करे फिर दोनों नासा से त्याग दो इस प्रकार करने से तिल्ली ताप, गोला आदि उदर रोग नष्ट होते हैं। क्षुधा, तृषा पर वस होता है, काले बाल श्वेत नहीं होते, वृद्धता नही आती। यह कुम्भक भी शीतल है। ग्रीष्म काल में करो।

(५)
भस्त्रिका
कुम्भक

भस्त्रिका कुम्भक पद्म आसन लगाय करे,
राखे मुख बन्द श्वास घ्राण से चढ़ाइये।
पिंगल से पूरक कर त्याग देय इड़ा द्वार,
वार २ ऐसे अभ्यास को बढाइये।

पित्त और कफ के सब रोग दूर होय यासे,
कुण्डलनी शक्ति माहिं चेतनता पाइये।
वीर्य को बढ़ावे वृत्ति सुन्दर बनाय देत,
'अमृत' चैतन्य होय 'शंकर' सत् मानिये॥

अर्थ:—इस कुम्भक को पद्मासन लगा कर करनां चाहिए। मुख-बन्द कर के दाहिने स्वर से श्वास को खींचे और अल्प काल तक रोक रखे फिर वाम स्वर से त्याग दे। इस प्रकार वारम्बार करने से पित्त, कफ और वायु के रोग दूर होते हैं। कुण्डलनी शक्ति चैतन्य होने लगती है, वीर्य की वृद्धि होती है वृत्ति में शान्ति आती है। यह कुम्भक सम शीतोष्ण है चाहें जिस ऋतु में किया जा सकता है।

(६) भ्रामरी कुम्भक

भ्रामरी कुम्भक सिद्ध आसन से सिद्ध होय,
करते जो योगी जन निश्चलता लायके।
उभय प्राण द्वारन से वेग सहित खींच श्वास,
भृङ्ग के समान भों भों शब्द को उठाय के।
रोके कुछ काल त्रिकुटि माहिं शनैः २ त्यागे,
होवे मन शान्त स्वाद अमृत का पाय के।
योगिन को प्यारा है सुख देन हारा है,
'शंकर' भृकुटी में देख नयन को जमाय के।

अर्थः—यह कुम्भक सिद्धासन से होता है। दोनों नासिका से श्वास खींचे, भौंरे के समान भों भों शब्द करता रहे और त्रिकुटि में अल्प काल तक रोक कर नासिका से त्याग दे। इस से मन में शान्ति आती है, अमृतास्वादन प्राप्त होता है। इस क्रिया के समय नेत्रों को भृकुटी में स्थिर करना चाहिये। यह क्रिया योगियों को प्रिय और सुख देने वाली है।

(८) मूर्च्छा कुम्भक

मूर्च्छा कुम्भक को निर्जन में शान्त होय,
सुख से आसन लगाय योग रङ्ग राते हैं।
वेग सहित खींच श्वास कण्ठ तले कर निवास
बार २ खींचे अरु त्यागे सुख पाते हैं।
होता अधिकार दशों पवनों पर इसके बल,
काया निरोग काम क्रोध थक जाते हैं।
बङ्क नाल पावे शिखर लोक के कपाट खुलें,
अमृत निज रूप मिले लौट नहीं आते हैं।

अर्थः—मूर्च्छा कुम्भक एकान्त स्थान में सुख आसन से बैठ कर करना चाहिये। वेग पूर्वक दोनों नासिका से श्वास को खींच कर कण्ठ के नीचे रोके और कुछ काल में नासिका द्वारा ही वेग से त्याग दे। ऐसा बार बार करता रहे। इससे दशों पवनों पर अधिकार होता है बङ्क नाल का मार्ग सुगम हो जाता है और अमर गुफा का द्वार

खुल जाता है। इससे अपने रूप को पहिचानने की शक्ति प्राप्त होती है।

(८) केवल कुम्भक

केवल सब कुम्भन में उत्तम सुखदायक है,
पूर्ण ब्रह्मचर्य धार इस को जो करता है।
नाभि शिखर बीच प्राण वायु माहिं तन्मय हो,
ध्यान धर स्वयंभू का नयन प्राण धरता है।
तज कर सब आशा 'सोहं सोहं' का जाप करे,
सतगुरु के शरण मेरु दण्ड पथ विचरता है।
खान-पान वाणी अरु आसन दृढ़ धार लेय,
अमर लोक पावे 'अमृत' जीवन सुधरता है।

अर्थः—केवल कुम्भक समस्त कुम्भकों में श्रेष्ठ है और सुखदायक है। जो मनुष्य पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण करके, नेत्रों को नासिका के अग्रभाग पर स्थिर किये हुए, मेरु दण्ड के द्वारा सम गति से श्वास लेते हुए 'सोहं सोहं' ऐसा जप करता हुआ आत्म रूप का ध्यान करने में तन्मय हो जाता है, वह जीवन मुक्ति का आनन्द प्राप्त कर लेता है। परन्तु खान पान और वाणी जब तक पवित्र नहीं होते और आसन दृढ़ नहीं होता तब तक आत्मानन्द नहीं मिल सकता। यह सर्वदा स्मरण रखने की बात है। इस क्रिया के लिये कोई समय या अवधि नियत नहीं है। इस के लिये संतत प्रयत्न करते रहो तभी तो दीर्घ काल से बहिर्मुख हुई वृत्ति अन्तर मुखी बन सकेगी।

इन आठ कुम्भकों के अतिरिक्त एक और भी कुम्भक है, इसका नाम 'प्लावनी' है।

(६) प्लावनी कुम्भक

यह पद्मासन से सिद्ध होता है। दोनों हाथ सीधे-लम्बे रखे. दोनों नासिका से श्वास को खींचे और फिर लेट जाय, लेटते समय हाथों का तकिया लगाले वाम हाथ नीचे रखे। कुम्भक के समय अपने शरीर को अत्यन्त हलका करले फिर धीरे २ रेचक करे। इसका अभ्यास हो जाने से जल में तैरना और चलने की शक्ति प्राप्त होती है।

केवल कुम्भक के अतिरिक्त सब को विशेष आवश्यकता शरीर सञ्चालन में अव्यवस्था अर्थात् शीतोष्ण को असम्यग अवस्था में या वात, पित्त, कफ प्रकोप या अन्य प्रकार के रोग की अवस्था में करने चाहिये। अन्यथा गर्मी बढ़ कर शान्ति भ्रष्ट हो जायगी। केवल कुम्भक आत्म दर्शनार्थ करना चाहिये, इसके लिये कोई विशेष स्थान या समय की आवश्यकता नहीं है। समस्त योग क्रियाओं का ध्येय इस कुम्भक के करने से प्राप्त हो जाता है, यह योग का चरम लक्ष्य है और जीवन मुक्तावस्था का आनन्द इसी में तन्मयता का नाम है। समग्र कुम्भक आवश्यकतानुसार शान्ति प्राप्ति होने तक करना चाहिये।

प्राणायाम के अन्य चार भेद हैं

महावन्ध, मूलवन्ध, जलन्धरवन्ध और उड्यान वन्ध। यह चारों निम्न प्रकार है।

(१) महावन्ध

प्राण वायु हृदय में धार गौमुख लगा,
महा वन्ध करने को उर्द्ध धावे।
त्रिकुटी में ध्यान धर चिवुक को हृदय पर,
सूर्य अरु चन्द्र सम आय जावें।
क्षुधा हो तीव्र अरु वृत्ति में शान्ति हो,
भृकुटी के माहिं आनन्द पावे।
काम के वेग को रोकते सन्त जन,
'नाथ अमृत' यही भेद गावे।

अर्थ:—गौमुख आसन लगा कर प्राण वायु को हृदय में स्थिर करे। फिर शिखर की ओर खींच कर विश्राम लेवे। नेत्र त्रिकुटी स्थान पर स्थिर करे, ठोडी को कण्ठ के खड्डे में जमाले। रेचक के समय दोनों नासा रन्ध्र से वायु का त्याग करे। इस वन्ध के करने से क्षुधा तीव्र होती है, काम का वेग रुकता है और वृत्ति में शान्ति आती है।

(२) मूलवन्ध

मूल के वन्ध में सिद्धि, आसन लगा,
गुदा की वायु को नाभि लाओ।

मिला कर प्राण को रोक कुछ काल तक,
नाद अरु विन्दु को एक पाओ।
त्याग सङ्कोच जब बारही बार हो,
युवा हो वृद्ध हो भ्रम कोट ढहाओ।
आयु की वृद्धि हो जठर की शुद्धि हो.
'नाथ अमृत' कहे भेद पावो।

अर्थः—मूल बन्ध सिद्धासन से होता है। अपान और प्राण वायु को खींच कर नाभि स्थान में एकत्र करो कुछ * काल तक रोके रहो फिर त्याग दो। इस प्रकार चिरकाल तक करने से वृद्धावस्था मिटती है. सोहं शब्द भली भांति सुनाई देता है, जठराग्नि शुद्ध होती है, शिखर में से श्रवने वाला अमृत प्राप्त होता है वीर्य की वृद्धि होती है और शान्ति प्राप्त होती है तथा नाद और विन्दु का तत्व समझ में आता है।
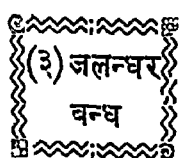
(३) जलन्धर बन्ध

कण्ठ के चक्र में जलन्धर बन्ध हो,
अधो अरु ऊर्द्ध की वायु लावे।
उदर के माहिं मथ वेग से त्याग दे,
चिवुक पर लाय रसना लगावे।

---

* जहां भी कुछ काल शब्द आवे समझो कि उतनी देर जितनी में श्वास घुटे नहीं।

उदर से हृदय में हृदय से कण्ठ में,
इसी विधि ब्रह्म के पन्थ धावे।
"नाथ अमृत" नहीं जन्म अरु मरण हो,
गुरु की शरण में भेद पावे।

अर्थः—प्राण और अपान वायु को खींच कर कण्ठ में मिलावे फिर पेट में लेजाकर मन्थन करे, विलोवे, नासिका द्वारा त्याग दे। इस क्रिया में जिह्वा को ठोडी पर लगावे और पद्मासन से बैठे। इस प्रकार उदर से हृदय में और हृदय से कण्ठ में मन्थन करे और त्यागता रहे इससे षट चक्र बेधने की युक्ति प्राप्त होती है।

(४) उडयान बन्ध

बन्ध उडयान लग जाय जब साधु के,
मुक्ति हो प्राप्त अरु भेद नाशे।
❀ दमन कर इन्द्रियां वासना त्याग कर
शिखर अरु नाभि रम श्वास श्वासे।
नयन को नासिका लाय लवलीन हो,
पिण्ड ब्रह्माण्ड सब एक भासे।
"नाथ अमृत" कहे आप ही आप है,
भेद कुछ ना रहे द्वन्द नाशे॥

❀ योग के प्राचीन ग्रन्थ और वर्तमान के कुछ योगियों का मत है कि इन्द्रिय द्वारों को बन्द करना चाहिये, परन्तु मैं इस मत के विरुध्द हूँ।

अर्थः—उड्यान बन्ध सुख आसन से करे। इन्द्रियों को भली भाँति दमन करे, वासना का त्याग करे, दोनों नेत्रों को नासिका के अग्र भाग पर स्थिर रखे हुए नाभि से शिखर तक श्वास की गति में मेरु दण्ड मार्ग से तन्मयता प्राप्त करे इससे पिण्ड (शरीर) और ब्रह्माण्ड (विश्व) का रूप एक दिखाई देने लगता है। अपने स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है और द्वन्द का नाश होकर अखण्ड शान्ति प्राप्त होती है।

योग का पञ्चम अङ्ग

(५) प्रत्याहार

पञ्चम प्रत्याहार है, योग प्राप्ति का मूल।
इन्द्रिन के संयम बिना, मिटे न भव के शूल॥

शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध यह पाँचों विषय कहाते हैं।
इन से नहीं बचे उसको यह भव जल माहिं बहाते हैं॥
इस लिये प्रथम इन्द्रिय गण पर, दृढ़ता से जो अधिकार करे।
सद् गति को वह नर पाता है, जो गुरु शिक्षा स्वीकार करे॥
संयम को प्रत्याहार कहे, मैं अपने अनुभव से कहता।
बिन खान पान सुधरे न शान्त मन होता है बहता रहता॥
अति संग योग में बाधक है, वृत्ती को चञ्चल करता है।
'अमृत' एकाकी रहे सदा तब ही तो जन्म सुधरता है॥

अर्थः—शब्द, स्पर्श रूप, रस और गन्ध यह इन्द्रियों के विषय हैं। जो मनुष्य इनसे बचा नहीं रहता उसे यह जन्म मरण रूपी सागर में गोते लगवाते हैं। इस लिये सब से प्रथम इन्द्रियों को इनके राग द्वेष पूर्ण विषयों की ओर से खींच कर अलग करे। जो मनुष्य इस मेरी शिक्षा को धारण करके इसके अनुसार चलेगा उस को सद् गति मिलेगी। इन्द्रियों के संयम का नाम ही प्रत्याहार है और खान-पान तथा व्यवहार के सुधार के बिना संयम रह नहीं सकता, मन शान्त नहीं हो सकता। स्त्रियों का साथ और पुरुषों का भी ज्यादा साथ अच्छा नहीं। इससे वृत्ति डाँवाडोल रहती है अतः एकाकी रहने का प्रयत्न करो तभी संयमी बन सकोगे। मानव शरीर का वास्तविक लाभ तभी प्राप्त होगा। जैसे पुरुष को स्त्री का साथ त्याज्य है वैसे ही स्त्री को पुरुष का।

आहार विहार का सुधार, इन्द्रियों को इनके राग द्वेषात्मक विषयों से रोकना, केवल कुम्भक उड्यान बन्ध का साधन एकान्त निवास और मौन वृत्ति से प्रत्याहार सिद्ध होता है।

योग का षष्टम अंग

(६) धारणा

अब मैं कहता धारणा, छठा योग का अङ्ग।
विना वृत्ति के स्थिर हुए, बने न साधन ढङ्ग ॥
चित्त वृत्ति रोधन करने का, नाम धारणा है जानो।
यत्न पूर्वक चञ्चलता को मेट, लक्ष्य एक उर आनो ॥

स्थान धारणा के कहता, सुन लेना ध्यान लगा करके।
इच्छानुकूल चुन लेना, निज सुविधा अनुमान लगा करके ॥
हृदय कमल, नासा, भृकुटी में, वृत्ति स्थिर जो करते हैं।
वह ज्योति चमकती पाते हैं, भव के दुख अपने हरते हैं ॥
जो चन्द्र और ध्रुव में अपनी वृत्ति को ठहरा पाते हैं ॥
सब नक्षत्रों को तारागण की गति और विधि लख जाते हैं ॥
जो योगी रवि के मण्डल में, धारणा वृत्ति की करते हैं।
वह अपने आसन पर बैठे त्रैलोक्य देखते रहते हैं ॥
नाभि कमल में जो योगी, धारणा करे अनुरागी हो।
अपने घट की सब रचना को देखे अति बड़ भागी हो ॥
गगन, वायु, जल, अग्नि, भूमि में सन्त सुरति जो ठहराते।
इनके समान हो जाते हैं, या इनमें गति को पा जाते ॥
है अन्य धारणा स्थान कई, गुरु वर से अपने सुन लेना।
हो समुचित आहार विहार, मुख्य शिक्षा 'अमृत' की गुन लेना ॥

अर्थः—धारणा योग का छठा अंग है। पूर्व कहे हुए ५ अंग वाह्य हैं। यह छठा धारणा अंग आन्तरिक है इसका सम्बन्ध शरीर से ही न रह कर आत्मा से है। चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करने या विचार को एक स्थान पर स्थिर करने का नाम 'धारणा' है। योग का अर्थ चरम लक्ष्य वृत्ति को ठहराना ही तो है। यह उत्तम योग सत्संग के बिना नहीं बनता। चित्त वृत्तियों को बाह्य विषयों से खींच २ कर बार २ अन्तर्मुखी बनाना आत्म अन्वेषण में लगाना या आत्म दर्शन की प्राप्ति के

अर्थ किसी एक स्थान–देहिक, दैविक या भौतिक पर स्थिर करना इसी को धारणा कहते हैं। चित्त के चाञ्चल्य को नष्ट करके किसी नियत स्थान पर आरूढ आसीन करने अर्थ धारणा के स्थान कहते हैं। इन स्थानों में से अपना रुचि और सुविधा के अनुसार निश्चित कर लेना चाहिये।

अनाहत चक्र, हृदय कमल, नासिकाग्रभाग, भृकुटियां त्रिकुटि स्थान पर अपनी वृत्ति को स्थिर करने और दीर्घ काल तक अभ्यास करने से जब चित्त वृत्ति स्थिर या अन्तर्मुखी हो जाती है तब साधक को अनिर्वचनीय विलक्षण ज्योति के दर्शन होते हैं। इससे आत्मा सांसारिक झंझटों से मुक्त होकर अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है और जीवन मुक्ति का आनन्द प्राप्त होता है।

जो मनुष्य चन्द्रमा और ध्रुव नक्षत्र में अपनी वृत्ति को दृढता पूर्वक धारण करते हैं। इनकी ओर निर्निमेष दृष्टि से देखते हुए चित्त को एकाग्र करते हैं, तदाकार बन जाते हैं। वह समस्त नक्षत्र और तारा मण्डल की गति विधि को पूर्णतः जान लेते हैं। वर्तमान के आकाश लोक सम्बन्धी परिपोष इसी साधन स्थूल तत्त्वों के आश्रित हैं।

प्राचीनकाल के योगी जन इस धारणा शक्ति के बल से ही ज्योतिष शास्त्र की रचना करने में समर्थ हुए थे। अद्यावधि

और आगे भविष्य में उन महा योगियों के इस प्रसाद "ज्योतिप शास्त्र" के बल पर पृथवी पर बैठे हुए ही आकाश की बातें जानी जाती रहेंगी। इससे संसार का कितना बड़ा उपकार हुआ है। परन्तु अब के ज्योतिषि यदि योग क्रियाओं के जानकार और होते तो कैसा अच्छा होता। चन्द्र मण्डल और तारा मण्डल की गति का पृथवी पर प्रभाव अवश्य पड़ता है। वर्तमान काल रेडियो, बेतार के तार, टेलीफोन आदि सब इसी साधन और शक्ति के स्थूल रूप हैं। प्राचीन काल में साधक वर्ग इसी शक्ति से अल्प काल में दूर की बातें जानने, कहने आदि में समर्थ थे। भारत के लिये वर्तमान के यह कार्य कोई नयी चीज नहीं हैं।

जो मनुष्य सौर मण्डल में सूर्य में अपनी वृत्ति को एकाग्र करते हैं और जिन्हें परिप्रक्वता प्राप्त हो जाती है वह अपने आसन पर बैठे हुए ही तीनों लोक के समस्त कौतुक को देख सकते हैं। भूत भविष्य और वर्तमान का इनको ज्ञान हो जाता है, इनकी दृष्टी दिव्य हो जाती है। क्षण मात्र के ध्यान से उनको इच्छित स्थान, व्यक्ति और पदार्थ के दर्शन हो जाते हैं, दूसरे मनुष्यों के मन की बात जान लेते हैं।

इसी प्रकार जो योगी मणि पूरक चक्र नाभि कमल में प्रेम पूर्वक धारण करते हैं वह अपने शरीर की अन्तर और बाह्य रचना को देख लेने की सामर्थ्य प्राप्त कर लेते हैं। उन की भ्रान्ति मिट जाती है।

ऐसे ही पञ्च तत्व आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी में धारणा करते हैं जो इन में वृत्ति को तन्मय कर देता है, वह इन तत्वों के समान ही गति और बल पा जाते हैं।

इसी प्रकार अन्य भी बहुत से स्थान धारणा करने के हैं, अपने गुरु देव से ज्ञात करके शिक्षानुसार साधन करना चाहिए। परन्तु स्मरण रहे जब तक भोजन पान और आचरण में सात्विकता—देवत्व नहीं आ जायगा तब तक किसी भी प्रकार साधन नहीं किया जा सकेगा।

इसके अतिरिक्त योग के अन्तर्गत पांच मुद्राएं खेचरी, भूचरी, चाचरी, अगोचरी और उन्मनी भी धारणा के लिये उत्तम हैं, यह भी धारणा के स्थान हैं। इन से योगी को लाभ प्राप्त होता है। यह पांचों मुद्रा इस प्रकार हैं।

प्रथम खेचरी मुद्रा

कहूं मैं खेचरी मुद्रा, विलक्षण भाव है जिसका।
करे सत गुरु से शिक्षा ले, बना मुख स्थान है इसका॥
वृत्ति धारण॥१ करे मुख में, नयन भृकुटी में ठहरावे।
करे छः मास यह साधन हुआ दृढ प्रेम है जिसका॥
रखे ‡२ रसना सदा ऊंची, बढे जब तालु छिद्रों तक।
शिखर की ओर को धावे, बने तन दिव्य है उसका॥

॥१ त्रिफला के चूर्ण में धोते रहने से जिह्वा, बढ़ती है।

‡२ मनुष्य की जीभ तीन प्रकार की होती है। नाग जिह्वा, हस्ति जिह्वा, और धेनु जिह्वा, इनमें नाग जिह्वा स्वभावतः लम्बी होती है और अपने आप तालु के छिद्रों में पहुँचती है।

गगन के माहिं जाने की, मिले है शक्ति योगी को।
लहे आनन्द अद्भुत सा करे इच्छुक है जो इसका
मिले है पान अमृत का. सुनो साधु लगा मन को।
उसी को प्राप्त हो 'शंकर' मिटे अभिमान है जिसको॥

अर्थः—विलक्षण खेचरी मुद्रा का स्थान मुख है। गुरु की शिक्षानुसार वृत्ति को मुख में धारण करे और नेत्रों को भृकुटि में जमावे। छः मास तक इस प्रकार साधन करता रहे। जीभ को तालु की ओर मुड़ी रखे इससे जिह्वा लम्बी होकर तालु के छिद्रों में प्रवेश कर जाती है। इस से वृत्ति शिखर लोक में जा टिकती है और शिखर में से सदा सर्वदा झरने वाले अमृत की प्राप्ति हो जाती है (सोमरस प्राप्त हो जाता है) इस मुद्रा को सुखासन से करनी चाहिये।

२ भूचरी मुद्रा

बताऊँ भूचरी मुद्रा सुनो साधो लगा मन को।
प्राण में स्थान है इसका शुद्ध रखती सदा तनको॥
लगाकर शान्त सिद्धासन अटल हो बैठ निर्जन में।
मिलावे वायु दोनों को रखे सीधा सरल तन को॥
गगन पथ उड़के चलने की या गति में तीव्र तम शक्ती
मिले अभ्यास बढ़ने से अनोखी शान्ति है उनको॥
बिना गुरु भेद नहिं पावे क्रिया नहीं पूर्ण होती है
मिले 'अमृत' उन्हीं को है, दियी शिक्षा गुरु जिनको॥

अर्थः—भूचरी मुद्रा का स्थान नासिका है। कोमल सिद्धासन लगा कर एकान्त में बैठे, मेरु दण्ड को सीधा रखे। अपान और प्राण का आकर्षण करके नासिका में स्थिर करे और नेत्रों को नासिकाग्र भाग पर ठहरावे। इस प्रकार धारण करने से साधक को चिरकाल में आकाश मार्ग से या अत्यन्त शीघ्र चलने की शक्ति प्राप्त होती है। अद्भुत कौतुक दिखाई देते हैं। अनुभवी गुरु से शिक्षा प्राप्त करके साधन करना चाहिए इससे दूर तक की गन्ध भी ज्ञात होती है।

चाचरी मुद्रा
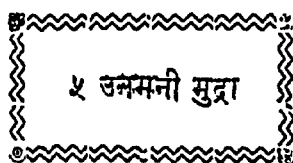
विलक्षण चाचरी मुद्रा, दया गुरु देव से पावे।
नयन में वास इसका, प्राप्त हो तब शान्ति को लावे॥
दृष्टि को नेत्रों से चार अंगुल दूर ठहरावे।
चलावे श्वास समगति से चमकती ज्योति दरशावे॥
भृकुटी की ओर लौटावे, त्रिवेणी तट मिले उसको।
करे गुरुवर की सेवा, प्रेम से शिक्षा को अपनावे॥
कटे सब कर्म तब ही, ध्यान जब ऐसे करे कोई।
मिले अमृत तभी उनको शिखर की ओर को धावे॥

अर्थ—चाचरी मुद्रा का स्थान नेत्र है। नेत्रों में वृत्ति को धारण करके दृष्टि को नेत्रों से चार अंगुल दूर स्थिर करे। साधन काल के आधे समय में दृष्टि को भृकुटी में जमावे ऐसा करने से [illegible]णी स्थान मिल जाता है और आत्म ज्योति के दर्शन ह[illegible]। अमृत की प्राप्ति होती है। गुरु की शिक्षानुसार [illegible]य पर साधन करना चाहिए।

अगोचरी मुद्रा

सुनो अगोचरी मुद्रा श्रवण में स्थान है इसका।
बिना गुरु के नहीं मिलता अनोखा ज्ञान है इसका॥
बैठ एकान्त में कोई सुखासन धार दृढता से।
बन्द कर नेत्र दोनों, को हुवा एकाग्र मन जिसका॥
सुने अनहद की ध्वनि इससे खुले है द्वार त्रिकुटी का।
अगोचर होय इच्छा से, सफल हो जन्म है उसका॥
कोई गुरु भक्त पाते हैं भेद 'अमृत' वताते हैं।
करे जो इसको हे 'शंकर' कटे भवजाल है उसका॥

अर्थः—अगोचरी मुद्रा का स्थान कर्ण है। सुखासन से एकान्त में बैठ कर साधन काल के अर्द्ध २ भाग में पृथक पृथक कानों में वृत्ति धारण करे श्वास समगति से चलावे इससे अनहद की ध्वनि सुनाई देती है, त्रिकुटी का द्वार खुलता है। अगोचर होने अर्थात् गुप्त होने की इच्छानुसार शक्ति प्राप्त होती है। यह पवित्र और गुप्त मुद्रा गुरु भक्त पुरुषों को प्राप्त होती है।

५ उनमनी मुद्रा

उनमनी ध्यान जो लावे कटे यमकाल की फांसी।
लखे त्रैकाल की बातें मिले पद शान्त सुखरासी॥
रहे तन्लीन श्वासा में, शिखर अरु नाभि बिच खेले।
आहारादिक सुधारे, मौन धर बैठे हो विश्वासी॥

सकल जग रूप है अपना बने दृढ धारणा ऐसी।
समाधी सहज जब लागे, अवस्था होय अविनाशी ॥
मेरुपथ में सुषुम्ना मार्ग जब करता रमण योगी।
मिले 'अमृत' तभी उनको लहे पद सत्य सन्यासी ॥

अर्थ—उन्मनी मुद्रा का रूप विराट है। समग्र संसार को अपने में धारण करे। इसके साधक को पूर्णतः उदासीन रहना चाहिये। संसार को अपने से पृथक न मानना चाहिये। आहार विहार का सुधार करके मौन धारण कर एकान्त में बैठे। नाभि देश से शिखर लोक तक मेरु पथ के आधार पर रहने वाली माला रूप सुषुम्ना नाड़ी में चलने वाले श्वास में वृत्ति को धारण करे दृष्टि नासिकाग्र भाग पर जमाये रहे। इस प्रकार चिरकाल तक साधन करने वाले साधक को सत्य पद प्राप्त होकर नित्यानन्द में तन्मयता मिल जाती है। चराचर संसार केवल अपना रूप दिखाई देता है। यह अवस्था योग का अन्त और वेदान्त की स्थापना और पराकाष्ठा है। यह समस्त मुद्राओं में श्रेष्ठ और जीवन-मुक्ति प्रदान करने वाली है। गुरु के आश्रय रहो।

शाम्भवी मुद्रा, यह भी उन्मनी के समान ही है।

किसी भी क्रिया का साधन काल जब एक प्रहर तक पहुंचता है तभी अनुभव होता है। शक्ति के अनुसार समय

नियत करके बढ़ाते रहना चाहिये। जब आनन्द मिलने लगेगा। तब अपने आप ही ज्यादा समय तक करते रहोगे।

योग का सातवां अंग

७ ध्यान

ध्यान अङ्ग सप्तम कहूँ, सुनो सहित अनुराग।
करे बैठ एकान्त में, 'शंकर' ममता त्याग॥

निर्गुण सगुण ध्यान दो विधि के बुध जन अब तक गाये हैं।
यह चार भाँति के होते हैं, गुरुवर ने हमें बताये हैं॥
ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणपति, जीवरु ज्योति चक्र छः में राजे।
इन में है चार सगुण दो निर्गुण, मानव तन भीतर साजे॥
सगुण देव का अलङ्कार युत जो नर ध्यान लगाते हैं।
वह उत्तम २ भोग भोग कर जन्म मरण को पाते हैं॥
जो भृकुटि नासिका और शिखरगढ़, निर्गुण में तन्मय होते।
वह नाभि शिखर बिच डाल हिंडोला भूले जागृत में सोते॥
कुछ काल ध्यान दृढ़ धरने से, ध्यानी को ज्योती लखाती है।
है सुधरे आहार विहार तभी तो दिव्य सिद्धि मिल जाती है॥
जब तन्मयता अतिशय होती, तब परम प्रकाश प्रकट होता।
जागृत में तुरिया बन जाती, अपना निज भाव प्रकट होता॥
साधक, साधन अरु साध्य नहीं, निर्द्वन्द सिद्ध गति पाते हैं।
'अमृत' अखण्ड अविचल अविनाशी जीवन मुक्त कहाते हैं॥

अर्थ—योग का सातवां अंग ध्यान है। इसके निर्गुण और सगुण दो भेद होते हैं। शरीरस्थ छः चक्र (मूलाधार, स्वा-

धिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा) के छः देवता हैं। (* क्रमशः गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शिव जीव और ज्योति)।

इन देवताओं में गणपति ब्रह्मा, विष्णु और शिव चार सगुण देवता हैं। जो मनुष्य इन देवताओं का इनके अलंकार सहित भक्ति और दृढता से ध्यान करते हैं इन ध्यानियों को संसार में प्रायः सुखमय जीवन मिलता है, परन्तु इनका आवागमन जन्म-मरण रूपी महा कष्ट नहीं मिटता। सो भी ध्यान में तन्मय होने पर मूर्ति का साक्षात्कार होने पर अन्यथा आज कल के ढोंगी ध्यानियों का तो कुछ कहना नहीं।

जीव समस्त शरीर में व्याप्त है परन्तु मुख्यतः इसका स्थान कण्ठ है। जो साधक कण्ठ चक्र में ध्यान करते हुए नेत्रों को नासिकाग्र भाग पर स्थिर रखता है वह चिरकाल में अपने रूप जीव को जान लेता है।

ज्योति का स्थान त्रिकुटि स्थित आज्ञा चक्र है। जो साधक ज्योति का ध्यान करना चाहे, उसे नेत्रों को भ्रूमध्य में ठहराना चाहिये और दैदीप्यमान ज्योति में अपना मन लगाना चाहिये। ऐसा करने से चिरकाल में उसे ज्योति का अनिर्वचनीय प्रकाश दिखाई देता है। साधक नित्यानन्द में मग्न हो जाता है। जन्म मरण से रहित होकर अखण्ड ब्रह्म में प्रवेश पा जाता है और अनश्वर शान्ति प्राप्त हो जाती है। इस ध्यान में

---

* इनका विशेष विवरण चक्र अंग में देखो।

सुषुम्ना मार्ग से चलने वाले श्वास का आधार रखना चाहिये। यह ध्यान करने से जागृत अवस्था में ही शून्याकार हो जाता है; संसार का अत्यन्ता भाव हो जाता है।

जब इस प्रकार ध्यान करते हुए अत्यन्त तन्मयता हो जाती है तब शिखरस्थ सातवाँ चक्र सहस्रार प्राप्त हो जाता है, वृत्ति वहाँ पहुँच जाती है। इस स्थान के देवता सद् गुरु जगत्पिता ब्रह्म हैं, यहाँ पर अमृत का सरोवर भरा हुआ है और सर्वदा ही इस में से अमृत श्रवता (झरता) रहता है और क्रमशः षट् चक्र का पोषण करता है। यह अमृत स्थान प्राप्त होने पर जीवन-मुक्तावस्था हो जाती है। इसका वर्णन करने में बैखरी वाणी असमर्थ है। इस अवस्था में साधक, साधन और साध्य का भाव समूल नष्ट हो जाता है। निर्द्वन्द भाव बन जाता है और अखण्ड, अविचल तथा अविनाशी पद प्राप्त हो जाता है। गुणातीत अवस्था हो जाती है।

परन्तु भाई! पढ़ने सुनने और बातें करने से काम नहीं चलता। आहार बिहार सुधरे, पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन हो, सत गुरु की दया हो, चित्त में दृढ़ लग्न हो और होता रहे सतत् साधन, तब काम बने। वेदान्त का वास्तविक तत्व जाना जाय।

ध्यान चार अवस्था में होता है

पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्थ और रूपातीत। यह चार अवस्था-जागृत स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया के

कारण हैं। जागृत का पदस्थ, स्वप्न का पिण्डस्थ, सुषुप्ति का रूपस्थ और तुरिया का रूपातीत ध्यान है। अब हम इनका पृथक २ वर्णन करेंगे।

(१) पदस्थ ध्यान

ध्यान पद-अस्थ करे भक्ति के हेतु नर,
हृदय में मूर्ति का भाव धारे।
चरण में चित्त दे वासना त्याग कर,
युक्ति से वेग मन का संहारे।
ताप मिट जाय अरु प्रेम उत्पन्न हो;
राग अरु द्वेष की अग्नि मारे।
'नाथ अमृत' कहे भक्त पद को लहे,
सत्य सङ्कल्प अभिमान जारे ॥

अर्थः—पदस्थ सगुण ध्यान है। मनुष्य, भक्ति को प्राप्त करने के अर्थ अपने हृदय में इच्छित मूर्ति की कल्पना करले, उसके प्रेम प्राप्ति के अर्थ मन की अन्य वासनाओं का त्याग करके मूर्ति के चरणों में चित्त लगावे अपनी श्रद्धानुसार मानसिक पूजा करे। इससे दुःख दूर होते हैं प्रेम उत्पन्न होता है। परन्तु राग द्वेष को चित्त से दूर करदे। ऐसा अभिमान को त्यागा हुआ और सत्य संकल्प वाला मनुष्य भावना की प्रबलता से भक्त पद को पा लेता है।

२ पिण्डस्थ ध्यान

ध्यान पिंडस्थ को करते यों साधु जन,
बेध षट कमल को ऊर्ध्व धावे।
ध्यान प्रति कमल में करत कुछ काल तक,

वृत्ति लव लीन हो त्रिकुटी पावे।
आशा चक्र में ज्योति का दर्श हो,
तहाँ मन जाय आनन्द लावे।
"नाथ अमृत" कहे त्रिवेणी तीर से,
शीघ्र ही शिखर की ओर धावे।

अर्थः—पिण्डस्थ ध्यान क्रमशः पट कमल में करना चाहिये इस ध्यान में पिण्ड स्थित चेतन शक्ति का ही ध्यान करना चाहिए। जब प्रत्येक कमल में वृत्ति लवलीन होने लगे तब आगे बढ़ता जाय। त्रिकुटि चक्र में वृत्ति स्थिर होने पर ज्योति के दर्शन होते हैं। आनन्द प्राप्त होता है और इस त्रिवेणी तीर से शीघ्र ही शिखर लोक की ओर चढ़ने की शक्ति प्राप्त होती है।

२ रूपस्थ ध्यान

भेद रूपस्थ का कहूँ सन्तो सुनों,
दृष्टि को त्रिकुटी के माहिं लाओ।
खान अरु पान को युक्ति से कीजिए,
श्वास का ध्यान गुरु दया पाओ।
तेज का पुञ्ज जब शिखर में भासता,
पूर्णानन्द में जा समाओ।
विश्व जब आपका रूप जानो तभी,
'नाथ अमृत' नहीं आप जाओ।

अर्थः—श्री अमृतनाथ कहते हैं कि हे सन्तो रूपस्थ ध्यान का लक्षण सुनो। श्वास के ध्यान में तन्मय रहो नेत्रों को त्रिकुटि के मध्य जमाओ और वृत्ति एकाग्र करो। शिखर में तेज पुञ्ज का साक्षात्कार हो जायगा, पूर्णानन्द में समा जाओगे, विश्व अपना ही रूप जान पड़ने लगेगा और जन्म मरण का भयंकर क्लेश मिट जायगा। परन्तु आहार विहार का सुधार आवश्यक है।

४ रुपातीत ध्यान

रूपातीत है ध्यान निर्वाण का,
शून्य चहुं ओर नहीं वार पारा।
त्रिकुटी से दूर अति शून्य मय स्थान है,
रोक मन युक्ति से तहां धारा।
सुषुम्ना पार हो तुरिया आधार हो,
जन्म अरु मरण का क्लेश जारा।
शून्य के भाव में योग निद्रा लगे,
'नाथ अमृत' तहाँ काल हारा॥

अर्थः—श्री अमृत नाथ कहते हैं कि हे साधो त्रिकुटी स्थान से ऊपर महा शून्य का स्थान है इसमें मन को दृढ़ता से स्थिर करो। सुषुम्ना मार्ग से श्वास को तुरिया पद में ले जाकर विश्राम करने से योग निद्रा लग जाती है। यह ध्यान निर्वाण पद को प्राप्त कराने वाला है।

योग का अष्टम अङ्ग

८ समाधि

अष्टम अंग समाधि है सुन साधक धर ध्यान।
चित, बुद्धि स्थिर हो तभी है समाधि यों जान॥

१—भक्ति योग अरु ज्ञान समाधि तीन भाँति की होती है।
स्पष्ट तुम्हें बतलाता हूँ लागे तव भव मल धोती है॥
यम नियम आदि का पालन कर, गुरु चरणन में चित को लावे।
तव भक्ति समाधि लगे निश्चय अरु भक्तन की गति को पावे॥

२—आसन प्राणायाम अरु प्रत्याहार धारणा ध्यान लगा।
कर चेतन मार्ग सुषुम्ना का है चढे ऊर्ध्व कुण्डली जगा॥
निश दिन जप अजया गायत्री अनहद की ध्वनि में लीन भये।
है अष्ट सिद्धियां मिल जाती, त्यागे तो जीवन मुक्ति लहे॥
यह 'योग समाधि' कहाती है, गुरु दया होय तब मिलती है।
तब लीन वृत्ति हो जाय आप में कर्म ग्रन्थि तब खुलती है॥

३—चहुं ओर आपका रूप लखे तब द्वन्द जगत का मिटजावे।
शून्य मांहि संकल्प समा जावे अरु 'मैं, तू' हट जावे॥
कर्ता, कर्म न क्रिया रहे सुषुम्न में तब आनन्द लहे।
तीन अवस्था मिट जावे, केवल तुरिया का भाव रहे॥
निर्वाण प्राप्ति इसको कहते, मन वाणी की गम नहीं जहाँ।
अमृत ही अमृत शेष रहे है 'ज्ञान समाधि' लगे तहां॥

अर्थ.—श्री अमृत नाथ कहते हैं कि योग का आठवां अंग समाधि है। हे साधक गण! ध्यान देकर सुनो। साधन करते २ जब चित्त और बुद्धि में समता आजाय, वृत्तियों का पूर्णत: निरोध हो जाय उस अवस्था का नाम समाधि है। महात्माओं के बतलाये हुए समस्त साधन चित्त-वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाने के अर्थ हैं और समाधि उनमें अन्तिम साधन है। कुछ लोगों का विश्वास है कि समाधि श्वास रोक कर दीर्घ काल तक बैठे रहने को कहते हैं। इनकी यह धारणा मिथ्या है और यदि किसी ग्रन्थ में ऐसा लिखा है तो भी मेरे अनुभव से वह उचित नहीं है।

श्वास रोक कर बैठने के भय के मारे ही वर्तमान काल में समाधि लगाने को साधारण जन समाज कठिन या असम्भव समझ रहा है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। यद्यपि समाधिस्थ होना कोई साधारण बात नहीं यह तो श्वास रोकने से भी कठिन है परन्तु नियमित क्रियाओं का अभ्यास लग्न पूर्वक करते रहने से समाधि लगती है। परन्तु इच्छा हो तब लगे,.. साधारण पूजा, पाठ हवन, सन्ध्या, प्रार्थनादि जो नैतिक कर्म है इन्हें करने वाले मनुष्य यह समझ बैठते हैं कि हम भजन करते हैं, और यह भी एकान्त में नियम पूर्वक प्रेम से नहीं करते। तभी जन्म से मृत्यु तक इसी घेरे में फँसे रहते हैं। जन्म मरण रूपी जो घोर कष्ट है इसे दूर करने की चिन्ता मनुष्यों में उत्पन्न हो नहीं होती। उद्धार के जो कष्ट साध्य

साधन हैं उन्हें नहीं करते, सांसारिक इच्छाओं की पूर्ति के लिये तो चाहे जैसे घोर कष्ट उठाने को तत्पर रहते हैं।

समाधिस्थ होने के लिये चित्त में दृढ लग्न, अनुभवी गुरु की अनुकम्पा, एकान्त निवास, पूर्ण ब्रह्मचर्य. कष्ट सहिष्णुता और इन्द्रिय-रसों का त्याग आवश्यक है।
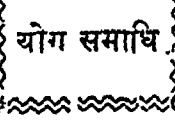
समाधि तीन प्रकार की होती है, यथा भक्ति समाधि, योग समाधि और ज्ञान समाधि। हम इनका पृथक पृथक वर्णन करते हैं। समाधि पूर्णतः अन्तरंग विषय है।

१ भक्ति समाधि

यम, नियम का भली भाँति पालन करते हुए भक्ति पूर्वक ईश्वर का ध्यान करता रहे। इस भक्ति के बलवान होने पर चित्त में शान्ति आती है वृत्तियाँ अन्तर्मुखी बनती हैं और भक्त पद को प्राप्त कर सुखी हो जाता है।

भक्ति समाधि लगे तब ही जब ध्यान सदा हरि मांहिं लगावे।
इन्द्रिन का रस त्याग करे तब बुद्धि पवित्र हो भक्ति जगावे॥
मौन रहे न विवाद करे अरु सुरति समेट के आप में लावे।
'अमृत' रूप लखे अपना भ्रम रहे नहीं भय दूर हटावे॥
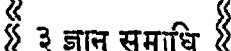
अर्थ—श्री अमृतनाथ कहते हैं कि इन्द्रियों के स्वाद का त्याग करो इस से बुद्धि में पवित्रता आवेगी और भक्ति का भाव उत्पन्न होगा। ईश्वर में दृढ विश्वास रखते हुए उनका

ध्यान करता रहे, मौन व्रत धारण करे, विना आवश्यक कार्य किसी से बात न करे, विवाद से दूर रहे, स्मरण शक्ति को एकाग्र करे और अपने रूप में अवस्थित होने का दृढ संकल्प करले। इस प्रकार चिरकाल तक अभ्यास करने से भ्रमती हुई सुरति एकाग्र होती है। सांसारिक दुःख सुख का भय दूर हो जाता है, भ्रम मिट जाता है और शान्ति प्राप्त होती है। इसी को भक्ति समाधि कहते हैं कि सब प्रकार से अपने को ईश्वर के समर्पण कर दिया जाय।
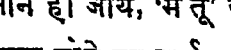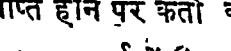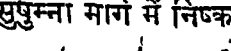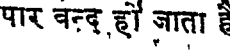
योग समाधि

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, और धारणा के साधन से सुषुम्ना मार्ग को चैतन्य कर कुण्डलनी शक्ति को जागृत करके अजया गायत्री (सोहं) का जप करता हुआ जो योगी अनहद की ध्वनि में लीन हो जाता है उसे अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। यदि इनके प्रलोभन और आकर्षण से बच कर रहता है, इन में अपनी वृत्तियां नहीं लगने देता है तो उसे आत्म साक्षात् कार हो जाता है अपने रूप को पहिचान लेता है :

आसन युक्ति से योग समाधि लगाय के ध्यान में लीन रहे।
मूल की वायु मिलाय के नाभि में वङ्क की राह प्रवीण गहे॥
नयन को नासिका लाय के अमूर्त नादरु विन्दु का भेद लहे।
वज्र कपाट खुले तब 'शंकर' पाँच पचीस न तीन रहे॥

अर्थ—युक्त (उचित) आसन लगा कर मूल वायु अर्थात् अपान वायु को प्राण वायु में मिलावे। इस श्वास शक्ति को चतुर मनुष्य वङ्क नाल के द्वारा शून्य शिखर में ले जाय अर्थात श्वास की गती में तन्मयता प्राप्त करे। नेत्रों को नासिकाग्र भाग पर स्थिर करे। इससे नाद अर्थात शब्द (सोहं) और विन्दु अर्थात् शिखर लोक से झरने वाले अमृत का भेद जान लेता है। अर्थात् सोहं शब्द अजपा जप के आधार पर अमृत प्राप्त कर लेता है। शून्य शिखर स्थित गुरु स्थान (भ्रमर गुफा) के वज्र के समान कपाट (किंवाड) लगे हुए हैं वह खुल जाते हैं। पाँच अर्थात् काम क्रोध, लोभ, मोह, और मद पच्चीस अर्थात् पाँचों तत्वों की प्रकृति और तीन गुण का उस पर प्रभाव नहीं पड़ता. इन सब के आघात को सहन करने की उसमें शक्ति उत्पन्न हो जाती है। यही योग समाधि है।

३ ज्ञान समाधि

चहुं दिशी अर्थात् सर्वत्र ही आत्म रूप अपना ही रूप देखे। समस्त संकल्प शून्य में अर्थात् अपने आप में लीन हो जाय, 'मैं तू' का झंझट दूर हो जाय। इस अवस्था के प्राप्त होने पर कर्ता कर्म और क्रिया का अभाव हो जाता है. सुषुम्ना मार्ग में निष्कण्टक रमण करता है, प्राणों का वाह्य व्यापार वन्द हो जाता है मन की गति थक जाती है। तीन

अवस्था मिट जाती है। केवल तुर्य भाव रहता है। इस अवस्था का नाम निर्वाण अवस्था है। श्री अमृतनाथ कहते हैं कि इस अवस्था में केवल अमृत २ ही शेष रहता है। इसी अवस्था का नाम ज्ञान समाधि है।

ज्ञान समाधि या सहज समाधि लगे तब योग रु ध्यान नहीं।
आप में आप नहीं कुछ अन्य है, द्वन्द हो कैसे न स्थान कहीं॥
एक न दोय है शून्य महा नहीं स्वर्ग पताल न जान मही।
मैं क्रिया कर्ताहु नहीं ऐसा 'अमृत नाथ' का ज्ञान सही॥

अर्थः—योग की परिपक्व अवस्था का नाम ज्ञान है। किसी किसी मनुष्य को प्राचीन कर्मों के बल से बिना योग भी ज्ञान प्राप्त हो जाता है। जब ज्ञान समाधि लग जाती है तब भक्ति और योग समाधि नहीं रहती। यह दोनों ज्ञान के रूप में बदल जाती है ज्ञान समाधि लग जाने पर केवल आप ही आप रह जाता है दूसरा कुछ भी नहीं रहता (वास्तव में दूसरा कुछ है ही नहीं यह तो केवल स्वार्थ-मय भ्रम-रूप जगत दिखाई देता है) तब द्वन्द कहाँ रहा। इस अवस्था में संख्या समाप्त हो जाती है। स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोक की मिथ्या धारणा नष्ट हो जाती है। कर्ता कर्म और क्रिया का अत्यन्ताभाव हो जाता है। श्री अमृत नाथ कहते हैं कि यह मेरा ज्ञान नित्य और सत्य है। इसी का नाम ज्ञान समाधि है या सहज समाधि है।

जब तक वृत्ति में यह भाव रहे कि मैं और जगत् पृथक २ हैं तब तक की अवस्था का नाम सविकल्प समाधि और जब यह भाव लुप्त हो जाय, इसका अत्यन्ताभाव हो जाय उस अवस्था का नाम निर्विकल्प समाधि है।

अष्टदशोल्लास
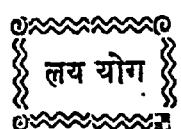
लय योग

लय योग उच्च श्रेणी का योग है। राज योग से इस का स्थान ऊँचा है। यह तो मन के, केवल मन के ही बल पर साध्य है। मन जितना पवित्र होगा, जितना निश्चल होगा, अन्तर्मुखी होगा, निरोग होगा उतना ही शीघ्र इस साधन के द्वारा आत्मानन्द प्राप्त होगा। मन ही तो संसार का आदि कारण है "बन्ध मोक्ष का कारण मित्रो मन ही जँचता है" इस उक्ति में मन का बल, श्रेष्ठता, प्रधानता और पवित्रता तथा विश्वाधारता का समावेश है यह इस श्रुति "मन एव मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयोः" का ही तो उल्था है। इस योग में मन का वास्तविक रूप जो कि एक प्रकार स्वयं ब्रह्म का रूप है, प्रगट होता है।

इस में सृष्टि रचना के क्रम को बदलना पड़ता है। शुद्ध ब्रह्म में स्वभावतः ही यह संकल्प हुआ कि "एक से बहुत हो जाऊँ" "एकोहं बहुस्याम" इस स्फुरणा मात्र से ही एक महा शक्ति उत्पन्न हुई, इस त्रिगुणात्मिका शक्ति का नाम माया या प्रकृति है। शुद्ध ब्रह्म के संकल्प से यह ज्ञात हो रहा है मैं एक

से अनेक बन जाऊँ इसका यह तात्पर्य है कि अनेक रूप में जो कुछ भी दिखाई दे रहा है वह सब ब्रह्म का ही रूप है।

माया से त्रैगुण

सत, रज और तम प्रादुर्भूत हुए। इन गुणों में सत्व गुण से अन्तः करण चित, मन, बुद्धि और अहङ्कार उत्पन्न हुए। रजोगुण के द्वारा दश इन्द्रियाँ और तमोगुण के द्वारा पञ्च तन्मात्रा या पञ्च तत्व की सृष्टि हुई। यह सब प्राण शक्ति संयुक्त उत्पन्न हुए। चार अन्तः करण, पाँच तन्मात्रा-शब्द, स्पर्श, रूप रस और गन्ध पाँच तत्व आकाश, वायु, अग्नि, जल, और पृथवी दश इन्द्रियां पञ्च ज्ञानेन्द्रि और पञ्च कर्मेन्द्रि इस प्रकार यह चौबीस द्रव्य हैं। इनके द्वारा समग्र संसार की रचना हुई और प्राण शक्ति जीव तो सब में समायी हुई है ही। इसी प्रकार पचीस तत्व का पसारा है।

चैतन्य समूह में इस मनुष्य शरीर में इन द्रव्यों का पृथक पृथक स्थान है। पवित्र मन शक्ति के बल पर इन को दूसरे में लय करके पुनः ब्रह्म में प्रवेश कर देने या हो जाने का नाम ही लय योग है। तंत्र शास्त्र में इसी प्रक्रियाओं का नाम 'भूत शुद्धि' है जो कि द्विज जाति और सन्यासियों का अत्यावश्यक कर्त्तव्य है।

तत्व पञ्चीकरण के अनुसार पाँचों तत्व प्रत्येक स्थान में विद्यमान हैं। परन्तु अपनी २ प्रधानता के अनुकूल इनका भिन्न

स्थान है। पाद से जानु तक (पैरों से जंघा) तक पृथवी का स्थान है। इस मण्डल का आकार चौकोण और रंग पीला है। पृथवी तत्व की स्पन्दन शक्ति को निस्पन्द करके अन्तर्मुखी वृत्तियों के बल पर जल तत्व में विलीन करना चाहिये।

जानु जंघा स्थान से नाभि तक जल का स्थान है। इस मण्डल का आकार अर्द्ध चन्द्राकार और रंग श्वेत है। पृथ्वी युक्त जल को मनोवृत्तियों के बल पर अग्नि तत्व में मिला देना चाहिये। दृढ भावना से विलीन कर देना चाहिये।

नाभि से कण्ठ तक अग्नि का स्थान है। इसका रंग रक्त और आकार त्रिकोण है, पृथ्वी, जल और अग्नि के सम्मिलित रूप को वायु में विलीन करना चाहिये।

कण्ठ से भ्रूमध्य तक वायु का स्थान है। इसका रंग श्याम और आकार गोल, छः बिन्दुओं से बना हुआ है। इस पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु के सम्मिलित रूप को आकाश तत्व में मिलाना चाहिये।

भ्रूमध्य से ब्रह्म रन्ध्र तक स्वच्छ आकाश का स्थान है इसका वर्ण धूम्र और ध्वज चिन्ह सहित गोल है। इस आकाश मण्डल में अन्य चार तत्वों को विलीन-लय कर देना चाहिये।

पञ्च तत्व को अहङ्कार में, अहङ्कार को बुद्धि में, बुद्धि को मन में, मन को चित्त में, चित्त को गुणों में और गुणों को त्रिगुणात्मिका शक्ति माया में विलीन कर देना चाहिये। माया को शुद्ध, स्वयं प्रकाश, अनन्त और परम कारण परमात्मा में विलीन करना चाहिये।

इस प्रकार दश इन्द्रिय और पञ्च तन्मात्रा भी स्वभावतः तत्वों के साथ ही लीन हो जाते हैं।

इस भाँति जिस नित्य, शुद्ध बुद्ध ब्रह्म में से चौबीस द्रव्य और माया अपनी प्राण शक्ति सहित उत्पन्न हुए थे वह सब एक ही रूप में समा जाते हैं और संसार रचना समाप्त हो जाती है। केवल शुद्ध ब्रह्म ही शेष रह जाता है अपनी निस्पन्द अवस्था में। इसी अवस्था का नाम जीवन मुक्तावस्था है, ब्राह्मी स्थिति है और इसे ही निर्वाणावस्था कहते हैं।

इस प्रकार बारबार अपनी मनोवृत्तियों को अन्तमुखी बनाते रहने से, संसार के जनक द्रव्यों को परस्पर लय करने की भावना को दृढ़ बनाते रहने से उपर्युक्त अवस्था प्राप्त हो जाती है। इसी का नाम लय योग है जो कि गुरु कृपा से प्राप्त होता है।

परन्तु आहार विहार के सुधार मन वाणी और कर्म की सात्विकता तथा वृत्तियों को अन्तमुखी बनाये बिना यह 'लय योग' कदापि प्राप्त नहीं हो सकता।

भूमि और बीज जितने पवित्र होंगे उतनी शीघ्र सफलता प्राप्त होगी।

निश्चय योग

निश्चय योग लय योग से भी सूक्ष्म और उच्च है। इस में तो केवल निश्चय ही करने की आवश्यकता है कि "मैं शुद्ध ब्रह्म का अंश हूं अतः स्वयं शुद्ध हूं"। मुझे किसी प्रकार का दुःख, सुख, हानि लाभ, हर्ष शोक, सम्पत्ति विपत्ति, मान अपमान आदि कल्पित व्याधियाँ चलायमान नहीं कर सकती। यह सब कुछ मायावी है, अतः नाशमान है मिथ्या है। मैं शुद्ध पवित्र, निर्लेप उपाधि रहित और निश्चल हूँ।

बस श्री गुरुदेव के चरण कमल के आश्रित रहते हुए इस निश्चय को जितना बलिष्ठ बनाया जा सके, बनाते चले जाओ। जितना शीघ्र हो सके इस निश्चय पर टिको अपना मार्ग पूरा करने की लग्न से प्रेम करो। यदि इस जन्म में कार्य सध जाय तो अति उत्तम, नहीं तो दूसरे जन्म में सध जायगा। परन्तु देखना प्रमाद में फँस कर समय नष्ट न कर डालना. संसार के आगमापायी कामों में फँसे न रह जाना, अन्यथा कष्ट उठाना पड़ेगा, पश्चाताप करना पड़ेगा।

भाई! संसार के जो आवश्यक कार्य तुमने अपने ऊपर लाद रखे हैं (गृहस्थी जीवन में) उन्हें संयम सत्यता, परिश्रम

और लग्न से करते रहो ! परन्तु इनके फल को परमपिता पर ब्रह्म के आश्रित छोड़ दो, फल की इच्छा न रखो, न फल भोग की चिन्ता करो। इच्छा और कामना को अपने हृदय में स्थान न दो। अनुकूल फल प्राप्त न होने पर हर्षित होकर फूल न जाओ और प्रतिकूल फल प्राप्ति में दुख और चिन्ता से जलो मत, कुढो मत। अपनी आत्मावस्था को साम्य बनाये रहो, उदासीन रहो।

भाई ! समता में ही तो जीवन मुक्ति का आनन्द है। मुक्तावस्था में क्या कोई नया रूप बन जाता है ? नहीं, नहीं केवल हृदय की चाञ्चल्यावस्था को त्याग देना, धीर बन जाना, दृढ और स्थिर बन जाना, किसी प्रकार की अवस्था में परिस्थिति में उद्विग्न न होना बस यही तो मुक्ति है।

अरे भाई ! मुक्ति शब्द का अर्थ ही है उद्धार, छुटकारा रिहाई और अचञ्चलता। जहाँ सांसारिक बन्धनों की, कार्यों की, अपने बनाए हुए मलिन स्वार्थ पूर्ति की भावना, इच्छा, दूर हुई कि बस आनन्द ही आनन्द है।

जगन्नियन्ता तो आनन्द स्वरूप है अतः तुम और यह जगत भी आनन्द स्वरूप ही है। इसमें तो जितनी अपस्वार्थ की मात्रा है, स्वादों से प्रेम है, उतना ही कष्ट है। जगत में सब कुछ तुम्हारा ही है, यह तो सब तुम्हारा ही परिवार है। यदि तुम्हारा कोई भाई अज्ञान वश तुम्हें छेडता है हानि

पहुंचाता है, कष्ट देता है तो उसे क्षमा करदो उससे बदला लेने की चेष्टा मत करो।

आहार बिहार को सुधारो, सतगुरु की शिक्षानुसार आचरण करो, अच्छे पुरुषों का संग करो, उत्तम ग्रन्थों का अध्ययन करो, स्वार्थ—सांसारिक स्वार्थ को दूर हटा दो, जीवन की आवश्यकताओं को सीमित करो, किसी को कष्ट न पहुंचाओ, सदा सर्वदा प्रसन्न चित्त रहो। निश्चय करो कि "मैं निर्मल, क्लेश रहित और आनन्द रूप हूँ"। बस हो गया इतना निश्चय और बन गया निश्चय योग। जपते रहो "अहं ब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूं"। तुम अवश्य ही एक न एक दिन ब्रह्म रूप बन जाओगे परन्तु निश्चय करो!

सहज योग

सहज योग का साधन अत्यन्त सूक्ष्म सरल और पूर्ण योग प्राप्ति का अन्तिम एवं पूर्ण साधन है। इस में तो केवल श्वास में, प्राण सञ्चालन में वृत्ति को अचल बना देना पड़ता है, प्राणों का जो व्यापार बाहर को हो रहा है उसे आन्तरिक बन्धा बना कर उसमें तन्मय हो जाना पड़ता है।

सांसारिक दुःख और सुख का कारण केवल मन है, इस का चञ्चल स्वभाव ही यत्र तत्र इधर उधर भ्रमाता है, यही जन्म मरण के चक्र में घुमाता है। इसकी चञ्चलता को मेट

देने का प्रधान साधन प्राण संघर्ष ही है, श्वास में तन्मय होना ही है । जब इस मन रूपी पिशाच पर प्राणों का प्रहार बारम्बार होता रहेगा तब यह स्वतः ही अचञ्चल बन जायगा, शान्त हो जायगा ।

संसार में प्रचलित समस्त प्रकार के उत्तम साधन इस मन रूपी मत्त गयन्द मस्त हाथी को काबू में करने के अर्थ ही किये जाते हैं । इसका चाञ्चल्य मिट जाने से स्वतः ही वासना का क्षय हो जाता है, पूर्णतः समता शान्ति और स्थिरता प्राप्त हो जाती है, द्वैत भाव समूल नष्ट हो जाता है । अद्वैत भाव की प्राप्ति हो जाती है, अपने से भिन्न कोई पदार्थ दिखाई नहीं देता ।

अतः सहज योगी बनो "मणि पूरक चक्र नाभि कमल से उठ कर मेरु दण्ड द्वारा सुषुम्ना नाड़ी के आधार पर चल कर शिखर लोक में पहुंच कर पुनः नाभि स्थान में आने वाले 'श्वास' में अपनी वृत्ति को निश्चल करो और नेत्रों को नासिकाग्र भाग पर स्थिर करो" ।

भाई ! श्री गुरु देव की शिक्षानुसार आहार विहार को सुधारो, ब्रह्मचर्य का पूर्णतः पालन करो, ऊर्ध्व रेता बनो, वीर्य को अखण्ड रखो । यही तो ब्रह्म स्थान को प्रकाशित करता है, यही तो बुद्धि को व्यवसायात्मिका काम की बनाता है, इसी के बल से तो मन निश्चल होता है, यही तो सतोगुणी कर्म

करवाता है, इसी के बल पर तो मनुष्य स्थित प्रज्ञ हो सकता है। यही तो शरीर का अन्तिम धातु है, समस्त शरीर को बलिष्ठ स्वस्थ, चैतन्य और चिरायु रखने वाला है, यही एक सर्व पदार्थ है अतः इसको अखण्ड, शुद्ध, बलिष्ठ और निर्दोष बनाओ। मेरे वचन पर विश्वास करो कि "जो अखण्ड ब्रह्मचारी है वह बिना किसी प्रकार के साधन किये ही मुक्त है"।

आहार विहार के सुधार से ही वीर्य रक्षा हो सकती है। अतः आहार विहार का सुधार करो।

आहार विहार सुधरा, वीर्य की रक्षा हुई, प्राण सञ्चालन में वृत्ति स्थिर हुई, मन की चञ्चलता मिटी समता प्राप्त हुई और हो गया बस आत्म दर्शन, निर्वाण पद की प्राप्ति, जीवन मुक्ति नित्यानन्द का अनुभव और पूर्ण हुआ "सहज योग" हो गई अमृत पद की प्राप्ति।

अतः श्री गुरु देव की दया प्राप्त करके आहार विहार का सुधार करो और उचित मार्ग से चलने वाले श्वास में समगति से वृत्ति को तन्मय करदो। देश काल और पात्र की तथा अन्य प्रकार के साधनों की इस में कोई अपेक्षा नहीं। बस यही मेरा अन्तिम और सर्व श्रेष्ठ उपदेश है और यही योग, भक्ति, वैराग्य आदि का सार तत्व है। इस पर विश्वास करो, अवश्य ही तुम्हारा कल्याण होगा।

साधन भाग

द्वितीय खण्ड

॥ षट् चक्र अंग ॥

मनुष्य के शरीर में आधार रूप एक अस्थि मूल द्वार से शिर तक जुड़ी हुई है। इसी का नाम मेरु दण्ड, वंक नाल सुषुम्ना मार्ग या ब्रह्म मार्ग है। यह अस्थि समस्त शरीर का आधार है और श्वास का मार्ग यही है। इस अस्थि में शरीरस्थ नाड़ियां धमनिया स्नायुओं के सञ्चालनार्थ कुछ विशेष उपयोगी रूप से बने हुए स्थान हैं। यह स्थान संख्या में छः हैं। इन्हीं स्थानों का नाम चक्र है। इन्हें योगी जन षटचक्र के नाम से बतलाते हैं। इन चक्रों की पूर्णतः शुद्धि करने या उनको ऊर्द्ध मुख बना लेने से शरीर पूर्ण रूप से स्वस्थ, निर्मल और ज्ञान शक्ति सम्पन्न बन जाता है। वृत्तियां सात्विक हो जाती हैं और हो जाता है आत्म दर्शन का मार्ग सरल।

योग शास्त्र जनक महात्मों ने अपने पूर्ण अनुभव के बल पर ही मेरु दण्डस्थ छः विशेष स्थानों को अतीव महत्व पूर्ण

माना और इनकी शुद्धि के अर्थ विशेष प्रकार के साधनों का निर्माण किया था। यह शरीर की मुख्य सन्धियां हैं विशेष स्थान हैं और मुख्य धमनियों के पुञ्ज हैं।

मनुष्य शरीर का अग्रभाग तो प्राय: पोला है। अत: आमाशय, पाक स्थल, हृदयस्थल यकृत, गर्भ स्थल आदि अंग इस मेरु दण्ड से ही जुड़े हुए हैं। शरीर की उत्तम मध्यम और अधम नाड़ियां का उद्गमस्थान नाभि मूल ही है। योगाचार्यों ने शरीर में बहत्तर सहस्र आठ सौ चौंसठ नाड़ियाँ मानी हैं। इन नाड़ियों के विषय में हम आगे बतलावेंगे।

हाँ तो मेरु दण्ड स्थित षट्चक्र निम्न लिखित हैं। मूलाधार, स्वाधिष्ठान मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा। सप्तम चक्र सहस्र दल कमल शरीर के अन्तिम उच्च स्थान-शिखर में है। इस सहस्रार कमल को ही गुरु स्थान ब्रह्म स्थान, अमृत लोक, शिव स्थान, मुक्ति स्थान, अमर लोक, आदि नामों से सूचित किया जाता है। अब हम इन चक्रों के विषय में भिन्न २ वर्णन करेंगे।

१—मूलाधार चक्र
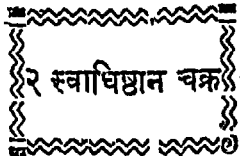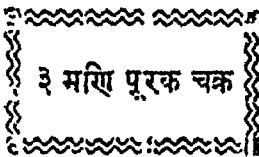
यह चक्र "आधार चक्र" के नाम से विख्यात है। यह गुदा प्रदेश में स्थित है। इस कमल की चार पँखरियाँ—दल हैं। इसका रंग रक्त है और गणपति इसके प्रधान-देवता हैं-क्योंकि इस चक्र की पवित्रता चैतन्यता और ऊर्ध्व मुखता से ही समस्त

शरीर की शुद्धता, जागरुकता, स्वास्थ, वल बुद्धि आदि की वृद्धि और स्थिरता है। इसका आकार हस्ति तुण्ड (हाथी को सूंड) के समान है। इस चक्र का काम शरीरस्थ व्यर्थ मल को विसर्जन करना है। योग शास्त्र, आयुर्वेद तथा शरीर विज्ञान के अनुसार शरीर के मल का उचित रूप में विसर्जन होना अतीव आवश्यक है। भलि भांति मल विसर्जन होने से ही शरीरस्थ सप्त धातु शुद्ध और पर्याप्त रूप में उत्पन्न ओर पुष्ट होते हैं। इस क्रिया से ही मनुष्य ही नहीं प्राणी मात्र सुख से जीवन व्यतीत कर सकते हैं। आधार चक्र की अशु-द्धता से समस्त शरीर मलीन हो जाता है। अतः मेरु दण्ड के इस प्रथम भाग को योगी जनों ने विशेष प्राधान्य दिया है। इस चक्र में अधो मुख किये कुण्डलिनी महा निद्रा में निद्रित हैं।

इस आधार चक्र में शंखिनी और वज्रा नाम की दो प्रधान नाडियां हैं, इस कमल के चार दल हैं, इन दलों पर व, श, ष, स, यह चार वर्ण हैं। अर्थात् इसी स्थान से स्वास्थ्य, वल, बुद्धि और स्वच्छता यह चारों प्राप्त होते हैं। प्रधान आधार भूत साधन शरीर को प्राप्त होते हैं। इन चारों से ही समस्त शरीर के धातु, चैतन्य शक्ति और उप धातुओं को इन गणों को वल प्राप्त होता है। इसी कारण इस कमल के स्वामी का नाम गणपति है। यह चक्र पाचन शक्ति को बलवान बनाता है। कुण्डलनी जागृत करने के अर्थ प्रत्येक साधक को साव-

ध्यानी से इस चक्र पर उतने समय तक वृत्ति को धारण करनी चाहिए जितनी देर में ६०० श्वास आ सके। अर्थात् ४० मिनट तक ऐसा करने से स्वास्थ्य, बल, बुद्धि और स्वच्छता प्राप्त होती है। अपान वायु शुद्ध रहता है। ऐसा प्राचीन योगियों का मत और मेरा अनुभव है।

२ स्वाधिष्ठान चक्र

यह चक्र लिंग स्थान में है इसका वर्ण पीत और आकार छः दल का है। इस चक्र में कृकल नाम की नाडी और इसी नाम की वायु है। इस चक्र का काम मूत्र विसर्जन करना है। जिस प्रकार मल विसर्जन जीवन का मूल है इसी प्रकार मूत्र विसर्जन भी जीवन का आधार है। यह वीर्य का (स्त्रियों के रज का) स्थान है। रज वीर्य से प्रजा की उत्पत्ति होती है अतः इसके अधिष्ठाता प्रजापति ब्रह्मा हैं, इस चक्र में प्रति दिन इतने समय तक वृत्ति को धारण करे जितनी में १२०० श्वास आ सके अर्थात् ८० मिनिट तक। इस चक्र की शुद्धि से, इसमें वृत्ति ठहराने से धैर्य, विवेक, बल, क्षमता, विश्वास और दृढता प्राप्त होती है। इस चक्र पर ब, भ, म, य, र, ल, यह षट् वर्ण हैं। गृहस्थ जीवन वाले मनुष्य को इस पर ध्यान करने से सुन्दर, बलवान, बुद्धिमान और भक्त सन्तान प्राप्त होती है।

३ मणि पूरक चक्र

इस चक्र का स्थान नाभि देश है। यह कमल नीले वर्ण और दश दल का है। इस कमल में प्रधान नाड़ियाँ इड़ा, पिंगला और इनके मध्य सुषुम्ना नाड़ी हैं। इस कमल में समान वायु का निवास है। समस्त शरीर को इसी स्थान से पोषण मिलता है अतः इसके अधिष्ठाता देव विष्णु हैं।

समान वायु हृदय में से प्राण और गुदा से अपान का आकर्षण करती रहती है। प्राण और अपान वायु के मिलने का नाम ही श्वास है। यही प्राण अपान का मेल (श्वास) नाभि कमल से मेरु दण्ड होता हुआ शिखर में पहुंचता है और तत्वों की गति के अनुसार (आकाश तत्व के प्राधान्य में श्वास बाहर नहीं आता, वायु में १२ अंगुल, अग्नि में ४ अंगुल, जल में १६ अंगुल और पृथ्वी में ८ अंगुल) मात्रा में नासिका द्वारा बाहर आता है। समस्त ब्रह्माण्ड में व्यापक महा प्राण और पिण्ड शरीर स्थित अल्प प्राण की नाभि मूल में एक ग्रन्थि पड़ी हुई है। जिस समय यह ग्रन्थि खुल जाती है उसी समय श्वास प्रच्छ्वास की गति रुक जाती है और शरीर मृतक हो जाता है।
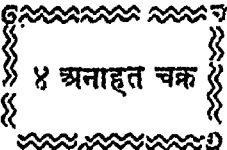
मनुष्य शरीर वाणवें क्रोड श्वास का स्थान है। अहार विहार के उचित रहने और समगति से श्वास चलते रहने से
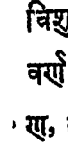
ही इतने श्वास मनुष्यों को आ सकते हैं। अधिक निद्रा लेने वाले ज्यादा परिश्रम करने वाले, वीर्य नष्ट करने वाले, धातु उप धातुओं की भस्म तथा उष्ण पदार्थों को खाने वाले इन्द्रिय लौलुप और चिटोरे मनुष्यों के श्वास शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। सुषुम्ना नाड़ी जो कि श्वास का मार्ग है अनुचित आघात से जर्जर हो जाती है अतः मनुष्य मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। यदि श्वास शेष रह जाते हैं तो पुनः मनुष्य शरीर प्राप्त होता है और जितने श्वास रहे थे उतने ही लेने पर मृत्यु हो जाती है। यही कारण है कि अल्पायु में बहुत सी मृत्यु होती हैं। परन्तु महान् आत्माओं के लिये यह बात नहीं है वह तो नैमित्तिक शरीर होते हैं, अपना कार्य समाप्त किया कि शरीर को त्याग देते हैं।

मणिपूरक चक्र की दश पँखुरी दल हैं। इस कमल में मन रूपी भ्रमर निवास करता है। यह समय २ पर भिन्न दलों पर भ्रमण करता है और तदानुसार इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। इस विषय को हम सृष्टि क्रम में लिख आये हैं। वास्तव में सुख दुःख का कारण मन ही है। इसको इस अत्यन्त चञ्चल मन को, वश में करने का निश्चल करने का साधन आहार विहार का सुधार सत्संग और श्वास के ध्यान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

इस चक्र में उतने समय तक ध्यान करना चाहिये जितने में २४०० श्वास ले सके अर्थात् १६० मिनिट तक। इस ध्यान

से शान्ति, आनन्द, धृति, समता, निर्मोहता, वैराग्य, तन्मयता, निश्चलता, एकान्त प्रियता और उदासीनता प्राप्त होती है। इस कमल के दलों पर ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, यह वर्ण होते हैं। यह वर्ण वास्तव में प्रत्येक शक्ति का ही गुप्त चिह्न हैं।

४ अनाहत चक्र

इस चक्र का स्थान हृदय है। यह द्वादश दल का कमल है रंग श्वेत और क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. झ. ञ. ट और ठ यह बारह वर्ण हैं। इस चक्र की दक्षिण दिशा में हृदय (दिल) और वाम दिशा में पाकस्थल (मैदा) है। मैदा समस्त प्रकार के आहार का पाचन करता है, भक्षण करता है। इस स्थान के अधिपति शिव हैं। यहां प्राण वायु का निवास है जो कि समस्त शरीर का पोषण और रक्षण करती है। प्राण का सञ्चालन रुकना ही शरीर की मृत्यु है। इस चक्र में उतने समय तक ध्यान करे, वृत्ति धारण करे जितने में ४८०० श्वास आ सके, अर्थात ३२० मिनिट तक। यहाँ पर ध्यान करने से निर्लोभता, प्रेम, सत्यता, सावधानता समदर्शिता, अहिंसकता, वात्सल्यता, विवेक-शीलता, जिज्ञासुता दया, क्षमा और करुणा शक्ति प्राप्त होती है।

५ विशुद्ध चक्र

विशुद्ध चक्र का स्थान कण्ठ है। इसका वर्ण श्याम और दल सोलह हैं। ड, ढ, ण, त, थ, द, ध, न, प, फ, ब, भ, म, य, र, ल यह सोलह वर्ण हैं। शरीरस्थ समस्त नाड़ियों का

कोमल स्थान अङ्ग यहां है। इस कमल के अधिष्ठाता देव 'जीव' है। इस स्थान का छेदन होंने पर तत्काल मृत्यु हो जाती है। इस कमल में उतने समय तक वृत्ति को धारण करनी चाहिए जितने में ६६०० श्वास आ सकें. अर्थात् ६४० मिनिट तक। इस कमल में धारणा करने से षोडस प्रकार के योग की साधन शक्ति प्राप्त होती है। यह षोड्स प्रकार के योग हठयोग के अङ्ग में लिख आये हैं। जिनका प्रयोग साधक इच्छानुसार कर सकता है।
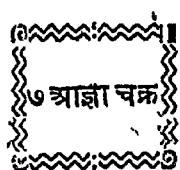
७ आज्ञा चक्र

आज्ञा चक्र का स्थान भ्रूमध्य है त्रिकुटी है। इसका वर्ण लोहित है हं और क्षं दल दो है। इस कमल के दक्षिण की ओर गान्धारी और हस्तिनी नाड़ी है। इन दोनों नाड़ियों का कार्य नेत्रों को प्रकाश देना है। यह चक्र ज्ञानेन्द्रियों का केन्द्र है। इस स्थान पर प्रकृति पुरुष, माया ब्रह्म, का संयोग है, अतः ज्ञान प्रदान करने वाली ज्योति का भण्डार है। हं और क्षं दो वर्ण दोनों पर स्थित हैं। शरीर के वाम भाग से इडा और दक्षिण भाग से पिंगला तथा ऊर्ध्व भाग से सुषुम्ना नाड़ी आकर मिली है। इसी कारण इस स्थान का त्रिवेणी या त्रिकुटी कहते हैं। इस स्थान पर वृत्ति को उतने काल तक स्थिर करे जितने में ३००० श्वास आ सके अर्थात् २०० मिनिट तक। इस चक्र में तन्मयता होने से वृत्तियां अन्तर्मुखी होती है। त्रिकुटी में नेत्र स्थिर करने से मन को चञ्चलता मिटती

हैं, नेत्रों का प्रकाश बाहर भीतर के समस्त अङ्गों को देख सकता है, अन्तः प्रदेश की समस्त रचना देखी जाती है। भ्रान्ति नष्ट हो जाती है। आत्म तत्व में स्थिरता आती है।

सहस्र दल कमल।

सहस्रार इस कमल का स्थान मस्तिक है, शिखर है। इस के नामानुसार सहस्र दल हैं। इसका रङ्ग धूम्र है यह समस्त प्रकार के ज्ञान का उत्पत्ति स्थान है। इसमें सतगुरु का निवास स्थान है क्यों कि ज्ञान के दाता गुरु ही होते हैं। समस्त शरीर का सञ्चालन केन्द्र मस्तिष्क है यहीं से समस्त प्रकार की आज्ञा प्रचारित होती है। प्रत्येक इन्द्रिय इस की आज्ञानुसार कार्य करती है। यह एक बहुत बड़ा कार्यालय है। वर्ण माला के समस्त आवश्यक वर्ण इसके दलों पर विद्यमान हैं। इसी स्थान को ब्रह्म स्थान, गुरु स्थान, शिखर लोक, अमर लोक, अमर गुफा आदि कई नामों से बोधित किया गया है।

नाभि कमल से गठा गमन किए हुए श्वास प्राण का यह विश्राम स्थान है। महा शक्ति कुण्डलिनी मूल कमल से जाग्रत हो कर इसी शिखर में प्रवेश करती है; तभी योगी जीवन-मुक्त अवस्था को प्राप्त होते हैं। इस कमल में वृत्ति के लय लीन हो जाने से वेदान्त के मतानुसार संसार स्वप्नवत् मिथ्या प्रतीत होता है। द्वैत का नाश हो कर अद्वैत भाव की स्थापना

होती है। पिण्ड ब्रह्माण्ड का रूप एक हो जाता है, समस्त संसार अपने रूप में दिखाई देता है या रज्जुवत सर्प का नाश हो जाता है। अपने रूप के अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रहता।

इसी स्थान से सदा सर्वदा अमृत का श्राव होता रहता है। जिस समय यह अमृत टपकना बन्द हो जाता है, शरीर की मृत्यु हो जाती है। यही स्थान शरीरस्थ समस्त धमनियों का अन्तिम स्थान है। यह शरीर रूपी वृक्ष का मूल है। यह अमृत का उर्ध्व मुख कूप है जिस में सुरति रूप है पनिहारी रात दिन पानी भरती है।

जिन सौभाग्य शाली आत्माओं की वृत्ति बिना साधन किये ही इस अमर लोक में लवलीन हो जाती है, वे धन्य हैं। प्राचीन कर्म के प्रबल प्रभाव से ही ऐसा होता है। इस स्थान पर वृत्ति सुरति का स्थिर हो जाना ही निर्विकल्प या सहज-समाधि कहलाता है। समस्त साधन इसी की प्राप्ति के अर्थ किये जाते हैं।

उपर्युक्त चक्र जितने २ दल के हैं उन दलों पर जो वर्ण बतलाते हैं ये केवल उन दलों के द्योतक हैं। जिस २ चक्र का शरीर में जो २ कार्य हैं उसके अनुसार ही देवताओं की कल्पना की गई है। वास्तव में तो इन स्थानों पर वृत्ति की धारणा से जितने गुण उत्पन्न होते हैं यही इनके दल हैं।

कुण्डलनी अङ्ग

मूल कमल के मध्य है, कुण्डलनी का स्थान।
तीन अर्द्ध-चक्राकृती जानो सूक्ष्म अपान ॥१॥
शक्ति सर्प आकार की किया अधोमुख रूप।
सूक्ष्म ज्ञान मय सुरति को ग्रसा अन्ध मुख कूप ॥२॥
तहां वृत्ति लव लीन कर, ध्यान करे नर कोय।
कुण्डल खुले अपान का मिले प्राण में सोय ॥३॥
जागृत होय सुवृत्तियां, सोहं को ले साथ।
मेरु दण्ड पथ सुषुम्ना संग चले दिन रात ॥४॥
है कुण्डलनी जागरण, मेरे अनुभव माहिं।
सोहं सुरति मिलाय के, गगन लोक चढ जाहिं ॥५॥
करत २ अभ्यास के, सुरति शिखर टिक जाय।
ब्रह्म द्वार तब ही खुले, आत्म भवन दरशाय ॥६॥
धार वीरता लग्न से, अन्तः करे प्रवेश।
दर्शन हो निज रूप का, दूर होय भव क्लेश ॥७॥
द्वन्द भाव का नाश हो, गति होवे निर्द्वन्द।
काल, कर्म गुण आदि से, 'अमृत' हो स्वच्छन्द ॥८॥
सदा सर्वदा एक रस, ब्रह्म नाद में लीन।
'अमृत' मद माते रहे, सुन लो सन्त प्रवीन ॥९॥
इस कुण्डलनी भेद को, जाने गुरु-मुखी सन्त।
मेरे अनुभव से कहा, सरल योग का पन्थ ॥१०॥

'अमृतनाथ' बखानते कुण्डलनी का योग।
'शंकर' सत, पथ में रमो, दूर होय भव रोग ॥११॥

अर्थ—योग शास्त्र के परम गौरव रूप कुण्डलनी का स्थान मूलाधार चक्र है। यह अपान वायु के साढे तीन चक्र सर्पाकार शक्ति है। इसका मुख नीचे की ओर है। इसने सुरति अर्थात् सूक्ष्म ज्ञान तन्तुओं को अपने मुख में ग्रस रखा है। सुरति के ठिकाने से अपान का यह कुण्डल खुलता है और नाभि स्थान में प्राण वायु से मिल जाता है। सुवृत्तियाँ जागृत हो जाती है और सोहं अर्थात् श्वास के मार्ग मेरु दण्ड स्थित सुषुम्ना मार्ग से शिखर की ओर चलती है। इस प्रकार अभ्यास करते २ आत्मस्थान के दर्शन होते हैं अर्थात् ब्रह्म द्वार खुल जाता है सुरति शिखर में टिक जाती है। सदा सर्वदा शिखर से झरने वाले अमृत को सन्त जन इस क्रिया से प्राप्त कर लेते हैं। ऐसा होने से अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती हैं परन्तु बुद्धिमान को चाहिए कि इन सिद्धियों के प्रालोभन में उलझे नहीं।

वीरता धारण करके प्रेम पूर्वक साधन करता रहे और ब्रह्म स्थान के भीतर प्रवेश करे। ऐसा करने से सत्य रूप अर्थात् अपने रूप का दर्शन हो जाता है और संसार में व्याप्त जन्म मरण रूपी क्लेश मिट जाता है। मैं और तू का भाव नष्ट हो जाता है। आत्मैकता उत्पन्न होती है। काल, कर्म और गुण आदि के प्रभाव से रहित हो कर सर्वदा ब्रह्म रूप में

तन्मय हो जाता है। श्री अमृत नाथ कहते हैं कि हे चतुर साधु गण, सोहं शब्द में सुरति को स्थिर करके गगन लोक में समा जाओ। बस मेरे अनुभव से यही "कुण्डलनी जागरण" क्रिया है।

आशय मूलाधार में निवास करने वाली अपान वायु की स्वच्छता आवश्यक है। आहार विहार की पवित्रता से जब शरीर मल का उचित रूप में विसर्जन होता है तब वृत्तियों में शुद्धता आती है। अपान वायु अपने शुद्ध एवं सूक्ष्म तत्व से सञ्चालित होती है और इसके जो साढे तीन चक्र हैं वह उर्ध्व मुख होते हैं। अर्थात् अपान वायु की पवित्रता से स्वास्थ्य बल, पवित्र बुद्धि और आधे में स्वच्छता यह गुण प्राप्त होते हैं। विकसित होते हैं। तब वृत्तियाँ पवित्र होकर मन को निश्चल करती हैं तब सुरति स्थिर होती है। ऐसा करने से सुरति अर्थात् कुण्डलनी उर्ध्व मुखी रूप को प्राप्त होकर दशम द्वार तक पहुंच कर स्थिर हो जाती है और आत्म तत्व में स्थिरता होती है। यह है कुण्डलनी का सूक्ष्म ज्ञान।

तात्विक बात यह है कि अधोमुख कुण्डलनी का अर्थ है बहिर्मुख वृत्तियां और कुण्डलनी जागरण का अर्थ है बहिर्मुख वृत्तियों को अन्तर्मुखी बनाना, कुण्डलनी उर्ध्वमुख हो कर शिखर में प्रवेश करने का अर्थ है वृत्तियों को अर्थात् सुरति को आत्म तत्व में स्थिर करना।

मनुष्य शरीर इतना परिपूर्ण है कि इसमें कुछ भी बनाने बिगाड़ने, इधर उधर करने की किञ्चित मात्र भी आवश्यकता नहीं है। जो कुछ भी जिस प्रकार से बना हुआ है वह संसार के समस्त कार्य और आत्म साक्षात्कार तक करने के लिये पूर्णतः योग्य है। इस शरीर के अन्तर में समस्त शक्तियाँ विद्यमान हैं। हाँ, इन्हें विकसित करने के अर्थ साधनों की आवश्यकता होती है। यह शक्तियाँ कभी २ तो स्वयं ही विकसित हो जाती हैं और विशेषतः अनुभव प्राप्त करने के अर्थ अनुभवी पुरुषों का सत्सङ्ग और आज्ञा पालन करना पड़ता है इससे सुषुप्ति शक्तियां जागृत हो जाती हैं।

"कुण्डलनी नाम की कोई सर्पणी इस शरीर में है और इसे जागृत करके शिखर लोक में प्रवेश कराना पड़ता है तब आत्म साक्षात् होता है" योग शास्त्र के ग्रन्थों में इस विषय पर बड़े २ लेख और क्रियाएँ लिखे हैं। परन्तु मेरे अनुभव से यह सब आडम्बर रुचि उत्पन्न कराने या आर्य ग्रन्थ नष्ट करने वाले मध्य काल के नर पिशाचों के करतूत का फल है। भारतवर्ष के प्रायः सभी उत्तम ग्रन्थ बाहरी आक्रमण कारियों ने नष्ट कर डाले और उनके स्थान पर अपनी इच्छानुसार रचनाएँ करवा कर देश को तत्व शून्य बना दिया इस युग में योग साधन करने वाले सन्तों की न्यूनता रही और जिन्होंने साधन किया भी उन्हें उचित और सत्य मार्ग न मिला

सका। अतः योग क्रियाओं की साधना अत्यन्त कठिन या असत्य समझ कर जन समाज ने इस ओर प्रयाण करना त्याग दिया अर्थात् इस परमोपयोगी साधन में से विश्वास हट गया।

मैंने कठिन अनुभव से ज्ञान प्राप्त किया है कि कुण्डलनी सुरति का नाम है और आहार विहार की पवित्रता से सुरति पवित्र होकर श्वास में तन्मय होती है और फलतः आत्म साक्षात्कार हो जाता है।

सुषुम्ना अंग

(प्रश्न)

नाम सुषुम्ना मैं सुना श्री मुख से बहुबार।
इसका भेद बताइये, गुरु वर शिष्याधार ॥१॥

(उत्तर)

शिष्य शान्त होकर सुनो, कहूँ सुषुम्ना भेद।
जो खोजे उसको मिले, दूर होय भव खेद ॥२॥

नाभि कमल के बीच अनोखा ठाठ है।
सब नाडिन का मूल यही एक घाट है ॥१॥

ऊर्ध्व अधो की ओर चले बहु नाडियाँ।
नाना रूप अनूप बनी हैं झाडियाँ ॥२॥
इन में दश हैं मुख्य दशों ही द्वार की।
लिंग, गुदा, मुख, नेत्र, श्रवण अरु नास की ॥३॥
शिखर महिं है ब्रह्म द्वार दशवाँ सुनो।
इसका भेद अनूप मेरी शिक्षा गुनो ॥४॥
इन दश में भी तीन मुख्य कर मानिये।
इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना जानिये ॥५॥
वङ्क नाल से वाम इड़ा विधि रूप है।
पिंगल दक्षिण अंग विष्णु अनुरूप है ॥६॥
मध्य सुषुम्ना महा शा शिव जानिये।
है तीनों का मेल त्रिवेणी मानिये ॥७॥
मार्ग श्वास का सन्त सुषुम्ना मानिये।
माला के आकार इसे पहिचानिये ॥८॥
सर्व घटों का श्वास इसी में वहत है।
इसको योगी ब्रह्म नाड़ी भी कहत है ॥९॥
इस में सुरति लगाय श्वास रत होइये।
मन निश्चल हो जाय सकल भ्रम खोइये ॥१०॥
शुद्ध होय षट्-चक्र इसी संघर्ष से।
मिलते प्राण अपान इसी के स्पर्श से ॥११॥
सुषुम्ना का है रूप सूक्ष्म अति ही घना।
सतगुरु देय दिखाय लखे है संत जना ॥१२॥

यहीं अधोमुख कूप श्वास की नेज है।
सुरति सुघर पनिहार अनोखा तेज है ॥१३॥

बङ्क नाल से चढ़े गगन की ओर है।
उतरे त्रिकुटी, कण्ठ हृदय की ओर है ॥१४॥

माला के आकार सुषुम्ना रूप है।
नाभि गगन सुमेरु भेद अति गूप है ॥१५॥

रमते हैं जो सन्त इसी घट माल में।
सोऽहं सोऽहं जपते हैं सब काल में ॥१६॥

कोटि भानु सम तेज शिखर में पावते।
अमृतताल अथाह तहां सरसावते ॥१७॥

वहो सदा ऋतु एक खेल निर्द्वन्द्व है।
रमते सुषुम्ना माहिं मिटे जग फन्द है ॥१८॥

तन का कुछ अभ्यास तनिक रहता नहीं।
सुख दुख व्यापे नहीं रहे समता वहीं ॥१९॥

केवल अपना रूप अन्य कुछ है नहीं।
तुरिया जागृत माहिं नहीं मैं, तू कहीं ॥२०॥

सुधरे अहार विहार वेग मन का थमे।
जन्म मरण की व्याधि मिटे सुषुमन रमे ॥२१॥

यह सुषुमन का भेद सन्त पूरा लहे।
भूल मिटे सुधि होय, 'नाथ अमृत कहे' ॥२२॥

आशय—मणिपूरक चक्र शरीरस्थ समस्त नाड़ियों का केन्द्र स्थान है। यहीं से ऊपर और नीचे की ओर नाना रूप धारण किये हुए कई दिशाओं में ७२८६४ धमनियां चली हैं। इन नाड़ियों में दश नाड़ी मुख्य हैं, यह शरीर के दशों द्वारों की अधिष्ठात्रि हैं। यथाः—

किरकल लिङ्ग स्थान में, शंखिनी गुदा में, पोषा दक्षिण कर्ण में, जसनी वाम कर्ण में, हस्तिनी दक्षिण नेत्र में, गान्धारी वाम नेत्र में लम्बिका जिह्वा में, इड़ा वाम नासिका में पिंगला दक्षिण नासिका में और सुषुमना ब्रह्मरन्ध्र शिखर स्थान में इस प्रकार यह दशों धमनी अपने २ स्थान में प्राधान्य रखती हुई कार्य शील रहती हैं।

इन दश नाड़ियों में भी इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना तीन प्रधान नाड़ी हैं। वङ्कनाल (मेरु दण्ड) के वाम भाग में ब्रह्म स्वरूप इड़ा है यह चन्द्रमा है यह शरीर को शीतलता प्रदान करती है। दक्षिण भाग में विष्णु स्वरूप पिंगला है, यह सूर्य है और शरीर को उष्णता देती है। यह इडा और पिंगला मणि पूरक चक्र से आरम्भ होकर मेरु दण्ड के दोनों ओर से कर्ण स्थान तक पहुंच कर जसनी और पोषा नाड़ियों को घेरती हुई त्रिकुटी स्थान में आती है।

नाभि कमल के मध्य से चल कर शिव रूप सुषुम्ना नाड़ी मेरुदण्ड पथ से षट चक्र को परिवेष्टित करती है। (घेरती) हुई अर्थात् इनको स्थिरता की शक्ति प्रदान करती हुई शिखर लोक में पवित्र सद गुरु स्थान—सहस्र दल कमल को चक्राकार घेरती है। इसी सहस्रार में सुषुम्ना नाड़ी का केन्द्र है. ज्ञान का भण्डार यही है, इसी सहस्र दल कमल के मुख का नाम ब्रह्म रन्ध्र है इसी को भ्रमर गुफा कहते हैं। सुषुम्ना नाडी इसी स्थान की अधिष्ठात्री है। इस ब्रह्म नाड़ी का प्रभाव और रूप अनिर्वचनीय है। यह प्राणी मात्र के शरीर में विद्यमान है। यही नाड़ी प्राण-श्वास का मार्ग है, अर्थात् प्राणी मात्र का श्वास इसी सुषुम्ना नाड़ी से बहता है। यही शिव रूपिणी सहस्र दल कमल से त्रिकुटी स्थान-आज्ञा चक्र में पहुंचती है, इड़ा और पिंगला के मध्य में। श्वास को आज्ञा चक्र में पहुंचाना सुषुम्ना नाड़ी का कार्य है। यहां से शरीर की दशा के अनुसार यदि शरीर में तरी-शीतलता हो तो इड़ा-चन्द्रमा नाड़ी से और उष्णता हो तो पिंगला सूर्य नाड़ी से नासिका द्वारा स्थूल प्राण तत्वों के प्रभावानुसार बाहर आता है। त्रिकुटी स्थान से विशुद्ध और अनाहत चक्रों को घेरती हुई सुषुम्ना नाड़ी मणि पूरक चक्र में पहुंचती है। इस सत्व गुणी नाड़ी का अद्भुत प्रभाव है।

प्राण और अपान वायु के योग श्वास को यही मालाकार ब्रह्म नाड़ी मेरु दण्ड मार्ग से शिखर लोक में प्रवेश कराती है।

यही षट चक्र की परमाधार है, इसी के यथोचित वहन से योगी-जन शान्ति लाभ करते हैं। शरीर में यही अधोमुख कूप कहलाती है। इसी के आधार पर सुरति रूप चतुर पनिहारि अविराम गति से श्वास रूपी नेज (रस्सी) के आश्रित अद्भुत प्रताप को प्राप्त करती है, अर्थात् भली भांति सुस्थिर होकर नित्यानन्द में तन्मय होती है। इस अवस्था के परिपक्व होने पर गुणातीत अवस्था होती है।

जो योगी इस घट माल में सोऽहं सोऽहं जप करते हैं वह शिखर लोक स्थित क्रोड़ों सूर्य के समान तेज अर्थात् विशुद्ध ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं और अमृत के अपार सरोवर में अखण्डानन्द को पाते हैं। इसमें रमण करने वाले महा पुरुषों के सदा सर्वदा एक ही ऋतु रहती है, उनका आवागमन मिट जाता है, इन्हें अपने शरीर का अभ्यास नहीं रहता, सुख दुख रूपी व्याधियों का इन पर प्रभाव नहीं पड़ता केवल आत्म रूप के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं रहता जीवन मुक्ति का आनन्द प्राप्त करा देने वाली इस मालाकार सुषुम्ना नाड़ी में जिसका कि नाभि और शिखर सुमेरु है रमण करने वाले योगी जन वेदान्त के अद्वैत पद को प्राप्त कर लेते हैं और उनके लिए यह जगत रूपी मिथ्या प्रपञ्च मिट जाता है।

श्री अमृत नाथ कहते हैं जिन पुरुषों का आहार विहार सुधर जाता है उनको सुषुम्ना का वास्तविक रूप मिलता है। इस में रमण करने से सुरति टिकती है, मन का वेग रुकता है

और जन्म मरण रूपी व्याधियां नष्ट हो जाती हैं। सुषुम्ना के तत्व को पालेने से भूल मिट जाती है अपने स्वरुप का ज्ञान हो जाता है और वासना का क्षय हो जाता है।

चार अवस्था अङ्ग

[प्रश्न]

तुरिया किसको कहत हैं, दया सिन्धु गुरु देव।
मुझको भेद बताइये, करूँ चरण की सेव॥

[उत्तर]

जागृत, स्वप्न, सुपुप्ति है सुनो लगा कर ध्यान।
गुणातीत तुरिया कहूँ, चार अवस्था जान॥

शरीरस्थ जीव की चार अवस्था होती हैं। जागृत, स्वप्न सुपुप्ति और तुरिया। वास्तव में तो जीव शुद्ध, बुद्ध, नित्य, गुणातीत है। परन्तु गुण तत्व आदि पदार्थों के संसर्ग से अपने स्वरूप को भूल कर सुख दुख आदि उपाधियों में ग्रस्त हो कर वासना के चक्र में फँसा हुआ चार अवस्था को भोगता है। इसी कारण यह संसार प्रपञ्च दिखाई देता है। जिस समय जीव-आत्मा अपने वास्तविक रूप का बोध प्राप्त कर लेता है, तब इस पर गुण-तत्व काल आदि पदार्थों का प्रभाव नहीं पड़ता और आत्मावस्था अर्थात् अपनी नित्य, शुद्ध, ब्रह्म रूप अवस्था को पाकर अखण्ड रूप में स्थिति कर लेता है,

द्वन्द नष्ट होकर निर्द्वन्द, अनिर्वचनीय, नित्य, सत्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

परन्तु जब तक गुण और तत्वों के प्रभाव में आया हुआ है अर्थात् ईश्वर के इस विलास भवन में अपनी इच्छा से इस संसार की रचना करके स्वयं ही नाना प्रकार के शरीर बन कर इनमें जीव रूप से प्रवेश किए हुए नाट्य भवन में रमा हुआ है तब तक व्यवहारिक रूप से जीव की चार अवस्था बनी रहती हैं। तमोगुण से जागृत, रजोगुण से स्वप्न सतो गुण से सुषुप्ति और त्रिगुण मेल से तुरियावस्था बनती है अब हम इन चारों अवस्थाओं का भिन्न २ वर्णन करेंगे।
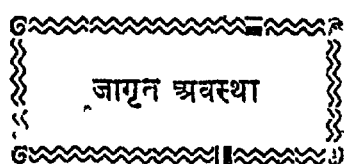
चोपाई—जागृत माहि स्थूल शरीरा, पन्द्रह तत्व जगत की पीरा।
चैतन शक्ति नयन के माहीं, मुख्यतया रहती इक ठाहीं॥
इसमें कोप अन्नमय जानो, और बैखरी वाणी मानो।
अंहङ्कार से इसकी रचना, सत्य जान 'अमृत' के वचना॥

आशय—जागृत अवस्था उसको कहते हैं जिसमें दिन के कार्य अर्थात चलना, फिरना, खाना, पीना, आदि कार्य होते हैं। यह अवस्था स्थूल शरीर अर्थात् पन्द्रह-तत्व पदार्थ पञ्च तत्व और दश इन्द्रियाँ से बने हुए शरीर में वर्तमान होती है। इस

स्थूल शरीर की अवस्था का अन्नमय कोप-अन्न जल के आधार पर जीवित रहने वाला शरीर और वैखरी वाणी जो भली भाँति बोली और समझी जा सके-है। इस अवस्था में चैतन्य शक्ति का मुख्यतः निवास नेत्रों में रहता है। श्री अमृत नाथ कहते हैं कि इसको अर्थात् जागृत अवस्था और स्थूल शरीर की रचना अहङ्कार के आश्रित है। इसी को स्थूल संसार कहते हैं।
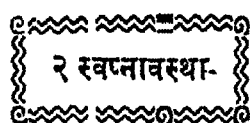
२ स्वप्नावस्था-

सूक्ष्म शरीर स्वप्न के माहीं, जान प्राण कण्ठों के ठाहीं।
घट में नाना खेल रचावे, कोप प्राणमय इस में पावे॥
रहे मध्यमा वाणी या में, नव तत्वों की शक्ती तामें।
आश्रय है बुद्धि के जानो, सत्य वचन अमृत के मानो॥

आशय-स्वप्नावस्था, निद्रावस्था सूक्ष्म शरीर में अर्थात् नव तत्व पञ्च तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध तथा चार अन्तः करण-चित्त, मन बुद्धि और अहंकार से बने हुए शरीर में बनती है। इस में चैतन्य शक्ति प्रधानतः कण्ठ में निवास करती है। इस अवस्था में मध्यमा वाणी, अर्थात् स्थूल श्रवण शक्ति से न सुनाई देने वाली वाणी से कार्य होता है। इसका प्राणमय कोप है, अर्थात् प्राणों के आधार पर यह अवस्था

रहती है। बुद्धि के आश्रय पट में ही नाना प्रकार के खेल होते रहते हैं।

जागृत अवस्था में किये हुए कार्य और संकल्प तथा जन्म जन्मान्तर की वासना इस स्वप्नावस्था में जीव को भोगनी पड़ती है। शरीर-सूक्ष्म शरीर के भीतर ही नाना प्रकार का प्रपञ्च रचा जाता है और दुःख सुख, हानि, लाभ, हर्ष शोक आदि भोगते हुए अद्भुत प्रकार से काल क्षेप होता है कभी कभी इस में स्थूल इन्द्रियों की भी प्रक्रिया हो जाती है। निद्रा भंग होते ही इस प्रपञ्च का अन्त हो जाता है। कभी स्वप्नावस्था में हुए कार्य सत्य भी हो जाते हैं, अर्थात् जागृत अवस्था में वैसे ही कार्य सत्य रूप में सामने आते हैं। परन्तु अधिकांश में नहीं। यथा सम्भव निद्रा कम लेनी चाहिये क्योंकि इस में श्वास ज्यादा चलते हैं और आयु क्षीण होती है तथा आत्म चिन्तन का समय, शान्ति काल कम मिलता है। जो मनुष्य जागृतावस्था में आत्म चिन्तन करता है उस को स्वप्नावस्था कम भोगनी पड़ती है। शरीर में तरी रहती है तो स्वप्न कम आते हैं संकल्प शक्ति स्थिर रहती है। गरम पदार्थ सेवन करने से स्वप्न ज्यादा आते हैं। साधु, राजा, गुरु, वन और उडने के स्वप्न आना अच्छा होता है, इनका जागृत अवस्था पर अच्छा फल पड़ता है। जागृत और स्वप्नावस्था का बहुत निकट सम्बन्ध है।

रहे सुपुप्ति अवस्था जब ही, शरीर कारण रहता तब ही।
हृदय माहिं है प्राण समाना, कोप मनोमय अरु विज्ञाना॥
पश्पति वाणी इसमें जानों, मन ही मन की लीला मानों।
जड़ सम दशा होत है सोई, अमृत क्यों उरझत है कोई॥

आशय—सुपुप्ति अवस्था घोर निद्रा को कहते हैं। इसमें कारण शरीर रहता है अर्थात् शरीर के समस्त अवयव इस में निष्क्रय हो जाते हैं केवल प्राण सञ्चालन होता है और स्थूल संकल्प शक्ति मन के अन्तर्गत लीन हो जाती है। इस अवस्था में चैतन्य शक्ति हृदय में निवास करती है। इस में मनोमय और विज्ञान मय कोप होते हैं अर्थात् स्मृति मात्र रहती है इसी का नाम पश्पति वाणी है। यह अवस्था आनन्द का पूर्व लक्षण है परन्तु ज्ञान पूर्वक उपभोग में नहीं आती है अतः जड़ है। इस को भोगने वाला केवल इतना ही जानता है कि मैं सुख से सोया किन्तु इसके आनन्द का वर्णन नहीं कर सकता।

४ तुरिया वस्था

जब तुरिया वनने लगे, होय कोष आनन्द।
ब्रह्म नाड़ि के आश्रय, कोष रहित निर्द्वन्द॥

तुरियावस्था अमृत गावे, नाभि कमल में स्थान चितावे।
महा कारण है शरीर याका, वाणी परा भेद है वाका॥
चित से है चैतन्य सदा ही, आप आप कुछ पूजा नाहीं।
पाचों कोष यहां नहीं राजे, निशदिन सन्त गगन में गाजे॥
नाभि शिखर बिच सोहं जापा, जपत रहे छूटे निज आपा।
वंक नाल सोहं का वादा खुले शिखर में वज्र कपाटा॥
ऋतु है एक नहीं दिन रैना, देख प्रकाश थकत है नयना।
निर्गुण भाव आप को पावे, चहुंदिशि अपना रूप लखावे॥
'अमृत' मिले शान्त हो जावे, गुणा तीत निश्चल पद पावे॥

तुरिया में कुछ काल तक, रमण करे जो धीर।
केवल में केवल रहे, तुरिया जागृत वीर॥
भाव नहीं अपना बने, मन वाणी थक जाहिं।
'अमृत' अनुभव से मिले, कहन सुनन से नाहिं॥

आशय—जगत के झंझटों से घबड़ाने पर जब आत्मा को इससे उपराम होता है, तब आनन्द की खोज में भ्रमण करता हुआ मनुष्य श्री गुरु देव की शरण में पहुंचता है और शान्ति की याचना करता है। यदि अपने सुकृत्यों के उदय होने का समय आ गया हो और गुरु देव कृपा करके आत्म चिन्तन का साधन करने की शिक्षा प्रदान कर देते हैं और श्रद्धा विश्वास तथा लग्न के साथ साधन में लग जाने पर चिरकाल में जब आत्म तत्त्व में स्थिरता लगती है। जगत की ओर से मन उपराम को पाता है।

तब तुरियावस्था बनने लगती है। इस समय आत्मानन्द के बल पर ही रहने वाला महा कारण शरीर अर्थात् आनन्द-मय कोष होता है। ब्रह्म नाड़ी सुषुम्ना का पूर्णतः आश्रय मिल जाने पर साधक इस में तन्मय होता है। प्राणों का स्थान नाभि से शिखर तक रहता है। इस अवस्था में चित्र के बल पर चैतन्य अवस्था रहती है। इस अवस्था में परावाणी अर्थात् संकल्प शून्य भाव रहता है। नाभि से शिखर तक ही जब प्राणों का व्यापार मेरु दण्ड द्वारा होता है और सोहं सोहं जप अखण्ड रूप से चिरकाल तक होता रहता है तब तुरिया अवस्था परिपक्वता को पहुंचती है।

इस समय पञ्च कोष का अभाव हो जाता है, गुणातीत भाव अर्थात् आत्म भाव उदय होता है। जगत प्रपञ्च नष्ट होकर केवल अपना ही रूप रह जाता है। मैं, तू का झंझट दूर हो जाता है। ऋतु, काल कर्म आदि नाश को प्राप्त हो जाते हैं। वासना का पूर्णतः क्षय हो जाता है। इस अवस्था का नाम कैवल्य अवस्था होता है इसी को जीवन मुक्ति कहते है। इस जागृत तुरिया को प्राप्त हो जाने पर द्वन्द नष्ट हो जाता है, निर्द्वन्दता आ जाती है। इस अवसर का वर्णन करने में मन, वाणी, वचन विलास समर्थ नहीं है केवल अनुभव में आने की बात है।

जागृत अवस्था में जागृत स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था वर्तती है। स्वप्न में स्वप्न और जागृत तथा सुषुप्ति वर्तती है। ऐसा

कभी २ होता है इसका ज्ञान सावधान और चतुर मनुष्य को होता है। सुपुप्ति में जागृत और स्वप्न भी होती है। तुरियावस्था में जब जाग्रतावस्था बन जाती है तब अन्य तीन अवस्थाओं का अभाव हो जाता है। ऐसा पुरुष सर्वज्ञ, पूर्ण ज्ञानी और चारचर में व्यापक अवस्था को प्राप्त हो जाता है। यह अनुभव्य जन बात है।

नाद अंग

दश प्रकार का नाद, वायु योग का खेल।
जिसने पाया स्वाद, 'अमृत' तन्मय हो गया॥

नाद का अर्थ है शब्द, आवाज, ध्वनि गूंज पृथ्वी से आकाश पर्यन्त समस्त ब्रह्माण्ड में शब्द ही भरा हुआ है। कल्प के आरम्भ में प्राण और आकाश के संघर्ष से, घात प्रत्याघात से जो शब्द प्रादुर्भूत हुआ इसी को 'नाद' कहते हैं। इस नाद की प्रतिध्वनि से परमाणु उत्पन्न हुए और इन परमाणुओं से दृश्यमान जगत बना है। कल्प के अन्त में इसी क्रम के विपरीत वहन से उलटी गति से प्रलय हो जायगी।

यद्यपि संसार में नाद विन्दु का विवाद बहुत प्राचीन काल से चला आता है। दोनों पक्ष के लोग अपने २ मत का प्रतिपादन करते हैं इसके सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं।

प्रथम नाद उत्पन्न हुआ इसके पश्चात् समग्र पदार्थ। बिन्दु शून्याकाश को कहते हैं फिर कहें तो अवकाश का नाम बिन्दु है। कुछ मनुष्य ऐसे मत वाले भी हैं जो बिन्दु का अर्थ वीर्य लगा कर सिद्ध करना चाहते हैं कि संसार का कारण बिन्दु है। शिखर लोक से श्रवने वाले अमृत सोम रस को भी बिन्दु कहते हैं। इन दोनों मतों वाले कुछ भूल में हैं। अमृत और वीर्य के दो रूप हैं स्थूल और सूक्ष्म, और इन दोनों के सूक्ष्म रूप को वास्तव में बिन्दु कहा जाता है। यह सूक्ष्म तत्व नाद से उत्पन्न हुआ है। नाद भी दो प्रकार का है स्थूल और सूक्ष्म मेरी सम्मति में नाद प्रधान है क्योंकि इसके बिना बिन्दु का अस्तित्व ही नहीं है। नाद को प्राण कहते हैं इसका नाम सोहं है। संसार सञ्चालन का कारण प्राण है। अल्प हो चाहे महान प्राण के बिना संसार की स्थिति नहीं है। यह मानते हैं कि बिन्दु का महत्व कम नहीं है अमृत हो चाहे वीर्य दोनों की ही जितनी रक्षा होगी यह जितने बलिष्ठ, स्वच्छ और सूक्ष्म होंगे आत्म तत्व की प्राप्ति में उतनी ही शीघ्र सफलता प्राप्त होगी। किन्तु नाद-प्राण हीन शरीर में बिन्दु क्या काम आ सकता है। अतः नाद प्रधान है।

शरीरस्थ प्राण अपान के एकत्व को योगी जन नाद श्वास कहते हैं या यों कहें कि 'सोहं' शब्द नाद का रूप है। शरीर के प्रत्येक रोम में नाद व्याप्त है। इसी को अजपा जाप कहते हैं। प्राण का वाह्य व्यापार, बहिर्मुख वृत्तियाँ जितनी

अन्तर्लीन होती है या यों कहें कि नाद को जितना ज्यादा सुना जाता है प्राण का व्यापार अन्तर में ही किया जाता है उतना ही आत्मानन्द प्राप्त होता है।

इस नाद को अवस्था साधन और स्थान के भेद से दश प्रकार का माना गया है। हृदय चक्र से प्राण और आधार चक्र से अपान वायु का आकर्षण और संकुचन करने से जब नाभि कमल में मणि पूरक चक्र में इनका योग होता है तब सोहं शब्द बनता है।

प्राण अपान का मेल हो नाभि में नाद सुने जैसे बोलत पक्षी।
वृत्ति टिके कुछ काल तहां तब ऐसे सुने जैसे गूंजत मक्षी॥
सुरति जो चक्र अनाहद आवे नादरु शंख का शब्द समक्षी।
कण्ठ में बीणा औ ताल का शब्द है, आज्ञा में शब्द सुने सोही दक्षी॥
मुरली नगाड़ा पखावज बाजत त्रिकुटि के मांहि सुने सोही पूरा।
मेघ सी गर्जन होत सदा, ताको गगन के मध्य लहै सोही पूरा॥
'अमृत' नित्य कलोल करें, जाने युक्ति से पाये दसों विधि तूरा।
जीवन मुक्त है साधु सोई जासे होय कभी नहीं 'शंकर' दूरा॥

नाभि कमल में प्राण अपान वायु को एक करके वृत्ति को ठहराने सुरति जमाने से कुछ काल में शब्द सुनाई देता है जैसे पक्षी चह चहा रहे हों। इसके कुछ काल तक सुनते रहने से इसी स्थान पर मक्षियों के गुञ्जार जैसा नाद सुनाई देता है। यह प्रथम और दूसरा नाद है।

जब हृदय कमल में वृत्ति को, सुरति को ठहराई जाती है तब नाद अर्थात् घण्टा और शंख का शब्द सुनाई देता है यह तीसरा और चौथा नाद है।

जब कण्ठ में सुरति कुछ काल तक स्थिर होती है तब वीणा और ताल का शब्द सुनाई देता है यह पांचवां और छटा नाद है।

जब सुरति आज्ञा चक्र में स्थिर की जाती है तब मुरली नगाड़ा और पखावज का शब्द सुनाई देता है। यह सातवां आठवां और नवां नाद है।

जब सहस्रदल कमल पर सुरति स्थिर होती है तब मेघ या सिंह गर्जना के समान सब्द सुनाई देता है। यह दशम नाद है। जो शूरवीर संन्त इस दशम नाद को प्राप्त कर लेता है वह सदा सर्वदा अमृत के सरोवर में आनन्द लेता है।

इस प्रकार युक्ति पूर्वक साधन करके जो सन्त दश प्रकार के नाद सुनता रहता है वह जीवन मुक्तावस्था को प्राप्त कर लेता है। ऐसे सन्त से कल्याण रूप शंकर भिन्न नहीं है अर्थात् वह शंकर रूप है।

दश नाद के लक्षण

पहिले में गद् गद् दूजे में आलस तीजे में प्रेम की उठत लहरी।
चौथे में खूब चढे है नशा। अरु पञ्चम नाद में अमृत नहरी॥

नाद छठे में झरे है अमी, पावे अनुभव गुप्त को सप्तम प्रहरी।
अष्टम नाद को योगी सुने तब विश्व का शब्द सुने विधि गहरी॥
नाद नवें को सुने जब है, गति सूक्ष्म होय न जाने कोई।
होय अगोचर दृष्टि न आवत, देव विभूति को पावत सोई॥
नाद खुले दशवां घट में तब द्वन्द मिटे दुविधा सब धोई।
'अमृत' आप में आप रमे हैं, जीवन मुक्त सदा सुख होई॥

प्रथम नाद के सुनने से शरीर पुलकित और रोमाञ्चित होता है आनन्द मिलता है। दूसरे नाद में वृत्ति के टिकने से शरीर में एक प्रकार का आलस्य सा चढ़ता है उपेक्षा वृत्ति उत्पन्न होती है। तृतीय नाद के सुनने से प्रेम की तरंगे उठने लगती हैं अर्थात् प्रेम उत्पन्न होता है। चतुर्थ नाद के श्रवण करने से नशा चढता है, मस्ती आती है। इस अवस्था में संसार का एश्वर्य तुच्छ जान पडता है। पञ्चम नाद में वृत्ति ठहरने से शरीरस्थ अमृत का मार्ग प्राप्त हो जाता है। छठे नाद में अमृत झरने लगता है इसे पाकर साधक तृप्त हो जाता है। सप्तम नाद के सुनने से गुप्त बातों का भेद जानने में आता है। अष्टम नाद में सुरति के स्थिर हो जाने से सूक्ष्म गति हो जाती है, शरीर को अदृश्य किया जा सकता है। दूर की आवाज सुनाई देने लगती है। नवम नाद के श्रवण करने पर देवताओं की सिद्धि, अष्ट सिद्धि प्राप्त होती है। दशम नाद के सुनने और इस में तन्मय हो जाने से द्वन्द भाव नष्ट हो

जाता है। समस्त प्रकार के सन्देह नष्ट हो जाते हैं अपने रूप, आत्म रूप में स्थिति हो जाती है। इस में रमण करने से सन्त जीवन मुक्त हो जाता है परन्तु इन क्रियाओं का चिरकाल तक अभ्यास करते रहने से ही ऐसा होता है। नवम और दशम नाद में योगी के सम्मुख स्वभावतः ही सिद्धियां उपस्थित होती हैं, यदि इनके लोभ में आकर अपने साधन से पतित हो जाय, इनके वैभव मे फँस जाय तो, आत्म साक्षात्कार नहीं हो सकता। इसमें अतीव सावधानी से अपना बचाव करना चाहिए।

यों तो नाद समस्त सृष्टि में व्याप्त है और अहो रात्र प्राण शब्द गूँजता रहता है परन्तु इसके श्रवण करने के अर्थ जितनी शान्ति, एकान्त, तन्मयता और सांसारिक कार्यों के प्रति उदासीनता प्राप्त होनी चाहिए उतनी हर किसी को नहीं मिलती, इस लिए आन्तरिक नाद को सुनने की प्रक्रिया नियत की गई है और इसमें तन्मयता प्राप्त हो जाने पर बाहरी नाद, समिष्टि नाद का नित्यानन्द सरलता पूर्वक सुना जा सकता है। नाद प्रत्येक श्वास में सुनाई देता है। परन्तु इसका परिचय पूर्ण शक्ति सम्पन्न गुरु के बिना नहीं हो सकता। किसी २ मनुष्य का नाद दशम नाद स्वभावतः ही खुला होता है, परन्तु वह भी बिना गुरु के समझाये नहीं जाना जा सकता।

अतः गुरुदेव की खोज और सेवा करो। उनसे शिक्षा एवं ज्ञान प्राप्त करके नाद में रमण करो। वाद विवाद का त्याग करो। निजानन्द का आनन्द लो।

योग की सप्त भूमिका

संसार में जितने कर्म, क्रिया और साधन हैं। उनके पृथक २ क्षेत्र हैं, भिन्न २ सोपान हैं वे अलग २ हैं। इनकी कई भूमिका. सीढियाँ हैं। इन्हें क्रमश. परिष्कृत करने या पार करने लाँघने से ही पूर्णता प्राप्त होती है, अन्तिम स्थान पर पहुंचा जाता है। प्रत्येक सोपान को सावधानी से पार करनी चाहिये। लग्न, प्रेम, दृढता और चतुरता से प्रत्येक भूमिका में विचरण करते २ आगे की ओर सवेग किन्तु स्थिरता से वढ़ते रहना चाहिये। किसी भी वस्तु का एक २ अंग वनते २ ही उसका कलेवर पूरा होता है। यदि किसी अंग की रचना में प्रमाद किया, गलती की तो वह पदार्थ सुन्दर आकर्षक और उपादेय न वनेगा।

योग एक महान साधन है। ईश्वर से सम्वन्ध करना. अमरत्व को प्राप्त करना, आत्म-दर्शन करना है। कितना कठिन है यह साधन ! वहिर्मुख वृत्तियों को अन्तर्मुखी वनाना, पिशाच रूपी चञ्चल मन को निश्चल, अटल देवता वनाना है। सतत् सावधान गुरु सेवक और अटल विश्वासी वन कर ही इस ध्येय को प्राप्त किया जा सकेगा। यह रण क्षेत्र है यहाँ पर वड़े २ भयानक शस्त्र धारी सुभट शत्रुओं से डठ कर लोहा लेना पड़ेगा। काम क्रोधादि प्रति भट तुम्हें

घर मारने का सदा सर्वदा अवसर देखते रहेंगे। जरा चूकें कि काम भ्रष्ट हो जाता है।

सत्य रूपी साँग, तप रूपी तलवार क्षमा रूपी ढाल लेकर ब्रह्मचर्य रूपी वज्र का कवच पहिन कर अपने हाथ से अपना शीश काट कर गुरु देव के चरण कमल में भेंट कर देने वाला अहंता मिटा देने वाला शूर वीर ही इस रण क्षेत्र में विजय पा सकता है। यहाँ कायरों का काम नहीं है। सावधान !

हाँ, तो योग की ज्ञान की भूमिका सात होती हैं। यथा शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा सत्वापति असंसक्ति, पदार्था-भावनी और तुर्यगा या तुर्या इन सप्त भूमिका को क्रमशः पार कर लेने पर निर्वाण पद, मोक्ष आत्मानन्द प्राप्त होता है। हम इनका पृथक २ वर्णन करते हैं।

१ शुभेच्छा
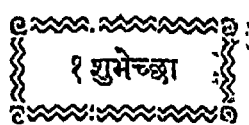
विषय में दोष का भान होने लगा, कथा अरु तीर्थ का भाव जागा।
कर्म शुभ धारणा वृत्ति बढने लगी, "शुभेच्छा" भूमि में चित्त लागा।
जगत के जाल से बचन के हेतु तब, विषय की ओर से दूर भागा।
गुरु के चरण से हुआ अनुराग दृढ़, "नाथ अमृत" कहे तोड़ धागा॥

संसार के नश्वर कामों में जब दोष (दुख) दिखाई देने लगा हो और कथा कीर्तन, तीर्थ यात्रा, शुभ कर्म धारण करने

की ओर वृत्ति अग्रसर होने लगी हो संसार के फन्द से बचने के लिए विषय भोगों की ओर से दूर हटा हो और गुरु चरण कमल में दृढ़ प्रेम उत्पन्न होने लग गया हो। श्री अमृत नाथ कहते हैं कि इस प्रकार जब संसार से सम्बन्ध त्यागने और शुभ कर्म करने की ओर मन लग जाय तब समझो "शुभेच्छा" भूमिका बन गई है।

२ विचारणा

आत्म के दरश की चित में रुचि हुई, तत्व के लक्ष्य का ध्यान आया।
जगत से नेह तज, सच्चिदानन्द भज, गुरु की दया से ज्ञान पाया॥
नित्य अभ्यास में चित लगने लगा, सत्य की खोज की ओर छाया।
"नाथ अमृत" कहे प्रगटी "विचारणा" आपके रूप का ध्यान लाया॥

(उपर्युक्त शुभ इच्छा जब कुछ काल तक बनी रहती है तब) मैं अपने आप को जानूँ आत्मा के दर्शन करूँ इस प्रकार का विचार जब चित में उत्पन्न हो और गुरु देव की शिक्षा प्राप्त करके संसार से पूर्णतः ममता हटा कर सच्चिदानन्द ईश्वर का भजन करने का अभ्यास बढने लग जाय, सत्य तत्व की खोज करने में चित लगने लग जाय। श्री अमृत नाथ कहते हैं कि उस समय समझो अपने रूप को पहिचान ने का विचार दृढ़ हो गया अर्थात् द्वितीय भूमिका बन गई इसमें चिरकाल तक सावधानी के साथ रमण करते रहो।

३ तनुमानसा

सत्य की खोज से गुरु की मौज से,

मन की सुसैन्य से युद्ध ठाना।

इन्द्रिय दमन और वृत्ति के शमन से,

श्वास ही श्वास का तान ताना॥

महा स्वाधीन मन शान्त होने लगा,

भूमि "तनुमानसा" रूप पाना।

"नाथ अमृत" तभी स्वाद आने लगा,

नासिका भाग पर नयन लाना॥

श्री गुरु देव की दया से सत्य तत्व की खोज करते समय जब मनकी प्रबल सेना (काम क्रोधादि) से युद्ध होने लगे अर्थात् काम क्रोधादि का वेग उत्पन्न हो तब इन्द्रियों के दमन और इच्छा शान्त करने से जब परम स्वाधीन मन शान्त होने लग जाय और नासिकाग्र भाग पर नेत्रों को स्थिर किए हुए श्वास के ध्यान में वृत्ति ठहरने लग जाय। श्री अमृत नाथ कहते हैं कि उस समय समझ लो कि तृतीय भूमिका 'तनु-मानसा' बन गई है। इस प्रकार चिरकाल तक अभ्यास करते रहो।

४ सत्वा पति
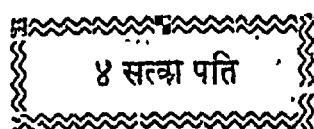
अटल आसन लगा सत्य भासन लगा,

ज्ञान के सूर्य का तेज बाढा।

'सत्वा पति' भूमि का उदय होने लगा,

विजय के द्वार पर आय ठाढा।

"नाथ अमृत" सदा शान्ति रहने लगी,

सिन्धु अरु लहर का भेद काढा।

होय चैतन्य तब योग के पन्थ में,

गुरु के चरण में प्रेम गाढ़ा॥

चिरकाल तक आसन लगने लग जाय, सत्य का प्रतिविम्ब दिखाई देने लग जाय और ज्ञान रूपी सूर्य का तेज बढ़ने लग जाय, शान्ति रहने लग जाय, जीव और ईश्वर में भेद नहीं है यह निश्चय होने लग जाय, चैतन्यता पूर्वक योग के मार्ग में आगे बढ़ते रहा जाय और गुरु देव के चरण में प्रगाढ़ प्रेम बना रहे। श्री अमृत नाथ कहते हैं कि जब सफलता मिलने की आशा हो जाय तब समझो कि चतुर्थ भूमिका "सत्वापति" का उदय हो गया है।
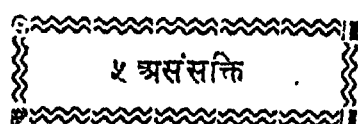
५ असंसक्ति

पञ्चमी "असंसक्ति" ज्ञान बल बढ़ गया,
लहर विज्ञान की चढ़न लागी।
दूर अभिमान हो जग उठी साधुता,
श्रेष्ठता वृत्ति में बढ़न लागी ॥
इन्द्रि मन आप में आप निश्चल भये,
अष्ट विधि पूर्ण ध्वनि होन लागी।
"नाथ अमृत" कहे क्षीण भ्रम हो गया,
आप में आप की वृत्ति लागी ॥

जब ज्ञान का बल बढ़ जाय और अद्वैतता की लहर उठने लग जाय, अहंकार मिट जाय और शान्ति व्याप्त हो जाय, वृत्तियाँ पवित्र बन जाय, इन्द्रियाँ और मन शान्त हो जाय और आठ प्रकार का नाद सुनाई देने लग जाय। श्री अमृतनाथ कहते हैं कि जब अपने आपमें आनन्द आने लग जाय और भ्रम मिटने पर आजाय तब समझ लो कि पञ्चमी भूमिका "असंसक्ति" का उदय हो गया।

६—षष्ठी भूमिका-का पदार्थाभावनी
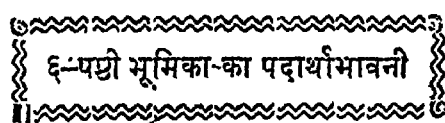
आप अरु जगत का द्वन्द जाता रहा,
मृत्तिका, पात्र का भेद नाशा।

स्वर्ण भूषण नहीं भिन्न ज्यों एक हैं,
नीर अरु लहर सब एक भासा ॥
सूर्य अरु ताप में भेद कुछ है नहीं,
'पदार्था भावनी' का प्रकाशा ।
'नाथ अमृत' कहे सन्त सत जानियो,
नहीं सेवक कोऊ नहीं दासा ।

मैं और संसार भिन्न २ हूं, यह द्वन्द भाव मिट जाय, मिट्टी और इसके पात्रों का भेद मिट जाय, स्वर्ण और इसके आभूषणों में जो भिन्नता दिखाई दे रही है यह नष्ट हो जाय जल और इसको तरङ्गे समान दिखाई देने लगे, सूर्य और इसके प्रकाश में जो भेद दृष्टि बन रही है इसका अभाव हो जाय। जब इस प्रकार का कार्य कारण सम्बन्ध सर्वथा नष्ट हो जाय। श्री अमृतनाथ कहते हैं कि हे सन्तो सत्य मानो ऐसी अवस्था हो जाय, इस प्रकार पदार्थों का अभाव हो जाय तब समझ लो कि छठी भूमिका पदार्थाभावनी का उदय हो गया है।

७—सप्तम भूमिका तुर्यगा

तुरिय में द्वन्द, निर्द्वन्द कुछ है नहीं,
जाय कुछ नहीं और नहीं आवे ।
मैं नहीं तू नहीं आप ही आप है वढे,
छीजे नहीं पीवे खावे ॥

ध्यान ध्याता नहीं ज्ञान ज्ञाता नहीं,

ज्ञेय अरु ध्येय को कौन पावे।

'नाथ अमृत' कहे रंकना भूप है,

उनमनी रूप है सन्त गावे॥

सप्तम भूमिका तुर्या में द्वन्द्व और निर्द्वन्द्व की भावना का भी अभाव हो जाता है। आने, जाने, बढ़ने, घटने आदि क्रियाएँ नष्ट हो जाय, मैं और तू इस भाव का अत्यन्ताभाव हो जाय केवल आप ही आप शेष रह जाय, ध्यान, ध्यानी, ज्ञान और ज्ञानी यह साधक और साधन का द्वैत भाव नष्ट हो जाय तब ध्येय और ज्ञेय के प्राप्त करने का भाव दूर हो जाय रङ्क और भूप अर्थात् ईश्वर और जीव का भेद भाव मिट जाय। सन्त श्री अमृत नाथ कहते हैं कि जब इस प्रकार उदासीन भाव बन जाय, जागृत अवस्था में भी सुषुप्ति अवस्था बनी रहे तब समझलो यह तुरिया अवस्था है।

यह सप्त भूमिका एक प्रकार से राज योग के अष्टाङ्ग का ही दूसरा स्वच्छ और संक्षिप्त रूप है। इन में प्रथम और द्वितीय भूमिका बहिरंग है, इन दोनों में अत्यन्त सावधानी सतत चैतन्यता और प्रबल जागृत भाव रखने की आवश्यकता है। यह सफलता प्राप्त करने का मूल है। मूल नींव जितनी ही दृढ़ होगी सफलता रूपी भवन भी उतना ही चिरस्थायी होगा। जब यह दोनों भूमिका उत्तमता से पार करली जायगी, काम,

क्रोध, लोभ, मोह के धक्कों से चित्त चलायमान होना रुक जायगा, सांसारिक हानि लाभ का राग, द्वेष दूर हट जायगा, सत्य संग वास्तव में बन जायगा तब अन्य चार भूमिका सरलता से पार की जा सकेंगी और समय भी ज्यादा न लगेगा।

परन्तु भाई बातें कहने सुनने से ही तो काम चलेगा नहीं, यह तो जीवित-मृत्त हो जाने से, अपने आपको भस्म कर डालने से बनने वाला काम है। शूरवीरों का काम है। यदि वीर हो तो आओ इस मार्ग पर। मेरे वचन पर विश्वास करो इसके अनुसार चलो तभी नित्यानन्द प्राप्त कर सकोगे, अन्यथा नहीं।

पूर्ण योगी, आत्मदर्शी या सच्चे वेदान्ती के लक्षण

प्राचीन कर्मों के प्रारब्ध के बल से या वर्तमान के सतत् संयम, कठिन साधन अथक लग्न अथवा ईश्वर की कृपा या श्री गुरु देव की अनुकम्पा से, चाहें जिस प्रकार भी हो जिस सौभाग्य शाली मानव का चित निश्चल हो गया, चञ्चल मन महादेव स्वरूप हो गया, आत्मा अपनी स्वयं स्थिति में अवस्थित हो गया, द्वन्द भाव का सर्वथा नाश होकर स्थित प्रज्ञ अवस्था को प्राप्त करली वास्तव में उस ही नर पुङ्गव को

मानव तन का सत्य आनन्द प्राप्त हुआ है ! उस ही का जीवन सफल बना है !!

इस अवस्था के विषय में क्या कहा और लिखा जा सकता है। यह आनन्द नित्यानन्द तो केवल अनुभव का ही विषय है। इस महान् जटिल प्रश्न के सम्बन्ध में जिन महान् आत्माओं ने जो कुछ लिखा है या प्रत्यक्ष में वचन द्वारा सुनाने की कृपा की है उसी आधार पर मैं भी कुछ लिखने का साहस करता हूँ। किन्तु वास्तव में तो इस अवस्था का आनन्द भुक्त भोगी महात्मा लोग ही जानते हैं और वे ही कह सकने में समर्थ हैं [यह भी साथ ही है कि "जाने सो कहता नहीं कहे सो जाने नाहिं"।

तथापि साधारणतः स्थित प्रज्ञ पुरुष का कुछ परिचय कराने उनके रहन सहन व्यवहार आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करने कराने के लिए निम्नाङ्कित पद्य बहुत कुछ लाभ दायक और पथ प्रदर्शक होंगे। इन पद्यों में लिखे भाव और व्यवहार को देख कर विवेक शील और साधु सेवी पुरुष जान सकेंगे कि ब्राह्मि स्थिति वाले मनुष्य ऐसे होते हैं। इतना जान लेने पर अपनी सेवा और प्रेम के बल पर इन लोगों के द्वारा कुछ वास्तविक लाभ प्राप्त कर सकेंगे। इस विषय में आपके निम्न विचार हैं।

प्रश्न—ब्रह्मज्ञान जिनको मिले, लखे रुप निज माहिं।
भेद कहो उनका गुरो, शंकर बलि बलि जाहिं ॥।

उत्तर—जो लखले निज रूप को, जीवन मुक्त कहाय।
चार रूप तिनके कहूँ, 'अमृत' विरले पाय ॥
प्रथम जान 'उन्मत्त' अरु, पुनि गम्भीर विचार ॥
'धीर' 'वीर' "अमृत" कहे, है मेरा निर्धार ॥

अपने रूप को जाने हुए अर्थात् ब्राह्मि स्थिति प्राप्त पुरुष चार दशाओं मे रहते हैं। उन्मत्त, गम्भीर, धीर और वीर इन अवस्थाओं का हम आगे वर्णन करते हैं।

गम्भीर के लक्षण

तत्व को पाय निश्चिन्त भये, मन मग्न हुए नहीं भेद कहे हैं।
मौन रहे, न विवाद करें, न विषाद उन्हें न प्रमाद लहे हैं ॥
सब जानत है, पै अजान बने, निर्मान रहे नहीं मान चहे हैं।
'अमृत' जीवन मुक्त भये, ऐसे सन्तन को गम्भीर कहे हैं।

आशय—जो मनुष्य आत्म तत्व को पाकर अर्थात् ब्राह्मि स्थिति में पहुंच कर जन्म मरण रूपी महान् दुख और सांसारिक नश्वर व्यवहार की चिन्ता से सर्वथा मुक्त हो गये हैं वे आत्मानन्द में मग्न तन्लीन हैं और अपने गूढ़ रहस्य को किसी पर प्रकट नहीं करते हैं। वे मौन रहते हैं किसी प्रकार का विवाद नहीं करते हैं। उनको न किसी प्रकार की चिन्ता होती है और न दुःख सुख का ही भान होता है, वे किसी अपनी

इच्छानुसार कार्य में कभी प्रमाद नहीं करते हैं। वे सब कुछ अर्थात् संसार का आदि अन्त और वर्तमान जानते हुए भी अजान से बने रहते हैं। वे संसार के मनुष्यों से किसी प्रकार का मान नहीं चाहते निर्मान हो कर रहते हैं। श्री अमृत नाथ जी कहते हैं कि जिन जीवन मुक्त सन्तों में इस प्रकार के लक्षण रहते हैं या जिनका ऐसा व्यवहार होता है उनको "गम्भीर" कहते हैं। अर्थात वे आत्म तत्व में मग्न और संसार से सर्वथा उदासीन रहते हैं। यह तुरियावस्था वाले सन्त हैं।
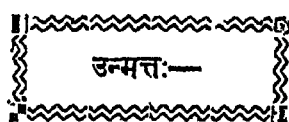
रूप लखा अपना जब हो तब, सत्य असत्य की जान परी है।
मिथ्या-प्रपञ्च में देख फँसा जग को निज चित्त में ग्लानी भरी है॥
रोवे कभी झुंझलावे कभी, हँस देत कभी कभी मौन धरी है।
स्वाद में लीन मलीन से दीखत, ऐसी दशा "उन्मत्त" खरी है॥

आशय—जिन्होंने अपना रूप—आत्म रूप देख लिया अर्थात् ब्राह्मि स्थिति प्राप्त करली उन को ज्ञात हो जाता है कि सत्य क्या है और असत्य क्या है। वेदान्त के केवल एक मात्र सूत्र "सत्यं ब्रह्म जगन्मिथ्या" को जान लिया, मान लिया और इस भाव में स्थित हो गये और नित्यानन्द के अतिरिक्त इनके

लिये कुछ भी न रह गया। किन्तु सांसारिक लोगों को मिथ्या प्रपञ्च में फँसा हुआ देख कर इनके चित्त में ग्लानि उत्पन्न होती है, चिढ़ पैदा होती है। इसीलिये वे कभी रोने लगते हैं क्योंकि अपने ही रूप अन्य जीवों को दुःख चिन्ता आदि में देख कर उन्हें आत्म पीड़ा होती है। कभी झुंझलाते हैं, क्योंकि संसार के नश्वर व्यवहार में मदान्ध हुए अपने ही रूप अन्य जीव में देखते हैं। कभी हँस देते हैं क्योंकि इन्हें ध्यान आता है कि माया कैसी प्रबल है कि जो ईश्वर के शुद्ध अंश जीव को किस प्रकार अपने चक्र में फँसाया रख कर जन्म जन्मान्तर से भव सागर में गोते लगवा रही है। कभी यह लोग मौन धारण कर लेते हैं क्योंकि इन्हें विचार आता है कि संसाम में जो कुछ हो रहा है सब ठीक है। सब अपने २ किये का फल पाते हैं और परमात्मा की नाट्य शाला का कार्य अथक और अबाध गति से चल रहा है। यह आत्मानन्दी पुरुष अपने आनन्द में लीन हुए अमृत सागर में निवास करते हैं। परन्तु बाहर से इनका शरीर मैला कुचैला, रहन सहन में सांसारिक दृष्टि से अव्यवस्था और पागल पन दिखाई देता है। जिन महात्माओं में ऐसे लक्षण हैं और जिनका ऐसा व्यवहार दिखाई देता है उन्हें "उन्मत्त" कहे जाते हैं। इनको अपने शरीर का ध्यान बहुत कम रहता है, इनके शरीर की आकृति विराट में मिल जाती है। यह तुरियावस्था प्राप्त है।

"धीर"—
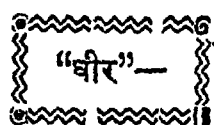
आत्म विवेक हुआ जिन को,
सब विश्व को आपके भीतर पाया।
वेग बढे जब धीरज धार के,
आप ही आपके मांहिं समाया॥
जिज्ञासु आय के प्रश्न करे,
ताको युक्ति से सत्य का पन्थ दिखाया।
गुप्त रहे पर दुःख हरे,
ऐसे ज्ञानी को "अमृत" धीर बताया॥

आशय—जिनको आत्म ज्ञान हो जाता है, वह संसार को समग्र विश्व को अपने शरीर में देख लेते हैं। ऐसा होने से यह अपने आप को अतिलुत शक्ति शाली पाते हैं। इनमें ब्रह्माग्नि प्रज्वलित हो जाती है और इसका असहनीय वेग बढ़ता है। ऐसी स्थिति में इन्हें अपने शरीर की सर्वथा विस्मृति हो जाती है किन्तु श्री गुरु देव की कृपा व अपनी सहन शक्ति के वल से इन्हें धैर्य धारण होता है और डांवाडोल न होकर अपने आप में समा जाते हैं। जिस प्रकार अत्यन्त वेग से प्रवाहित होता हुआ सरिताओं का जल समुद्र में आकर शान्त और स्थिर हो जाता है। उसी प्रकार आत्म ज्ञान रूपी सरिता का जल ब्रह्म रूपी महा सागर में पहुंच कर विलीन, सुस्थिर,

और अचल हो जाता है। ऐसे सन्त जन संसार को कल्याण मार्ग दिखलाने में समर्थ होते हैं, इनके पास जब कोई जिज्ञासु और दुखी मनुष्य आते हैं और इन से सहायता चाहते हैं और यह यदि उसको योग्य पात्र समझते हैं तो योग भक्ति, वैराग्य आदि किसी भी प्रकार की युक्ति से सत्य रूप के दर्शन करा देते हैं। परन्तु अपनी शक्ति को गुप्त रखने के लिये उदासीन की भाँति सांसारिक कार्य भार का भी संचालन करते रहते हैं, इससे साधारण मनुष्य इन्हें वास्तविक रूप में जान नहीं सकते हैं। यह दुखित जन समाज का दुःख मिटाने में सहायक होते हैं और कभी २ अपने अद्भुत चमत्कार भी दिखला देते हैं। ऐसे सन्त पूर्ण कार्य कुशल और उदार चेता होते हैं। श्री अमृतनाथ जी कहते हैं कि जिन सन्त जनों में ऐसे लक्षण और शक्ति होती है उनको 'धीर' कहते हैं। यह तुर्यावस्था में तन्मय होते हैं।

४—धीरः—
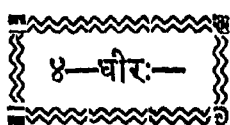
पूर्ण अवस्था को प्राप्त भये,
अरु अक्षय कोष के नाथ बने हैं।
लाखों के दुःख दरिद्र हरे,
सदा आप ही आप के मांहि सने हैं॥
आप तिरे अरु औरों को तारे हैं,
सत्य के पन्थ चलाये घने हैं।

अमृत 'वीर' वही जग में,
जाने भक्तों के पापों के पुञ्ज हने हैं ॥

आशय—जो सन्त पूर्ण अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् जो नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त ब्रह्म भाव में सम्यक रूपेण समा जाते हैं। "ब्रह्म विद् ब्रह्मैव भवति" अर्थात् ब्रह्म का जानने वाला ब्रह्म के समान होता है। इस सूत्र के अनुसार जो जीव अपने सनातन स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त हो जाते हैं, वह कभी भी नाश न होने वाले भण्डार के स्वामी बन जाते हैं। ऐसे ब्रह्म स्वरूप सन्तों के द्वारा लाखों मनुष्यों के दुःख दूर होते हैं। इनकी कृपा से दरिद्रता और रोग से पीड़ित अशान्त जन समुदाय को सुख और शान्ति मिलती है, इनकी अमृत मय-सत् शिक्षा से बहुत से जीव भव-ताप से उद्धार पाते हैं, कुमार्ग गामी सुमार्गी बनते हैं। इन सन्तों का सम्पूर्ण मानव जीवन मनुष्य ही नहीं प्राणी मात्र की सहायता, सुधार, उद्धार और कल्याण करने के अर्थ होता है। इन सन्तों के द्वारा ईश्वर की ईश्वरता पूर्ण रूप से प्रकाश में आती है। यह सन्त खाते, पीते, चलते, फिरते, सोते, जागते सदा सर्वदा अपने ही रूप में अवस्थित रहते हैं। यह स्वयं भव से उद्धार पाकर आश्रित जन समुदाय का भी उद्धार करने में समर्थ होते हैं। इनकी शिक्षा के द्वारा जन समाज सन्मार्ग पर चलता है। यह अतीव शक्ति शाली, उदार, दयालु और दुःख भञ्जन होते हैं। इनके प्रभाव से इनके शिष्य लोग नवीन पन्थों का प्रचार

करते हैं और इन पन्थों के द्वारा चिरकाल तक जन समुदाय इनके निर्दिष्ट मार्ग पर चल कर कल्याण प्राप्त करते हैं। सारांश यह है कि इह लोक और परलोक की कोई ऐसी बात नहीं जो इन सन्तों के द्वारा पूर्ण न हो सकती हो। श्री अमृतनाथजी कहते हैं कि जो सन्त अपने अनन्य भक्त और आश्रित जन समुदाय के घोर पापों को नष्ट करने में समर्थ होते हैं उन्हें संसार में "वीर" कहते हैं। यह अवस्था जागृत तुरिय होती है।

उपर्युक्त चारों प्रकार के सन्त एक ही पद में आसीन हैं एक ही तत्व को इन्होंने प्राप्त किया है, इनका भाव भी एक ही प्रकार का होता है और इस स्थिति का जो अन्तिम परिणाम है वह भी एक ही है। अर्थात् इन चारों में तात्विक भेद नहीं है। चारों जीवन मुक्ति का आनन्द भोगते हैं, चारों निर्बन्ध हैं, चारों तुर्या अवस्था में हैं चारों आवागमन से रहित हैं। सारांश यह है कि चारों सब प्रकार से एक हैं। किन्तु फिर भी इनके रहन सहन और व्यवहार में भेद है। रहन सहन ही नहीं इनके कार्य शक्ति, स्वभाव, प्रभाव और वर्ताव में अन्तर होता है।

अब हम इस गहन प्रश्न पर विचार करेंगे और इसे हल करेंगे।

१—जिस प्रकार किन्ही मनुष्यों को किसी भी प्रकार से धन मिला और यह धनी कहलाये। अब यह चाहे जिस

प्रकार अपने धन का उपयोग कर सकते हैं। यथा कृपण-णता, मितव्ययता, अपव्ययता और उदारता से। धन है मनुष्य हैं किन्तु उपयोग कैसा कर रहे हैं।

२—एक ही माता पिता से उत्पन्न होकर एक ही प्रकार से पोषण और शिक्षण पाकर भी भाग्य, कर्म, ज्ञान और बुद्धि में भेद रहता है। इसका कारण प्रारब्ध है।

बात यह है कि पदार्थ प्राप्त हो जाने पर भी प्रारब्ध के अनुसार भोगने में आता हुआ देखा जाता है। इन सन्तों की भी यही दशा है। प्रारब्ध के अनुसार ही रहना पड़ता है।

१—एक को आत्म दर्शन हुआ कि वह इस के आनन्द से तृप्त हो कर शान्त हो जाता है। इनको इस बात का विचार नहीं आता कि संसार मेरा ही रूप है इसके कल्याण की चेष्टा करूँ। यह तो अपने आनन्द में गम्भीरता धारण करके मस्त रहते हैं अपनी शक्ति को भूल जाते हैं।

२—इसी प्रकार आत्म तत्व मिला कि यह अपने आप को भूल जाते हैं और पागल बन जाते हैं। अतः कुछ करने धरने की शक्ति मुरझा जाती है और उन्मत्त बने फिरते हैं।

३—ऐसे ही किसी को आत्म प्रकाश हुआ और अनन्त शक्ति प्राप्त हुई। इसके वेग से डावां डोल होने लगते हैं किन्तु किसी भी प्रकार यह अपने आपको सम्हाले रखते हैं, यह

अपनी शक्ति से काम लेने की योग्यता रखते हैं किन्तु बड़े धैर्य, चतुराई से कार्य करते हैं और यदा कदा इनके द्वारा जन समाज का उपकार भी हो जाता है। इनके धैर्य की मात्रा प्रबल होती है अतः इन्हें 'धीर' कहते हैं

आत्म भाव का उदय हुआ और परम प्रकाश व्याप्त हुआ। इस प्रकाश के आनन्द में जो सन्त प्रफुल्लित हर्षित और पुलकित रहते हैं। इन्हें अपनी शक्ति का पूर्ण ज्ञान रहता है और यह इस शक्ति से इच्छानुसार कार्य करते हैं। यह उदार दयालु, पारदर्शी, निर्भीक और परमानन्द स्वरूप होते हैं। इनके सम्मुख उन्मत्त, गम्भीर और धीर सन्त नत मस्तक रहते हैं। इस प्रकार इन पूर्ण शक्ति शाली सन्त के अनन्त भण्डार से संसार का अतीव और चतुर्मुखी (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) उपकार होता है। यही "ब्रह्मविद ब्रह्मैव भवति" सूत्र को सार्थक करते हैं। इनकी वीरता से समग्र संसार भयभीत रहता है। जीवन मुक्त पुरुषों में यह श्रेष्ठतम होते हैं, अतः वीर कहलाते हैं।

यही है इन चार प्रकार के पुरुषों का तात्विक भेद। वीर सन्त तुर्यावस्था में पूर्ण जागृत रहता है।

स्वरोदय अङ्ग

[प्रश्न]

भेद स्वरोदय का कहो, सतगुरु दीन दयालु।
मैं जिज्ञासु हूं पूछता, करिये कृपा कृपालु॥

[उत्तर]

स्वर का रूप

स्वर कहते हैं श्वास को चले सुपुम्ना माहि ।
पहुंच आज्ञा चक्र में, इडा पिङ्गला जाहिं ॥१॥
सत, रज तम का रूप है, तीनों नाड़ी जान ।
इडा पिंगला, सुपुम्ना, 'अमृत' कर पहिचान ॥२॥

स्वभाव

चन्द्र इडा को कहत हैं, इसका शीतल भाव ।
सूर्य पिंगला जानिये, रखता उष्ण प्रभाव ॥३॥
सुपुम्न सम शीतोष्ण है, विरला जाने भेद ।
सूक्ष्म ज्ञान 'अमृत' कहे दूर करे तन खेद ॥४॥

स्थान

बाएं स्वर चलती इडा, वहां चन्द्र का वास ।
पिंगल दाहिने स्वर चले, करता सूर्य प्रकाश ॥५॥
दोनों स्वर जब चलत है, मध्य कहत है ताहि ।
यही [1] सुपुम्ना रुप है, 'अमृत घट के माहिं ॥६॥

तत्व

इडा पिंगला, सुपुम्ना पञ्च तत्व है साथ ।
'अमृत' भेद बतावई, धर गुरु चरणन माथ ॥७॥
जाने जो गति स्वास की, और तत्व का रङ्ग ।
समय २ पर होत है, भिन्न २ यह सङ्ग ॥८॥
पीत वर्ण है पृथ्वी का, सीधी गति पहिचान ।
द्वादश अंगुल चलत है, 'अमृत' निश्चय जान ॥९॥

---

१ स्वरोदय की भाषा में ।

रक्त रङ्ग ऊपर चले, अग्नी अंगुल चार।
सोलह अंगुल श्वेत रङ्ग, नीचे जल को धार ॥१०॥
हरित रङ्ग टेढी गति, अंगुल अष्ट प्रमाण।
'अमृत' वायु स्वरुप है, सुनियो सन्त सुजान ॥११॥
श्वास चले स्वर दोय से, बाहर आवे नाहिं।
श्याम रङ्ग आकाश का, अमृत घट के माहिं ॥१२॥

समय

कृष्ण पक्ष है भानु का, शुक्ल पक्ष है चन्द्र।
सूरज के दिन तीन है, पुनः तीन दिन चन्द्र ॥१३॥
पक्ष लगत प्रातहि उठे, स्वर का करे विचार।
उचित मार्ग पर जो चले, 'अमृत' सुखका सार ॥१४॥
कृष्ण पक्ष चन्दा चले, शुक्ल पक्ष जो भानु।
क्लेश हानिया रोग है, अमृत निश्चय जानु ॥१५॥
दहिने स्वर पिंगल चले, जहां सूर्य का राज।
निश्चय ही चर कार्य हो, 'अमृत' सुख का साज ॥१६॥
चन्द्र अङ्ग बाए इडा, स्थिर कामों के हेत।
'अमृत' निस्सन्देह हो, खोजो काया खेत ॥१७॥
तीन दिवस हैं सूर्य के, शनि-मङ्गल अरु दीत।
सोम, गुरु, बुद्ध और भृगु, चन्द्र चलन की रीत ॥१८॥

कार्य

स्नान ध्यान, औषधि, विषय लेन देन रण, वाद।
दहिने स्वर के कार्य चर, 'अमृत' दूर विषाद ॥१९॥
ब्याह-दान, औषधि, भवन, दत्तक, योग विचार

पान जान स्थिर कार्य है, अमृत बाएँ धार ॥२०॥
बाएँ लघु शंका करे, शौच दाहिने जाय।
दाएँ स्वर भोजन करे, बाएँ जल हित पाय ॥२१॥
सुषुमन कोई तत्त्व हो, नहीं करे कुछ काज।
शान्त होय अजपा जपे, कहते 'अमृत' गाज ॥२२॥

प्रश्न—जल पृथ्वी दहिने चले, प्रश्न करे स्थिर आय।
सन्मुख बाएँ ऊर्द्ध से, उत्तम कार्य बनाय ॥२३॥
दहिना स्वर चर कार्य का, अग्नि वायु का मेल।
दायाँ हो पूछे कोई, 'अमृत' पूरा खेल ॥२४॥
अग्नि वायु बाएँ चले, स्थिर कारज को जान।
पृथ्वी, जल चर कार्य को दहिनी दिशि पहिचान ॥२५॥
प्रच्छक का अरु आपका, जब स्वर मिलता एक।
कार्य तुरत 'अमृत' बने, संशय मत कर नेक ॥२६॥
बाएँ स्वर से आय कर, प्रश्न करे जो कोय।
पुत्र होय शंका नहीं, 'अमृत' निश्चय जोय ॥२७॥
बाएँ स्वर में प्रश्न हो, दहिना उसका होय।
लड़की हो 'अमृत' कहे, निश्चय जानो सोय ॥२८॥
चन्द्र माँहि गति श्वास की, प्रश्न करे जो आय।
रोगी का नहीं नाश है, 'अमृत' सत्य सुनाय ॥२९॥
प्रश्न आय कोई करे, सूरज की गति संग।
आयु नहीं रोगी मरे, काया होगी भंग ॥३०॥

मृत्यु

श्वास दाहिना जो चले, तीन रात दिन तीन।
काया बारह मास है, 'अमृत' जान प्रवीण ॥३१॥
दो दिन तक पिंगल चले, आयु वर्ष दो जान।
आठ प्रहर से आयु है, वर्ष तीन पहिचान ॥३२॥
इड़ा माहिं जो श्वास है, सोलह दिन एक साथ।
एक मास जीवन रहे, कहते 'अमृत' नाथ ॥३३॥
सूर्य और गति श्वास की, दिवस तीस इकतीस।
दो दिन जीवन शेष है, 'अमृत' बिस्वा बीस ॥३४॥
बाएँ नहीं दहिने नहीं, चले सुषुम्ना श्वास।
घड़ी पाँच के प्राण हैं, 'अमृत' का विश्वास ॥३५॥
इड़ा पिंगला है नहीं, नहीं सुषुम्ना होय।
मुख से श्वासोच्छ्वास है, चार घड़ी तन खोय ॥३६॥

यात्रा

दहिने स्वर यात्रा करे, पूरब उत्तर माहिं।
दक्षिण पश्चिम जाइये, बाएँ चित्त उछाहिं ॥३७॥

भविष्य

नया वर्ष आरम्भ हो, चले चन्द्र में श्वास।
प्रातःकाल विचारिये, शुभ सम्बत् विश्वास ॥३८॥

दाहिने स्वर से जानिये, सम्वत् मध्यम रूप।
सुषुमन माँहि अकाल हो, लड़े परस्पर भूप ॥३९॥
आप मरे दुख सृष्टि में, जाना रोग निवास।
वर्षे नहीं न अन्न हो, 'अमृत' का विश्वास ॥४०॥

स्वर बदलना

सूरज से चन्दा करे, करे सूर्य से चन्द।
उत्तमता रहती नहीं, फल हो जाता मन्द ॥४१॥
बाएँ से यदि दाहिना, करे कार्य वश कोय।
उसी ओर को दाबिये, सम्भव है गति होय ॥४२॥
चलना हो यदि चन्द्र में, सूरज में गति होय।
तीन धरे पग चन्द में, सूरज यों भी जोय ॥४३॥

सूक्ष्म तत्व

भानु चले जो रात को, चन्द चले दिन माँहि।
दूर मृत्यु संशय नहीं, रोग न काया पाँहि ॥४४॥
शीत उष्ण सम राखिये, अपना अहार विहार।
यही तत्व का तत्व है, कहता बारम्बार ॥४५॥
जो चलता गति श्वास की, वह दुनियाँ से दूर।
नहीं योग जग कार्य के, पराधीन भर पूर ॥४६॥

मुख्य तत्व स्वर का यही, काया रहे निरोग।
जो फँसते जग कार्य में, उनको लगता रोग ॥४७॥
गुरु की शिक्षा के बिना साधन करिये नाहिं।
दुःख मिलेगा जगत में, दुखी रहे तन माहिं ॥४८॥
भीतर हो गति श्वास की, प्रश्न करे जो कोय।
निश्चय कारज सिद्ध हो, सूक्ष्म तत्व यह जोय ॥४९॥
मुख्य तत्व का तत्व है, श्वास माहिं रत होय।
स्वर का येही सार है, आत्म तत्व को जोय ॥५०॥
भेद स्वरोदय का कहा, अपने अनुभव जान।
साधन से कारज बने, 'अमृत' कर पहिचान ॥५१॥
राम भरोसे जो चले, उनको दुख नहीं नेक।
ऊँच नीच नहीं शुभ अशुभ, अमृत श्रेष्ठ विवेक ॥५२॥

आशय—स्वरोदय के सम्बन्ध में जो पद्य लिखे गये हैं वह सरल और सुगम हैं अतः इनका अर्थ लिखने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। किन्तु इस विषय में आप के जो सूक्ष्म विचार हैं उनको थोड़े में यहां लिखा जाता है।

स्वरोदय का आशय है श्वास का मार्ग। श्वास का मार्ग है सुषुम्ना नाड़ी, इसका स्वभाव समशीतोष्ण है। किन्तु आहार विहार विपरीत होने (समशीतोष्ण न होने) के कारण श्वास की गति स्वभाव तीव्र और मलीन हो जाती है। सुषुमना नाड़ी नाभि कमल से उठा कर श्वास को आज्ञा चक्र में पहुं-चाती है और यहां पर त्यागे हुए श्वास को इड़ा या पिंगल

नाड़ी नासिका द्वारा बाहर कर देती है प्राण के स्थूल भाग को त्याग देती है। यदि शरीर में शीतलता होती है तो इड़ा चन्द्र मार्ग द्वारा श्वास ग्रहण किया जाकर बाहर आता है और शरीर में उष्णता विशेष होती है तो पिंगला-सूर्य द्वारा श्वास ग्रहण किया जाकर त्यागा जाता है। इड़ा चन्द्रमा का स्वभाव शीतल है और पिंगला-सूर्य का स्वभाव उष्ण है अतः अपने स्वभावानुसार ही यह दोनों नाड़ियां श्वास का ग्रहण और त्याग करती हैं।

क्यों कि दिन में सूर्य के ताप के कारण स्वाभाविक ताप रहता है अतः इस ताप से शरीर को और इसके धातुओं को बचाने के अर्थ चन्द्रमा इड़ा नाड़ी द्वारा श्वास त्याग की आवश्यकता है और रात को चन्द्रमा की शीतलता के कारण स्वाभाविक शीतलता होती है अतः इसके शीत से शरीर को सुरक्षित रखने के अर्थ सूर्य पिंगला नाड़ी द्वारा श्वास के त्याग की आवश्यकता है। इसी प्रक्रिया से शरीर को दशा समशीतोष्ण रह सकती है। अर्थात इड़ा नाड़ी तरी उत्पन्न करता है इसका स्वभाव शीतल है और पिंगला गर्मी पैदा करती है इसका स्वभाव उष्ण है। सार यह है कि रात को पिंगला और दिन में इड़ा नाड़ी द्वारा श्वास बाहर आना चाहिए इससे शरीर निरोग बलिष्ट और निश्चिन्त रहता है और यही जीवन का आधार है।

मुख्य बात तो यह है कि आहार विहार यदि समशीतोष्ण रहता है तो श्वास गति उचित रहती है और इसके विपरीत

अर्थात गर्मी या सर्दी न्यूनाधिक हो जाने से श्वास की गति भी प्रतिकूल हो जाती है।

शरीर का रुग्ण होना और आयु क्षीण होने का कारण श्वास की गति का विपरीत होना है। प्रतिकूल आहार विहार से श्वास की गति तीव्र और मलिन हो जाती है। सुषुमना नाड़ी जो कि श्वास का मार्ग है तीव्र और मलीन श्वास के आवागमन से प्राणों के संघर्ष से जर्जर हो जाती है! अतः शरीर के रोगी होने पर या निरोग दिखाई देते रहने पर भी जर्जर सुषुम्ना नाड़ी प्राणों के आघात को सहन नहीं कर सकती है अतः प्राण वायु का सञ्चालन वन्द हो जाता है।

स्वर के अभ्यासी की धारणा अनुकूल और प्रतिकूल श्वास के कारण उत्तम और मध्यम—शान्त और अशान्त होना स्वाभाविक है। धारणा शक्ति के बल पर ही वह किसी प्रश्न कर्ता को अच्छे या बुरे, अनुकूल या प्रतिकूल उत्तर देता है और वह अधिकांश में सत्य होते हैं। क्योंकि समस्त घटों (शरीरों) में एक ही प्रकार के पदार्थ हैं परन्तु सर्व साधारण को इसकी धारणा नहीं है और उसकी (स्वर के अभ्यासी) की धारणा शक्ति बलवान होने के कारण उसके अनुकूल प्रभाव पड़ता है और वैसे ही कार्य होते हैं। यह साधना चिरकाल से प्रचार में आयी हुई है और साधन करने वालों का अनुभव परिपक्व होता गया है। इस अनुभव को लेख बद्ध कर दिया गया है जो कि स्वरोदय कहलाता है।

यह है इस विषय (स्वरोदय) का अनुभूत वैज्ञानिक तत्व और सत्य रूप।

वास्तव में तो श्वास की गति में तन्मय होना ही इसका मुख्य तत्व है और इसी से पञ्च तत्व के शरीर पर पड़ने वाले सूक्ष्म प्रभाव का ज्ञान और आत्म रूप की प्राप्ति हो सकती है। शेष तो एक प्रकार का सांसारिक व्यवसाय चलाने का साधन है जो कि लाभदायक होते हुए भी मनुष्य के लिये एक प्रगाढ़ बन्धन है। ऐसा मेरा चिरकाल का अनुभव है। इस पर साधक को विश्वास करना चाहिये।

आहार बिहार अङ्ग

(प्रश्न)

श्री मुख से मैंने सुना, गुरुवर वारम्वार।
चित्त वृत्ति तव शान्त हो, सुधरे आहार विहार॥
कैसा भोजन पान हो, निद्रादिक व्यवहार।
करके कृपा बताइये, शंकर सत् निर्धार॥

(उत्तर)

सुधरे आहार विहार तब, होवे वृत्ति पवित्र।
रोग मुक्त काया रहे, 'अमृत' विमल चरित्र॥

हुए चिकित्सा अब तलक, परिडत सन्त महान ।
इस आवश्यक विषय पर, दिया न विधिवत् ध्यान ॥

मनुष्य शरीर अन्नमय है. यह अन्नमय कोष है। यह सप्त धातु की बनी हुई चैतन्य मूर्ति है यह समस्त प्रकार के कर्म कर सकने में समर्थ है। शरीर के रोगी होने पर किसी प्रकार का भी साधन हो सकना कठिन हो जाता है। जैसा भोजन, पान, आचरण और संग होगा वैसे ही धातु शरीर में बनेंगे, उसी प्रकार का व्यवहार और आचरण मनुष्य करेंगे और तदनुसार फल मिलना तो अनिवार्य है ही।

अब तक किसी भी साधु परिडत और वैद्य ने इस आवश्यक विषय पर ठीक तरह ध्यान नहीं दिया। मैंने अपने चिरकाल के अनुभव और कठोर प्रयोगों के द्वारा जो ज्ञान इस विषय का प्राप्त किया है उसे सर्व साधारण जनता के सम्मुख प्रकट करता हूँ। जनता को चाहिये कि मेरे आदेशानुसार अपने आहार-विहार, रहन सहन का सुधार करे जिससे सुख पूर्वक जीवन व्यतीत हो और आत्म दर्शन कर सकें। देश कालानुसार भोजन व्यवहार का ध्यान रखना आवश्यक है।

सात्विक, राजस और तामस तीन प्रकार के भोजन होते हैं। इनमें सात्विक सुख दायक, राजस दुःखदायक और तामसिक रोग, भ्रान्ति और अज्ञान दायक हैं।

संसार की रचना में तमोगुण का प्राधान्य है तमोगुण उष्णता प्रधान है गर्मी देने वाला है. अतः मनुष्य शरीर में गर्मी ज्यादा है इसलिए शीतल पदार्थों का सेवन ज्यादा करना चाहिए। शीत प्रधान देशों में निवास करने वाले मनुष्यों को कभी २ समशीतोष्ण पदार्थों का सेवन करना चाहिए। निरे गरम पदार्थों का सेवन करना तो कभी भी उचित और लाभप्रद नहीं है।

शरीर की रक्षा, सञ्चालन और जीवन के लिये भोजन आवश्यक है, अतः भोजन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि कोनसा पदार्थ खाया जा रहा है, इसे कितने परिमाण में ठीक तरह पचाने की शक्ति है, इसके द्वारा शरीर पर क्या प्रभाव पड़ेगा। ऐसा न हो कि स्वाद या लोभ में फँस कर अनाप शनाप सब कुछ और चाहे जितना खा लिया जाय। पेट को भाड़ या आवा बना लिया जाय। जो पदार्थ सरलता से पच सके, मन और शरीर को शान्ति पहुंचावे पाचन क्रिया ठीक तरह हो जाय और पचने के पश्चात् अच्छे धातु शरीर में बन सके, ऐसे पदार्थ खाना चाहिए क्यों कि "जैसा पावे अन्न पाणी, वैसी उपजे बुद्धि वाणी" "या दृशं भक्ष्यते अन्न बुद्धिर्भवति ता दृशा" इस उक्ति के अनुसार भोजन करते समय सावधानी रखना अत्यन्त आवश्यक है। मुख्यतः साधक को सावधान रहना चाहिये।

मैं अपना अनुभव कहूं, सुनलो ध्यान लगाय।
क्षुधा खूब चैतन्य हो, तब ही भोजन पाय ॥१॥
शान्त बैठ कर खाइये, यह है उत्तम बात।
खाली राखे उदर कुछ, सुखी रहे ज्यों गात ॥२॥
हलका अरु स्निग्ध हो, ठण्डा करके खाय।
'अमृत' छोटा ग्रास हो, ताको खूब चबाय ॥३॥

हे मनुष्यों! भोजन के विषय में अपना अनुभव बतलाता हूँ ध्यान देकर सुनो। जिस समय क्षुधा भली भाँति चैतन्य हो तब शान्ति से बैठ कर हलका (शीघ्र पचने वाला) थोड़ा चिकना और ठण्डा किया हुआ भोजन, छोटे ग्रास लेकर तथा खूब चबा कर खाना चाहिये पेट को थोड़ा खाली रखना चाहिये जिससे शरीर सुखी रहे और श्वास भली भाँति आ सके।

अन्न और फल मनुज के, दो ही मुख्य आहार।
मांस आदि को खाय जो, उनको ग्रसे विकार ॥१॥
वृत्ति माहिं तामस रहे, कभी न पावे शान्ति।
निश्चय करके जानियो, उनकी मिटे न भ्रान्ति ॥२॥
अपनी जिह्वा स्वाद हित, हने शरीर अनेक।
ते शठ अति दुख पावते, होता नष्ट विवेक ॥३॥

मनुष्य शरीर की रचना (इसके दाँत और नख आदि) बनावट देखने से जाना जा सकता है। और मेरा अनुभव है

कि मनुष्य का आहार अन्न और फल है। जो मनुष्य मांस और अण्डे आदि खाते हैं उनको रोग होते हैं, वृत्ति में गरमी और क्रोध रहते हैं। उनको कभी भी शान्ति नहीं मिलती और निश्चय करके जानो कि उनका भ्रम कभी भी दूर नहीं होता। जो मनुष्य अपने स्वाद के लिये अनेक तरह के शरीरों को मारते काटते हैं वह मूर्ख कभी सुख नहीं पा सकते और उनका पवित्र ज्ञान नष्ट हो जाता है।

अन्न

खावे जो अरु बाजरा, चावल, चना, जुवार।
मूँग, मोठ चोलासु पचे, अमृत का निर्धार ॥१॥
गेहूँ पचता देर में, करता अपच विकार।
उड़द इसी सम जानिये, मकई धान सुधार ॥२॥
साधारण आटा रखे, लेवे करड़ा गूँध।
सम रोटी सेके भली, खाये चित नहीं रूँध ॥३॥

अन्न के विषय में मेरा अनुभव है कि जो, बाजरा, मूँग, मोठ, चोंला मकई, चावल, जुवार सरलता से पचने वाले हैं। गेहूँ और उड़द गरिष्ठ हैं, कठिनाई से पचते हैं, अपच करते हैं। आटा साधारण अर्थात् न ज्यादा महीन हो और न मोटा हो, इसे करड़ा गूँध कर साधारण रोटी बनाकर अच्छी तरह सेंक कर और घृत युक्त करके खाना चाहिये। ऐसा करने से चित प्रसन्न और शरीर निरोग रहता है। देश काल के अनुसार अन्न खाना चाहिये। जिस प्रान्त में जो अन्न अधिकता से उत्पन्न होता है उसे ही खाना अच्छा होता है।

बाजरा गर्म अन्न है चना दस्त साफ लाने वाला तथा मोठ और चोंला वायु को साफ रखने वाले हैं।

फल और मसाले

मिर्च, मसाले, मिठाई, तेल और अमचूर।
आचारादिक त्यागे से रोग रहत है दूर ॥१॥
आम गरम फल है महा, खरबूजा दुःख रूप।
इनको कभी न खाइये, निर्णय मेरा अनूप ॥२॥
गाजर, मूली, मतीरा, नारंगी, अंगूर।
दाड्डू, सेवरु जामफल, करते हैं दुःख दूर ॥३॥

मिर्च आदि नाना प्रकार के मसाले (जीरा और धनिया नहीं) तेल अमचूर और कई तरह के आचार (नींबू, आँवला नहीं) इनको न खाना चाहिये, क्योंकि यह गरमी करते हैं उत्तेजक हैं वीर्य आदि धातुओं को दूषित बनाते हैं। इसी प्रकार मिठाई भी (आवश्यकता पड़ने पर गुड़, शक्कर का सामान खाया जा सकता है) रोग उत्पन्न करती है। इन चीजों के खाने से इन्द्रियाँ चटोरी बनती है पाचन शक्ति खराब हो जाती है और रोगी होना पड़ता है। फलों में गाजर मूली, मतीरा, नारंगी, अंगूर, जामफल-अमरूद इनको खाने से शरीर स्वस्थ्य रहता है। खरबूजे और आम बहुत गरमी करते हैं इन्हें नहीं खाना चाहिये। इसी प्रकार अरंड ककड़ी,

लुकाट, कटहल, गूलर आदि गरम और उत्तेजक हैं। बिल्व फल, गूँदी, नास्पाती, सरदा, मौसमी तर फल हैं।

शाक

टिण्डा, भिण्डा, करेला, बेंगुन वथुआ रोग।
चौलाई, साँगर, फली अमृत सुख दे भोग ॥१॥
प्याज, घिया अरु आँवला पोदीना सुख रूप।
आलू करता कब्ज है, समझो बात अनूप ॥२॥
शाक सदा थोड़ा भखे, पतला और पवित्र।
शनैः २ हो जात है, इससे विमल चरित्र ॥३॥

शाकों में टींडसा, करेला, बेंगुन और वथुआ गर्म है। भिण्डो गरिष्ट है, आलू कब्ज करता है। चौलाई गँवारफली साँगरे घिया, प्याज, पोदीना, आँवला यह लाभदायक हैं। पालक, मेथी, सूआ, चूका सम शीतोष्ण है। शाक शुद्ध और पतला खाना चाहिये, इससे धीरे २ पेट साफ हो जाता है। इसके अतिरिक्त शकरकन्द, सिंघाड़े, टिमाटर गरिष्ट और गोभी, रतालू कैथ यह अच्छे शाक हैं। लहसुन खाना अच्छा नहीं है।

जल

नीर स्वच्छ ठण्डा पिवे, मिट्टी के घट राख।
या तूँवा सुख रूप है यह 'अमृत' की साख ॥१॥
धातु पात्र जल विगड़ता, स्वाद रहित गुण हीन।
इन में जल रखना बुरा, समझो बात प्रवीण ॥२॥

जितना अन्न आहार हो, पाँच गुणा जल पीय ।
अमृत' निस्सन्देह है, यह युक्ति सुखनीय ॥३॥

मिट्टी के घड़े या तूँबे में भरा हुआ जल जो कि ठण्डा और स्वच्छ होता है पीना चाहिये । धातु के पात्र में रखना ठीक नहीं क्योंकि इसमें जल स्वाद हीन और दोष युक्त हो जाता है। जितने अन्न का आहार करें उससे पाँच गुणा जल पीना चाहिये । श्री 'अमृत नाथ' कहते हैं कि यह युक्ति बड़ी सुन्दर है, इससे पाचन शक्ति ठीक रहती है । भोजन के मध्य में थोड़ा जल पीना चाहिये ।

बहुत से मनुष्यों के मुख में दुर्गन्ध आती रहती है। इसे मिटाने के अर्थ यह पान आदि सुगन्धित पदार्थ खाते हैं। परन्तु यह दुर्गन्ध वास्तव में मुख से नहीं पेट में से आती है। कारण कि इनका पेट पाकस्थली सड़ने लग जाती है क्योंकि यह थोड़ा पानी पीते हैं अतः पाचन अच्छी तरह नहीं होता और पाकस्थली भली प्रकार स्वच्छ नहीं रहती । पानी पर्याप्त पीना चाहिये इससे उदर स्वच्छ रहता है और शरीर चंगा तथा स्वस्थ रहता है ; बहुत से रोग तो पानी पीने से ही मिट जाते हैं और काम क्रोधादि का वेग भी इससे मन्द पड़ता है। पाँच गुणा पानी पीना साधारण अवस्था के लिये है, विशेष दशाओं मे पानी न्यूनाधिक मात्रा में समयानुसार पीना चाहिये ।

जहाँ का पानी भारी, रोग कारक हो उसे गरम करके और मिट्टी के पात्र में ठण्डा करके पीना चाहिये। या जिस घड़े में जल रहे उसमें वालू मिट्टी रखनी चाहिये इससे जल का भारी पन मिट जाता है।

वस्त्र

'अमृत' जब तक हो सके, खुला राखिये अङ्ग।
शीत उष्ण सहता रहे, है यह श्रेष्ठ प्रसंग ॥१॥
खुली हवा में रहे से, रोग न होय शरीर।
यह विचार अतिश्रेष्ठ है, ध्यान देय सुन धीर ॥२॥
वस्त्र बहुत कम धारणा, मोटा हो अरु स्वच्छ।
वाल बढ़ा शृंगारना है दुःख सुन निष्पच्छ ॥३॥

जहाँ तक सम्भव हो शरीर को खुला रखना चाहिये। शीत और उष्ण तथा हवा सहन करने से खुली हवा में रहने से शरीर बलवान, दृढ़ और निरोग बनता है। वस्त्र बहुत कम पहिनना चाहिये और जो भी पहिने वह मोटे और साफ़ सुथरे होने चाहिये। शिर के वालों को बढ़ा कर इन्हें सुधार २ कर चाहे जैसे अनाप शनाप तेल बाजारू तेल लगा कर शृंगार करना दुःख का रूप है।

भारतवर्ष की प्राचीन प्रथा को देखने से पता चलता है कि इस देश के बड़े से बड़े मनुष्य भी बहुत कम वस्त्र पहिनते थे। ऋषि, मुनी, साधु ही नहीं बड़े २ राजा यहाँ तक कि श्री राम और कृष्ण भी बहुत कम वस्त्र पहिना करते थे। इस

देश का जल वायु सम शीतोष्ण है और रहन सहन बहुत सादा-साधारण रहा है। मुसलमान और अंग्रेजों के इस देश में आने से यहाँ का वेप-भूषा-खान पान वस्त्र पोशाक विगड़ गया है। वर्तमान काल में तो खान पान वस्त्र पोशाक इतने भ्रष्ट हो गये हैं कि इनसे शरीर निर्बल, रोगी हो गये हैं और जाति की दशा चिन्ता जनक स्थिति को पहुंच गई है। खर्चे बहुत बढ़ गये हैं और विदेशी वस्तु के प्रयोग ने देश को कंगाल बना दिया है।

वैसे तो वस्त्र पहिनना प्रकृति की रचना के विरुद्ध है ही परन्तु वर्तमान काल में जो एक मनुष्य अकारण ही तीन कपड़े शरीर पर पहिनता है यह विलकुल व्यर्थ है हानिकार है। चाहे पसीने में भीगे रहें परन्तु कोट तो पहिनना चाहिये। रंग विरंगे और पतले कपड़े पहिनना तो भले मनुष्य का काम नहीं है। यह रोग शहरी मनुष्यों में विशेष है। वस्त्रों के विषय में भारी सुधार की आवश्यकता है।

नशा

नशा कभी नहीं कीजिए, इससे बिगडे वृत्ति।
चित्त भ्रान्त हो जात है, पाओ शीघ्र निवृत्ति ॥१॥
धन, यश, आदर, शान्ति का इससे होवे नाश।
भजन नहीं बन सकत है, चिन्ता करे निवास ॥२॥
नशा होय निज नाम का, उतरे ना दिन रात।
मग्न रहे 'अमृत' सदा, है सुख दायक बात ॥३॥

नशा नहीं करना चाहिये। इससे चित्त वृत्ति बिगड़ जाती है, चित्त पागल के समान हो जाता है। धन, यश और आदर का नाश हो जाता है, भजन में चित्त नहीं लगता, चिन्ता बनी रहती है। निज नाम का अर्थात भगवान के भजन का आत्म चिन्तन का नशा प्राप्त करना चाहिये जो चढने के पश्चात उतरे ही नहीं और सदा सर्वदा इसमें मग्न रहे। श्री 'अमृतनाथ' कहते हैं कि इस सुख देने वाले उपदेश को मानों अर्थात् नशा मत करो।

अमृत तन विश्राम हित, डेढ प्रहर ले सोय।
अधिक नींद लेना बुरा, सुन लेना सब कोय ॥१॥
आयु घटे तन चीण हो, अति निद्रा के काज।
इससे जाग्रत ही रहो, चढो भजन की पाज ॥२॥
जिसने जीती नींद को, करत २ अभ्यास।
'अमृत' पद सन्यास में, पाया दिव्य प्रकाश ॥३॥

शरीर को विश्राम देने के अर्थ थकावट दूर करने के लिये डेढ प्रहर अर्थात् साढे चार घन्टे निद्रा लेना चाहिये। ज्यादा सोना बुरा है इससे आयु घटती है शरीर आलसी और निर्बल होता है। इससे ज्यादा मत सोओ जाग्रत रहो और भजन करते रहो। जिसने अभ्यास करते २ निद्रा को जीत ली है वह सन्यासी है और दिव्य प्रकाश अर्थात् आत्म दर्शन को प्राप्त कर लेता है।
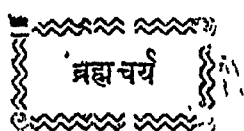
'अमृत' काया भवन को, वीर्य प्रकाशन हार।
जो है इच्छुक ज्ञान का, ब्रह्मचर्य्य ले धार ॥१॥
कर्म, वचन, मन से कभी भोग और मत जाय।
ब्रह्मचर्य का बल बढ़े, तब निज दर्शन पाय ॥२॥
जिनका वीर्य अखण्ड है, अर्द्धमुक्त है सोय।
'अमृत' घट में पायँगे, वीर्यवान जो होय ॥३॥

श्री अमृत नाथ कहते हैं कि काया रूपी मन्दिर को प्रकाशित करने वाला दीपक वीर्य है। जो मनुष्य ज्ञान प्राप्ति की आत्मदर्शन की इच्छा रखता है, उसे मन वचन और कर्म से कभी भी भोग करने की इच्छा न करनी चाहिए। जो अखण्ड वीर्य धारण करने वाले हैं उनकी आधी मोक्ष तो स्वभावतः ही हो जाती है और आगे चल कर वह आत्मानन्द प्राप्त कर लेता है। अपने शिखर स्थित अमृत को वही पा सकते हैं जो अखण्ड वीर्य वान-उर्ध्वरेता है।

मनुष्य जो भोजन करता है, उससे शरीरस्थ सप्त धातु (रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र) बनते हैं। भोजन के पाचन से सर्व प्रथम रस बनता है, फिर लोहू मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और सबके अन्त में शुक्र अर्थात वीर्य

बनता है। वीर्य के पश्चात् ओज बनता है जो शरीर कान्तिमान चमकीला बनाता है। मनुष्य के खाये हुए भोजन का वीर्य एक मास में बनता है। रक्त की ४० बिन्दुओं से वीर्य की एक बिन्दु बनती है। समझना चाहिए कि वीर्य कितना अमूल्य पदार्थ है! यह शरीर का आधार, बल बुद्धि, शान्ति, साहस, धैर्य और आत्मदर्शन इसी के बल पर प्राप्त होते हैं। वीर्य का पतन मृत्यु और धारण जीवन है "मरणं बिन्दु पातनात् जीवनं बिन्दु धारणात्"। यह प्राचीन अनुभवी महात्माओं का वचन है और व्यवहार से भी सिद्ध है अतः वीर्य की रक्षा करो। भाई! वीर्य रक्षा तो जीवन मरण का प्रश्न है, जो सुख पूर्वक जीवित रहना चाहें उन्हें वीर्य की रक्षा करनी ही चाहिए। इसी से मन निश्चल होता है।

ग्रहस्थी मनुष्यों को चाहिए कि संयम से रहें! स्त्री प्रसङ्ग सन्तानोत्पत्ति के अर्थ ही स्त्री प्रसङ्ग करे, विलास के लिए नहीं। शरीर वीर्य से बनता है, वीर्य को व्यर्थ खोना मनुष्य की हत्या करना है। अपने मन में गणना लगाओ कि अब तक कितनी नर हत्या की हैं! इसका पाप कैसे मिटेगा! "बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेय" जो कुछ हो गया उसके लिये पश्चाताप करो और आगे के लिए सावधान रहो।

रोग

युक्ताहार विहार से, रोग न होय शरीर।
यदि कर्मन के चक्र से, हो जावे कुछ पीर ॥१॥

अपने अहार बिहार का, कर सुधार तत्काल।
सूर्य, वायु, जल, मृतिका औषधि महा विशाल ॥२॥
रहे प्रकृति के आश्रय, औषधि लेवे नाहिं।
लंघन कर 'अमृत' कहे, मोहन काया माहिं ॥३॥

उचित आहार विहार करते हुए रोग कभी नहीं होता और कर्म वश हो ही जाय तो प्राकृतिक उपचार करो। धूप, हवा, जल और मृत्तिका आवश्यकतानुसार सेवन करो। खान पान में तत्काल सुधार करो, औषधि मत लो, लङ्घन करो। शूर वीर की भाँति शरीर का मोह त्याग दो। प्रकृति के आश्रित रहो, समझलो कि मरना तो आगे पीछे है ही।

रोग होने का अर्थ है शरीर में कोई अनावश्यक और हानिकर पदार्थ उत्पन्न हो गया है अपने आहार विहार के विकृत होने से प्रकृति उस पदार्थ को निकाल बाहर करना चाहती है। औषधि सेवन इस प्राकृतिक कार्य में बाधा डालेगा, रोग मिटेगा नहीं, कुछ काल के लिये दब जायगा, फिर दूसरे रूप में प्रकट होगा, भयङ्करता से प्रकट होगा। तब क्या करोगे, फिर औषधि लोगे। इस प्रकार शरीर निकम्मा होता चला जायगा। प्रकृति को अपना कार्य करने दो, धैर्य और साहस से काम लो। यदि न रहा जाय तो प्राकृतिक पदार्थों का उपचार करो–इनका सेवन करो। जल, वायु मृत्तिका और धूप, का उपचार करो विचार पूर्वक। इनको सेवन करने का

ज्ञान कर लेना चाहिये प्रत्येक मनुष्य को। लंघन करना बहुत अच्छा है, जब तक क्षुधा प्रबल न हो मत खाओ, मौन रहो, एकान्त सेवन करो, हाय २ मत करो, वीर बन कर जीओ, कायरों की भाँति चिल्लाओं मत। समय आने पर सब ठीक हो जायगा, ईश्वर में विश्वास रखो मृत्यु के विना मर नहीं सकता और मृत्यु का समय आने पर कोई बच नहीं सकता।
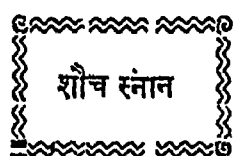
मूत्र और मल वेग को, कबहुं रोकिये नाहिं।
देह शुद्धि हित स्नान है, समझ देख मन माहिं ॥१॥
शीतल जल हो स्नान का, या ताजा से नहाय।
इससे मन कुछ टिकत है, समझ देख मन माहिं ॥२॥
आसन दृढ़ कर बैठना, नियत समय तक नित्त।
'अमृत' इस अभ्यास से, स्वस्थ रहत है चित्त ॥३॥

श्री अमृत नाथ कहते हैं कि मूत्र और मल की शंका का तुरन्त निवारण करना चाहिये। इन्हें रोकने से शारीरिक व्याधि उत्पन्न हो जाती है। शरीर को शुद्ध बनाने के लियें स्नान करना चाहिये। स्नान करने के लिये ठण्डा या ताजा जल अच्छा होता है, इससे मन रुकता है। (वृद्ध या रोगी मनुष्य गरम जल से नहा सकता है) स्नान के पश्चात् नियत

रूप से कुछ काल तक दृढ़ आसन लगा कर बैठना और आत्म चिन्तन या अपना नित्य कर्म करना अत्यन्त लाभ दायक है। इस प्रकार के अभ्यास से शरीर और मन निरोग रहता है। ठण्डे जल के स्नान से छिद्र खुल जाते हैं और शरीर के भीतर का मलिन वायु बाहर निकलता तथा बाहर का शुद्ध वायु प्रवेश पाता है।
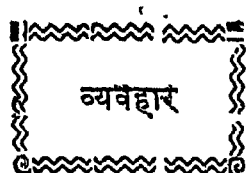
व्यवहार

शुद्ध सत्य व्यवहार हो, दुखे दुखावे नाहिं।
हो दयालु क्रोध न करे, धैर्य रखे चित माहिं ॥१॥
स्वार्थ वृत्ति से रहित हो, करें अतिथि सत्कार।
सन्तों का सत्संग हो, हटे कर्म का भार ॥२॥
गुरु जन की सेवा करे, सद् ग्रन्थों का पाठ।
'अमृत' निष्छल ही रहे, त्याग दम्भ का ठाठ ॥३॥

अपना व्यवहार पवित्र और सत्य रखो। न किसी को अपने कर्म से दुःख पहुंचाओ और न स्वयं ही दुःखी हो किसी के कर्म से। क्रोध मत करो, चित्त में दया और धैर्य रखो, जहाँ तक सम्भव हो स्वार्थ से दूर रहो, अतिथि सत्कार में भूल मत करो, साधु पुरुषों का सत्संग करो, ऐसा करने से तुम्हारे कर्मों का बोझा कम होवेगा। गुरु जन अर्थात् माता

पिता गुरु आदि की सेवा करो, सद् ग्रन्थों को पढ़ो, छल से दूर रहो, दम्भ पूर्ण कार्य मत करो।
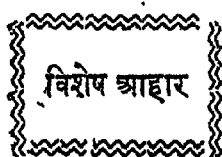
समय २ पर शहद का सेवन उत्तम जान।
रक्त शुद्ध इससे रहे, वृत्ति शान्त बलवान ॥१॥
दुग्ध, मठा, घृत, रावड़ी करे प्रेम से पान।
कभी २ लंघन करें, स्थिति शरीर की जान ॥२॥
यदा कदा रूखा भखे, होवे उदर पवित्र।
'अमृत' उनको ही मिले, जिनका विमल चरित्र ॥३॥

कभी कभी शहद-मधु का सेवन करना उत्तम है। इससे रक्त शुद्ध रहता है, वृत्ति शान्त और बलवान रहती है। दूध, छाछ, घृत और रावड़ी भी प्रेम पूर्वक पान करने योग्य हैं। शरीर की दशा देखकर कभी कभी लंघन करना अच्छा है इससे पेट साफ रहता है। इसी प्रकार कभी कभी रूखा भोजन खाना चाहिये इससे चरित्र में पवित्रता आती है।

मधु का सेवन बहुत ही लाभदायक है। यह शरीरस्थ समस्त धातुओं को शुद्ध रखता है। जिस धातु की शरीर में न्यूनता हो उसे पूर्ण कर देता है और जिस धातु में दोष होता है उसको शुद्ध करता है। यह वनौषधियों का रस है-इनका

मिश्रण है। छोटी मधु मक्षिका का मधु हलका और शीघ्र पचने वाला होता है और बड़ी का देर में पचता है परन्तु इनके गुण में कोई विशेष अन्तर नहीं है। वसन्त ऋतु का शहद बहुत गुण कर होता है, वर्षा का साधारण।

मधु को अमृत मानते हैं। इसे जल में दुग्ध में, छाछ में, घृत में, प्लाण्डू के रस में, छोटी हर्रे के साथ सौंफ के साथ सेवन किया जा सकता है। जल के साथ (एक छटाँक मधु और आधा सेर जल) पीने से रक्त को शुद्ध और ठण्डक करता है। दुग्ध के साथ (एक छटाँक शहद और आधा सेर दूध) पीने से रक्त की वृद्धि करता है। छाछ के साथ (एक छटाँक शहद और आधा सेर छाछ) पीने से अत्यन्त ठण्डक करता है। घृत के साथ (आधी छटाँक शहद और डेढ़ छटाँक घृत) खाने से गर्मी बढती है। प्लाण्डु के रस के साथ (एक छटाँक शहद और दो छटाँक प्लाण्डु का रस) पीने से वीर्य को बढाता है। छोटी हर्रे के साथ (२ तोला हर्रे का चूर्ण और ६ तोला शहद) खाने से पेट साफ रहता है। सौंफ के साथ (दो तोला शहद और दो तोला सौंफ का चूर्ण) खाने से रक्त को शुद्ध करता तथा तरी करता है। शहद का सेवन करने वाले को जल ज्यादा पीना चाहिये। शहद लेते समय उसकी शुद्धता की भली भाँति जाँच करनी चाहिये। रुई की बत्ती शहद में भिगोकर जलाना चाहिये यदि अच्छी तरह जल जाय तो शहद अच्छा है। यदि शहद का तार न टूटे तो

अच्छा है। शहद की सुगन्ध और स्वाद से भी इसकी जाँच होती है।

लंघन करने से वृत्ति निर्मल होती है, शान्ति आती है; आत्मबल बढ़ता है, पेट साफ़ रहता है। परन्तु शरीर की परिस्थिति देख कर लंघन करना चाहिये। कभी कभी रूखा अन्न खाना चाहिये इससे क्षुधा अच्छी लगती है।
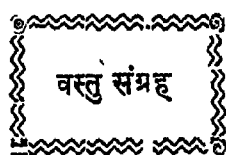
वस्तु संग्रह

अति संग्रह दुख रुप है, इससे चिन्ता होय।
मन इत उत भ्रमता रहे, शान्ति जात है खोय ॥१॥
जो है इच्छुक शान्ति का, तृष्णा को दे त्याग।
सन्तोषी होकर रहे, करे आत्म अनुराग ॥२॥
आवश्यकता कम करे, चिन्ता होवे दूर।
'अमृत' उनको मिलत है, जिन्हें प्रेम भरपूर ॥३॥

ज्यादा वस्तु संग्रह (अत्यन्त आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त) करना दुख और चिन्ता को बढ़ाता है और इससे मन इधर उधर भ्रमता रहता है, शान्ति नष्ट हो जाती है। अतः सन्तोषी बनो, सांसारिक पदार्थों के प्रति वैराग्य रखो और आत्म प्रेम उत्पन्न करने की चेष्टा करो। अपनी आवश्यकताओं को जहां तक सम्भव हो कम करो। इससे निश्चिन्तता आती

है। जो ज्ञान के इच्छुक हैं उन्हें नाशमान पदार्थों का संग्रह नहीं करना चाहिये क्यों कि इससे नाश की ओर गति होती है।

आचरण

साधन में तत्पर रहे, स्तुति निन्दा दे त्याग।
दूर इच्छा प्रतिकार की, तजे सोही वड़ भाग ॥१॥
सकल जगत से प्यार हो, नीकी शिक्षा देय।
राग, द्वेष को त्याग दे, समता में सुख लेय ॥२॥
क्षमा हृदय में धार कर, विचरे जग के माहिं।
'अमृत' एकाकी रहे, भवन वनावे नाहिं ॥३॥

अपने स्थिर किये हुये साधन में लगे रहो, निन्दा और स्तुति से दूर रहो। प्रतिकार अर्थात् बदला लेने की इच्छा न करने वाला ही संसार में धन्य है। समस्त संसार से प्रेम करो उत्तम शिक्षा देते रहो, राग द्वेष को हटा कर क्षमा को धारण करो वृत्ति में समता रखो और शान्ति के साथ भ्रमण करते रहो श्री अमृत नाथ कहते हैं कि अकेले रहो, भवन न बनाओ अनिकेत रहो।

आयु
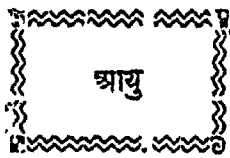
मानव तन की आयु है, क्रोड़ वाणवे श्वास।
चलत सहस इक्कीस है, दिवस रैन विश्वास ॥१॥
एक मिनट में आत है, पन्द्रह समगति श्वास।
शान्ति काल की बात है, जाने गुरु का दास ॥२॥
उचित खान पानादि से, चले श्वास सम रूप।
शीत उष्ण सम राखिये, अमृत भेद अनूप ॥३॥

मनुष्य शरीर की आयु ९२००००००० बाणवे क्रोड़ श्वास की है एक दिन रात में २१६०० श्वास आते हैं और मिनिट में १५ श्वास आते हैं। यह है शान्ति काल की बात। (बैठत-पन्द्रह चालत ठारह, बोलत आवे बीस। भोग काल में चौसठ आवे निद्रा माहीं तीस) खान पान व्यवहार के उचित रहने पर ही श्वास समगति से चलता है अन्यथा विषम हो जाता है। श्री अमृत नाथ कहते हैं कि शीतोष्ण को सम रखने की अनुपम युक्ति को जानना चाहिए।

कष्ट साध्य साधन
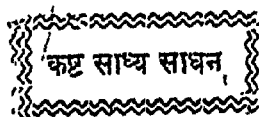
राजयोग, हठयोग की, कही क्रिया बहु भाँति।
इनके भी अतिरिक्त जो, है पाई विख्याति ॥१॥

झूला बाँधन, धूनियाँ, और क्रिया विपरीत।
नाना विधि के कष्ट से, होता लाभ प्रतीत ॥२॥
यद्यपि यह कुछ काल तक, चमत्कार दिखलाय।
पर जब गर्मी होत अति, तब देवे अकुलाय ॥३॥

राज योग, हठ योग आदि की बहुतसी अनुभूत क्रियाओं का मैंने वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त भी कई प्रकार के कष्ट साध्य कर्म जैसे चौरासी धूनी, शीर्षासन, झूले में लटकना आदि जो इस समय प्रचार में आ रहें हैं, इनसे यद्यपि कुछ समय तक लाभ प्रतीत होता है, दर्शकों पर प्रभाव पड़ता है और वह सेवा करते हैं। परन्तु इन क्रियाओं से जब गर्मी ज्यादा बढ़ जाती है तब शरीर दुःखी हो जाता है। अतः इन क्रियाओं से बचे रहो।

नहीं आत्म सम देवता, नहीं श्वास सम जाप
तन समान मन्दिर नहीं, देख आप में आप ॥१॥
यही भजन अरु योग है, है नीका यह कर्म।
त्यागो वाद विवाद को, पालन कर निज धर्म ॥२॥
कण, मण, में वह एक है, ऐसा निश्चय होय।
मैं, तू द्वन्द हटाय कर, 'अमृत' आतम' जोय ॥३॥

❀ ॐ ❀

○ पद्य भाग ○

प्रथम खण्ड

ग्रन्थ रचना का निर्देश

❀ दोहा ❀

मेरे इस आरम्भ को, पूर्ण करेंगे आप।
'शंकर' दृढ़ आशा यही 'अमृत' प्रबल प्रताप ॥
जो शिक्षा दी आपने, गद्य रूप में नाथ।
उनको करता पद्य में, विनय भाव के साथ ॥
काव्य शास्त्र का ज्ञान तो बहुत न्यून मुझ माहिं।
केवल 'गुरु वरदान' बल, इसमें संशय नाहिं ॥
सत गुरु अमृत नाथ के, चरणन की हूं धूर।
'शंकर' इच्छा पूर्ण कर, दोष करेंगे दूर ॥

❀ ॐ गुरुदेवाय नमः ❀

आदि मध्य नहीं अन्त है, बने मिटे कुछ नाहिं।
'अमृत' रहता एक रस, तीन काल के माहिं॥

❀ श्री गुरु प्रार्थना और महिमा ❀

नमो सच्चिदानन्द को, नमस्कार सब वेष।
सतगुरु चम्पा नाथ को, बार बार आदेश॥१॥

सतगुरु प्रबल समर्थ है, दयासिन्धु जगदीश।
'अमृत' निशदिन चरण में, नम्र होय धर शीष॥२॥

अधम उबारण भय हरण, सतगुरु परम दयालु।
गुरु बिन दूजा है नहीं, 'अमृत' शीघ्र कृपालु॥३॥

जिसकी गुरु रक्षा करें, उसको दुःख न नेक।
'अमृत' चित्त में धारिये, दृढ कर ऐसी टेक॥४॥

सतगुरु 'चम्पानाथ' के बार बार बलि जाहु।
सत्य बचन 'अमृत' कहे, मम मति अमल उछाहु॥५॥

एक भरोसा एक बल, नहीं अन्य विश्वास।
'अमृत' निशदिन हो रहो, गुरु चरणन का दास॥६॥

जिसने सत गुरु को किया, अर्पण अपना शीष।
मिलती उसे अवश्य है, मुक्ति विश्वा बीस॥७॥

सतगुरु सन्मुख ना द्रवे, धृक वह बुद्धि विवेक।
'अमृत' वे नहीं पायँगे, मनुज जन्म फल नेक॥८॥

गुरु आज्ञा दे सो करे, देख करे कुछ नाहिं।
ऐसे गुरु मुखि पायंगे, सत्य पथ जग के माहिं ॥६॥
सतगुरु की शिक्षा विना, छूटे नहीं विवाद।
'अमृत' गुरु को ढूंढ ले, होवे दूर विषाद ॥१०॥
गुरु चरणन की धूरि को, धूर धूर कर जीव।
दूर दूर हो कष्ट से, भूरि भूरि मिल पीव ॥११॥
अब तो मूर्ख सचेत हो, आयु चली है बीत।
'अमृत' गुरु की शरण में, सीख भजन की रीति ॥१२॥

❀ कुण्डलिया ❀

मानव तन में जो तुझे पाना है आनन्द।
गुरु चरणन की शरण हो, दूर होय भव फन्द॥
दूर होय भव फन्द, भेद अन्तर का जाने।
मन चञ्चल थक जाय, रूप अपना उर आने॥
कहते 'अमृत नाथ' शान्ति आवे तब मन में।
'शंकर' दर्शन होय ब्रह्म का मानव तन में ॥१॥

❀ दोहा ❀

जय सतगुरु अशरण शरण, शरणागत प्रतिपाल।
विषय वासना हरण तुम, मेटन भव के जाल॥

❀ चौपाई ❀

जय सतगुरु तव चरण नमामी । अगम अगोचर अन्तर यामी ॥
भक्तन हित तव देह कृपाला । सत वादी अति रूप विशाला ॥
नाथ तुम्हीं मेरे सत् स्वामी । बार बार तव चरण नमामी ॥
भव सागर है अति दुख दाई । इससे मुझको लेहु बचाई ॥
काम क्रोध रिपु है मम संगा । इनको शान्त करो भव भङ्गा ॥
निर्मल ज्ञान हमें दो स्वामी । बार बार तव चरण नमामी ॥
राग द्वेष हट जाय हमारे । कर्म वचन, मन शरण तुम्हारे ॥
सुनिये 'अमृत नाथ' दयाला । 'शंकर' अब मेटहु भव जाला ॥

❀ दोहा ❀

चञ्चलता मन की हरो, भक्ति दान दो मोहि ।
जन्म मरण दुख हरण की, करूँ प्रार्थना तोहि ॥

❀ चौपाई ❀

सत्य कहूं गुरु देव कृपाला । तुम सम अन्य न दीन दयाला ॥
मात पिता भगिनी सुत भ्राता । स्वार्थ हेतु इन सब का नाता ॥
व्याधि काल में हो सब न्यारे । केवल रक्षक चरण तुम्हारे ॥
इससे तब चरणन की छाया । सुखद जान शरणागत आया ॥
दया करो मेटो भव जाला । भक्ति दान दो कर प्रतिपाला ॥
मन अति चञ्चल रुकता नाहीं । लगता नहीं भजन के माहीं ॥
दौड़ २ विषयन में जावे । ऊंच नीच का भाव न लावे ॥

नाना जन्म धराये जिसने। सुख दुख माहिं फँसाया इसने॥
इसका वेग प्रबल अति भारी। संग इन्द्रियां हैं मतवारी हैं॥
काम क्रोध, मद, लोभ, उपाता। इनके बल रहता मद माता॥
गुरु निर्बल से रुकता नाहीं। दया करो लो सेवा माहीं॥
सद्गुरु तुम अवधूत विलक्षण, 'शंकर' तव आश्रय है प्रतिक्षण॥

❀ दोहा ❀

गुप्त भेद को प्रकट कर, देय अविद्या टार।
भ्रम का तम संहार दे, सत गुरु परम उदार॥१॥
मन रचा संसार को, त्रिगुण फाँस फैलाय।
फँसा दिया है जीव को, सतगुरु करे सहाय॥२॥
माया के भ्रम जाल को, सत गुरु देय मिटाय।
'शंकर' सद् गति देत हैं, इसमें संशय नाय॥३॥
गुरु चरणन पर वारिये, तन, धन, मन, सुखभोग।
ममता ही ममता छूटे, कटे सकल भव रोग॥४॥
गुरु सम दानी कौन है, देते आतम ज्ञान।
'शंकर' निश दिन कीजिए, गुरु चरणन का ध्यान॥५॥
याचक है सारा जगत, दाता हैं गुरु देव।
आत्म-तत्व दर्शाय दे, करो चरण की सेव॥६॥
सत गुरु पूरे पारखी, जाने तन मन भेद।
निज चरणन में लेयकर, दूर करे भव खेद॥७॥
भव की बाधा में फँसे, व्याकुल हैं सब जीव।
दया होय गुरु देव की, 'शंकर' पावे पीव॥८॥

वचन गुरु के बाण है, लगे हृदय को साध।
घायल कर सुख देत है, 'शंकर' अद्भुत स्वाद ॥६॥

विरह व्यथा जिनको हुई, उनका जीवन धन्य।
सत गुरु दर्शन देयँगे, सेवक जान अनन्य ॥१०॥

गुरु शिक्षा है वारुणी, भर भर प्याले पीय।
'शंकर' मत वाले बनो, सदा सुखी हो जीय ॥११॥

इत उत क्यों भटकत फिरो, आओ गुरु की ओट।
समता लो ममता तजो, 'शंकर' मेटो खोट ॥१२॥

शिक्षा सुन गुरु देव की, करे वासना दूर।
'शंकर' सुरति समेट कर, मौन होय सो शूर ॥१३॥

चन्द्र एक गुरु देव हैं, हैं चकोर सब जीव।
मिलन हेतु व्याकुल रहें, कबहुंक पावे पीव ॥१४॥

स्वाति बिन्दु गुरु वचन है, चातक निर्मल जीव।
टेक धरे दुःख सुख सहे, प्यास हरे तब पीव ॥१५॥

दीपक श्री गुरु देव हैं, निर्मल जीव पतंग।
निर्भय हो आनन्द ले, भेंट करे निज अंग ॥१६॥

सत गुरु साँचे पारखी, जीव रत्न सम जान।
जैसे को तैसा रखे 'शंकर' कर पहिचान ॥१७॥

सत गुरु साँचे वैद्य हैं, रोगी हैं सब जीव।
औषधि देय निरोग कर, दर्शा दे निज पीव ॥१८॥

सत गुरु साँचे ज्योतिषी, दे ग्रह दशा बताय।
भिन्न करे सुख दुःख से, आया देय मिटाय ॥१९॥

गुरु शिक्षा सत् मंत्र है, सेवे निर्मल जीव।
सिद्ध होय सत् पद मिले, 'शंकर' पावे पीव ॥२०॥
यज्ञ कुण्ड गुरु चरण है, शिक्षा अग्नि पवित्र।
विषय भोग का हवन कर, 'शंकर' बनो विचित्र ॥२१॥
जीव भूल निज रूप को, सुख दुःख पा कल पाय।
सत गुरु चेतन करत हैं, दे निज रूप दिखाय ॥२२॥
बक-बक बादी हो गया, झख-झख झूठा जीव।
टक-टक ताका जगत को, 'शंकर' मिला न पीव ॥२३॥
भूला था निज रूप को, याद रहा जग-रूप।
सत गुरु ने चेतन किया, शिक्षा दियी अनूप ॥२४॥
सकल तीर्थ गुरु चरण में, सेवा जप-तप योग।
वचन वेद के वाक्य हैं, 'शंकर' हट गया रोग ॥२५॥

❀ दोहा ❀

ब्रह्म भाव की प्राप्ति अरु मोह तिमिर का नाश।
बिन गुरु दया न हो सके, धारो दृढ विश्वास ॥

❀ चौपाई ❀

करो चाहे त्रै देव अराधा। बिन गुरु दया मिटे नहीं बाधा ॥
वेद पढ़ो चाहे शास्त्र विचारो। कर विवाद जीतो जग सारो ॥
मुक्ति नहीं काशी दे पावे। गंगा सागर प्रयाग न्हावे ॥
पुष्कर हिम गिरि में फिर आओ। चाहे जा ब्रज में बस जाओ ॥
चारों धाम करो चाहे कोई। बिन गुरु दया न संशय खोई ॥

सत्कर्मों के बल यश पाओ। कर कर कविता ग्रन्थ बनाओ ॥
चतुर बनो चाहे मौन धराओ। तन के बल सब जगत हराओ ॥
नहीं चले कुछ भी चतुराई। बिन गुरु दया न सतपद पाई ॥

❁ दोहा ❁

बिन गुरु भक्ति न मिट सके, जन्म मरण का क्लेश।
महिमा अति गुरु चरण की; कहे शारदा शेष ॥

❁ चौपाई ❁

हरि हर अम्बा और गणेशा, सुरपति सूर्य न हरहिं कलेशा।
मात पिता अभ्यागत सेवा, पूजो सकल जगत के देवा।
चाहे जा बन में बस जाओ, भूखे रह रह देह सुखाओ।
जप, तप, यज्ञ करो चाहे कोई बिन गुरु दया न भव दुख खोई।
दान करो चाहे ध्यान लगाओ, चाहे हठ कर योग कमाओ।
अष्ट सिद्धि नव निधि मिल जावे, सकल सम्पदा कर में आवे।
तर्पण श्राद्ध करो चाहे कोई, बिन गुरु भक्ति व्यर्थ सब होई।
सदा करो सत गुरु की सेवा, उन सम अन्य नहीं कोई देवा ॥

❁ दोहा ❁

सत गुरु परम दयालु हैं, मेटैं भव सन्ताप।
काम क्रोध अरु लोभ का, दूर करे परिताप ॥

प्रार्थनाष्टक

व्याधि-टारण तप्त जारण, काम-मारण रक्षमाम्,
योग-धारी न्यायकारी, निर्विकारी पाहिमाम् ।
भेद भञ्जन भक्त-रञ्जन, सत्य सुख के धाम हैं,
ख्यात "अमृत नाथ" वारम्वार तोहि प्रणाम है ॥१॥

पाप-हारी मोक्ष-कारी, सत्य-धारी अति सुखी,
श्रेष्ठ-ज्ञानी निर्भिमानी, भेद पाते गुरु मुखी ।
सत्य-शिक्षा योग दीक्षा, भक्त के विश्राम हैं,
ख्यात "अमृत नाथ" वारम्वार तोहि प्रणाम है ॥२॥

ब्रह्मचारी दम्भहारी, मोह-मारी भय हरण,
तत्व-ज्ञाता बुद्धि-दाता, नमो, हे, अशरण शरण ।
चक्र-भेदन भ्रान्ति छेदन, दर्श तव अभिराम है,
ख्यात् "अमृत नाथ" वारम्वार तोहि प्रणाम है ॥३॥

भक्त-रक्षक दुःख-भक्षक, सुषुम्ना में शान्त है,
तुरिय-वासी भ्रम-विनाशी सर्वथा निर्भ्रान्त है ।
ब्रह्म-रत है ज्ञान-पथ है, दयामत अविराम है,
ख्यात "अमृत नाथ" वारम्वार तोहि प्रणाम है ॥४॥

अमिट सत्ता अटल वाणी, आप तन्मय आप में,
नहीं कृत्रिम योग, जप, तप, लीन अजपा जाप में ।
सेवा सेवक और सेवा भाव, आतम राम है,
ख्यात "अमृत नाथ" वारम्वार तोहि प्रणाम है ॥५॥

ब्रह्म वेत्ता उर्ध्वरेता , पक्ष पात न नेक है,
ध्यान भौतिक देह का नहीं सत्य सन्तत टेक है।
स्वर्ग, नर्क विचार नहीं, अपवर्ग जिनका धाम है,
ख्यात "अमृत नाथ" बारम्बार तोहि प्रणाम है ॥६॥
शरण आया, तत्व पाया, भेद अपना जानिया।
खेद भव का छूट गया उपदेश जिसने मानिया।
अशरण शरण कारण करण, भव-भय हरण निष्काम है
ख्यात "अमृत नाथ" बारम्बार तोहि प्रणाम है ॥७॥
सन्त ध्यावें मुक्ति पावें, भक्त अन्न धन पावते,
दुःख दुखिया के हरो, 'शंकर' विमल यश गावते।
श्री चरण सुन्दर मनोहर सकल सुख के धाम है,
ख्यात "अमृत नाथ" बारम्बार तोहि प्रणाम है ॥८॥

[२]

विलक्षण महा अन्धकारं विनाशी,
गुणा-तीत रूपं सुषुम्ना विलासी।
सदा सर्वदा भक्त मण्डल सुसेवं,
नमो योगी राजं "अमृत नाथ" देवं ॥१॥
दयालु महा दीन के दुख हारी,
निरालम्ब अवलम्ब हे निर्विकारी।
सदा सत्य शिक्षा हटाती कुटेवं,
नमो योगि राजं "अमृत नाथ देवं" ॥२॥

महा ब्रह्मचारी बड़े तत्व ज्ञाता,
अनूपम बली हो अभय दान दाता।
अनोखे सती हो, अपारं अभेवं,
नमो योगी राजं, "अमृत नाथ" देवं ॥३॥
अचल समाधि नहीं को उपाधि,
सुधारे प्रमादी, हरो भक्त व्याधि।
महा शून्य वासी सगुण हो तथैवं,
नमो योगी राजं, "अमृत नाथ" देवं ॥४॥
प्रभो गौर-वर्ण मनो व्याधि हरणं,
महा तेज धारी गहे भक्त शरणं।
नयनाभिरामं दयालु सदैवं,
नमो योगी राजं, "अमृत नाथ" देवं ॥५॥
प्रभो पूर्ण योगी सकल भाव ज्ञाता,
सदा भक्त त्राता सुभक्ति प्रदाता।
त्रिकालज्ञ सर्वज्ञ निष्पृह सदैवं,
नमो योगी राजं, "अमृत नाथ" देवं ॥६॥
काषाय वस्त्रं लसे कर्ण मुद्रा
हते काम क्रोधा लियी जीत निद्रा।
किये मुक्त प्राणी उदासीन एवं,
नमो योगी राजं, "अमृत नाथ" देवं ॥७॥
कई भक्त तारे सदा कष्ट टारे,
दियी सत्य शिक्षा हरे दोष भारे।

भयङ्कर हरो पीर 'शंकर' सुसेवं,
नमो योगी राजं, "अमृत नाथ" देवं ॥८॥

षट पदी

अगमं, अपारं, अथाहं, अखण्डं ।
अजन्मां, अगण्यं, अमोघं, अमोलम् ॥१॥
अनन्यं, अव्यक्तं, अनादी उदग्घम् ।
अजितं, अद्वैतं, अभिन्नं अनल्पम् ॥२॥
अवत्यं, अवर्ग्यं, अशौकं, अलोकम् ।
अजयं, अतीतं, अदृश्यं, अधीशम् ॥३॥
अकलं, अचञ्चल, अगाधं अकामं ।
अतर्क अनीहं, अनायास अमितम् ॥४॥
अलौलं, अरेवं अबाधी, असाधी ।
अनूपं अनिर्वाच्य अतुलित अनार्तम् ॥५॥
अकथनीय, अन्तिम, "अमृत नाथ" देवं ।
'शंकर' नमामी, नमामी ,नमामि ॥६॥

[२]

निरालम्ब, निर्विवाद, निर्लिप्तं, निराकार ।
निर्वासीक, निष्प्रपञ्च निर्भय निर्वाणं ॥१॥
निस्तरङ्ग, निर्हिंसक नीतियुक्त नम्रभाव ।
निर्ममत्व, निजानन्द, निश्चल निर्दोषं ॥२॥

निर्वैरं, नारायण निरामयं निर्वन्धं।
निष्कर्मं, निर्विकारं, निर्द्वन्दं नित्यम् ॥३॥
निर्गति निज इच्छा युक्त निर्मानं निरानित्य।
निर्भय, निर्मूल, निखिल, निर्मल, निजरूपम् ॥४॥
निश्चल निज-पन्थ-युक्त, निर्भीतं निस्सहाय।
निरञ्जनं, निर्भ्रान्ति, निरीहं, निर्नियमम् ॥५॥
निश्चय, अघ-नाशत्वं अमृतनाथ तव चरणं।
'शंकर' तव चरण नोमि नोमि बारं बारं ॥६॥

ॐ ध्यान ॐ

निश्चय ज्ञान मयं अखण्ड अभयं, त्रिगुणात्म शक्तिः परं।
व्याप्तं सर्वं चराचरं विमलं, सत योग युक्तं हरिं॥
त्रैविधि क्लेश विनाशमं सुखमयं, भक्तिः प्रदानं प्रभो।
आर्तं दुःख हरं भवन्न सुखदं, श्री सद् गुरुं नोम्यहम् ॥१॥

(२)

कान्ति मान वपुम् बलिष्ठ पुष्टम् काषाम्बरं शोभितं।
श्रवणं मुद्राच्छाजितं, भय हरं अज्ञान नाशं गुरुं॥
शान्ति रूप स्वरूप क्लेश रहितं, विज्ञान युक्तं हरिम्।
वाणी सत्य अखण्ड ब्रह्मचर्यं श्री सद् गुरुं नौम्यहम् ॥२॥

विनय चौबीस

❀ दोहा ❀

जय सतगुरु अशरण शरण शरणागत प्रतिपाल।
विषय हरण 'शङ्कर' तुही भेदन भव के जाल ॥१॥

दीन बन्धु दानव दलन, दीनानाथ दयाल।
दुष्ट ध्वंश 'शंकर' सदा, रूप धरे तत्काल ॥२॥

अकथनीय, अन्तिम, अमित, अलख, अखण्ड, अभेव।
अजय, अञ्चल अजन्मो, अतुलित, अगम सदैव ॥३॥

निराकार निर्भय निर्गुण, निराधार आधार।
निर-आमय निर्दोष तुम, निर्भिमान सत्त सार ॥४॥

तुम स्वामी सब में रमे, स्थावर जङ्गम जीव।
अष्टादश, षट् चार का, 'शंकर' निकला घीव ॥५॥

करुणा सागर कृपा निधि, कारुणीक कर्तार।
क्रिया कर्म से रहित है, 'शंकर' मम भरतार ॥६॥

नाम रूप गुण से रहित, क्रिया कर्म से दूर।
मन, वाणी, कारण बिना, है सत गुरु भरपूर ॥७॥

सतगुरु अमृत नाथ जी, मेरी सुनो पुकार।
हाथ जोड़ चरणन परूँ, 'शंकर' चूक सुधार ॥८॥

सतगुरु दया विचारिये, विलखत होगई वेर।
क्यों न सुनी 'शंकर' विनय, कहाँ लगाई देर ॥९॥

तुम दानी मैं दीन हूँ, मैं अनाथ तुम नाथ।
ज्ञान भक्ति का दीजिए धर 'शंकर' शिर हाथ ॥१०॥
मैं दुखिया तुम दुख हरण, मैं सेवक तुम नाथ।
बार बार चरणन परूँ, पकड़ो मेरा हाथ ॥११॥
तुम समर्थ स्वामी प्रबल, सब विधि पूरण योग।
मैं तव चरणन दास हूं, हर 'शंकर' भव भोग ॥१२॥
मैं पापी तुम अघ हरण, दूर करो मम पाप।
दया सिन्धु 'शंकर' मेरा, मेटो भव सन्ताप ॥१३॥
तुम स्वामी सब योग्य हो, अन्तर्यामी नाथ।
भव से पार उतारिये, 'शंकर' व्याकुल गात ॥१४॥
मैं अनाथ तुम नाथ हो मैं सेवक तुम नाथ।
चरणन पड़ विनती करूँ, धर 'शंकर' शिर हाथ ॥१५॥
अमृत मम दुख टारिये, विनती बारम्बार।
'शंकर' आश्रय आपके, भव से लेहु उबार ॥१६॥
सत गुरु सम साथी नहीं, तीन लोक के माहिं।
तनिक दया से मिलत है, 'शंकर' भव की थाहिं ॥१७॥
जप तप व्रत; जानूँ नहीं, महा अघन की खान।
'शंकर' आशा आपकी सुनिये धर कर कान ॥१८॥
शम, दम, नियम अचार अरु योग, यज्ञ से दूर।
'शंकर' सेवक आपका, चरण कमल की धूर ॥१९॥
दारा सुत भ्राता, बहिन मात पिता धन, राज।
यह सब स्वारथ के सगे सत्य सत्य महाराज ॥२०॥

काम, क्रोध मद. मोह युत, दम्भ कपट से पूर।
'शंकर' यह सङ्कट हरो, कर विषयन को चूर ॥२१॥

अज्ञानी, कामी, कुटिल, लम्पटता से पूर।
शरण जान समझो मुझे, चरण कमल की धूर ॥२२॥

लोलुपता, लालच, लगन, हानि, लाभ दो टार।
केवल भक्ति दो मुझे, शङ्कर' परम उदार ॥२३॥

काहू को धन धाम है, काहू को सुत वाम।
'शंकर' प्रिय मुझको सदा, केवल गुरु का नाम ॥२४॥

ध्वनि राधेश्याम

❀ दोहा ❀

तुम्हीं ध्यान, धाता तुम्हीं, तुम्हीं ध्येय मति मान।
ज्ञेय तुम्हीं ज्ञाता तुम्हीं, नित्य निरन्तर ज्ञान ॥

तुम तेज तेज धारी के हो, अरु भक्तन के हित कारी हो।
विद्या, बल, यश, गुण, रूप आदि के उत्पादक अधिकारी हो ॥
तुम दुखिया के दुख नाशक हो, प्रभु कारण हो अरु कर्ता हो।
हो राव रङ्क धनवान, दीन, सबके हर्ता अरु भर्ता हो ॥
हो प्रेमी प्रेम प्रमेय तुम्हीं, जप, तप, व्रत, तीरथ, मख तुम हो।
उपमा,उपमेय,अहित,हितहो, व्यापक प्रभु नख से शिख तुमहो ॥

ब्रह्मा, विष्णु, शंकर तुम हो, त्रैगुण अरु पञ्च तत्व तुम हो।
जो कुछ दर्शन में आता है, उसके आधार तत्व तुम हो॥
मन, वाणी पहुंच नहीं सकते, गुरु वर तव वर्णन कैसे हो।
निर्द्वन्द स्वरूप न पार मिले, 'शंकर' तव वर्णन कैसे हो॥

हे दयालु दुःख हरण तुम, हरिये भव की पीर।
ज्ञान हीन मुझ दास को, तनिक दीजिये धीर॥

हट जाय चित्त से राग, द्वेष,
अरु समता का शुभ भाव भरें।
जो सत्य सनातन धर्म हमारा है,
उसका जय २ कार करें॥
सत वादी हों न विवाद करें,
वेदाज्ञा के पालक हों।
विषयानुराग को हटा दूर,
शम दम के हम परि चालक हों॥
जीव मात्र पर दया करें,
गुरु जन के प्रति सम्मान करें।
दुर्जनता चित से हटा दूर,
तव चरणन का नित ध्यान धरें॥
सन्तों के जीवन से शिक्षा लेकर,
हम फिर सत्कर्म करें।
ऐसी शिक्षा जग को देवें,
सब को तारें अरु स्वयं तिरें॥

हे अमृत नाथ विनय सुनिये,
मैं दास आपका जन्म से हूं।
तव चरणन की आशा मुझको,
'शंकर' शरणागत मन से हूँ॥

सबके हितकारी प्रभो, हरिये मम अज्ञान।
चरण कमल की दया से, दूर करो अभिमान॥

मैं निर्बल हूँ अपराधी हूं,
मति हीन दीन हूँ हे भगवन्।
शुभ कर्म बने न कभी मुझसे,
रत रहा विषय में हे भगवन्॥
तृष्णा के चक्र में फँसा रहा,
मानव तनका नहीं लाभ लिया।
जब हीन भया सब विधि तब ही,
हो कर आरत अति रुदन किया॥
धन, धाम, त्रिया, पुत्रादिक को,
प्रिय जाने मोहित रहा सदा।
उन्मत्त हुआ विचरा इनमें,
नहीं सेवा में मन दिया कदा॥
कर त्राहि २ चरणन पड़ता,
हे नाथ दया अब ऐसी हो।
चञ्चलता मन की थक जावे,
बुद्धि में निर्मलता सी हो॥

हे भगवन भव भय दूर करो
मैं शरण आपकी आया हूं।
अमृत अब शीघ्र उबार लेवो,
'शंकर' अति ही घबराया हूं॥

भक्ति महिमा

❀ दोहा ❀

भक्ति रङ्ग अति सुरङ्ग है, सुख दायक सत् रूप।
जिस घट में चढ़ जात है, होता रूप अनूप॥१॥
तन, मन, धन अर्पण करे, प्रति ❀फल चाहे नाहिं।
इक टक हो लखता रहे, इष्ट रूप चित माहिं॥२॥
भक्ति गुरु के चरण की, जिस जन के चित होय।
सुखी रहे संसार में, पावे सद्गति सोय॥३॥
भक्ति मिटादे सकल भय, भक्ति करादे ज्ञान।
बिना भक्ति सब व्यर्थ है, जप, तप, पूजा ध्यान॥४॥
भक्तन हित अवतार ले, बार बार भगवान।
संकट काटें तुरत ही, 'शंकर' उन की बान॥५॥
भक्ति सुधारस जान के, पीते सन्त सुजान।
वास रहे संसार में, पावे पद निर्वान॥६॥

अमर जड़ी है भक्ति ही, इसमें संशय नाहिं।
रोग मिटा पहुंचाय दे 'शंकर' सत् पद माहिं ॥७॥

रंग भक्ति का चढ़त ही, उतर जाय सब रंग।
'शंकर' मन माता रहे, पीय अनोखी भंग ॥८॥

नशा चढे जब भक्ति का, बिसरे तन, मन ज्ञान।
सुख दुख की चिन्ता नहीं, रहे चरण का ध्यान ॥९॥

भक्ति बेल जब फैलती, उत्तम गुण फल देत।
दया, क्षमा, सन्तोष सब, 'शंकर' जाते चेत ॥१०॥

भक्ति पुष्प अति सुगन्धित, भक्त भ्रमर सुख लेय।
सब को आनन्दित करे, पाय अचल पद लेय ॥११॥

भक्ति अमोला खेत है, जब ऋतु पर पक जात।
देता चार * पदार्थ हैं, सुधरे मानव गात ॥१२॥

वैश्य, शूद्र, स्त्री, पुरुष हो, भक्ति करे जो कोय।
'शंकर' आपा भेंट कर, मैं, मैं देता खोय ॥१३॥

भक्ति अनोखा दुर्ग है, इसमें कुछ भय नाहिं।
'शंकर' सुख पावे सदा, जीव इसी के माहिं ॥१४॥

भक्त बनो बाधा हनो, पावो चैन घनो।
होय अचल 'शंकर' मनो, सुधरे मनुष पनो ॥१५॥

---

* धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

दया महिमा

दया मिलावे राम से, दया हटावे पाप।
दया जगत का दुख हरे, चहुंदिशि आपहि आप ॥१॥
धर्म दया से बढ़त है, बढे धर्म से ज्ञान।
ज्ञान लखा निज रूप को, देता पद निर्वाण ॥२॥
मान मिलत है दया से, मिट जाता अभिमान।
आत्म-भाव होता प्रकट, 'शंकर' सुख की खान ॥३॥
दयावन्त का है नहीं, रिपु कोई जग माहिं।
जीव चराचर मित्र है, दया भुलाओ नाहिं ॥४॥
जिनके मनमें दया है, उनसे राजो राम।
सुखी रहत है जगत में, बन जाते सब काम ॥५॥
'शङ्कर' बनता दया से, मानव हृदय पवित्र।
मैल मिटे निर्मल बने, होता शुद्ध चरित्र ॥६॥
जिनके मन में हो गया, प्रकट दया का भाव।
'शंकर' निश्चय पार हो, उनकी भव से नाव ॥७॥
प्रथम दया निज पर करे, तभी अन्य पर होय।
अपना सुधरे आचरण, सुखी करे सब कोय ॥८॥
दया ब्रह्म का रूप है, दया ब्रह्म का बीज।
'शंकर' गुरु की दया से, प्राप्त करे निज चीज ॥९॥
दया सत्य का रूप है, दया सुखों की खान।
दया धार लो हृदय में उपजे 'शंकर' ज्ञान ॥१०॥

❀ क्षमा महिमा ❀

क्षमा होय तब हो सके, कठिन तपस्या योग।
दुर्जनहू सज्जन बने, दूर होय भव भोग ॥१॥

कायरता को मेट कर क्षमा बनावे वीर।
क्षमावन्त का रिपु नहीं, यों कहते हैं धीर ॥२॥

क्षमा जिन्हों के हृदय में, उनके साथी राम।
क्षमा शील का रहत है, 'शंकर' जग में नाम ॥३॥

क्षमा वीर का चिन्ह है, क्षमा मनुज की ढाल।
क्षमा धारणे से, रहे, 'शंकर' सुख त्रैकाल ॥४॥

क्षमा पुष्प सुन्दर महा, इस में शुद्ध सुगन्ध।
'शंकर' निश्चय धारिये, दूर करे दुर्गन्ध ॥५॥

क्षमा बड़ों का कर्म है, क्षमा साधु का रूप।
क्षमावन्त के हृदय में, रहता भाव अनूप ॥६॥

क्षमा नहीं जिस हृदय में, उसका यश कुछ नाहिं।
क्षमाशील का होत है, आदर सब जगमांहिं ॥७॥

भूषण जानों साधु का, दोष करे सब दूर।
क्षमा अनोखी ढाल है, धारण करते शूर ॥८॥

क्षमा कवच अति दिव्य है, रक्षा करे हमेश।
भंग न दुर्जन कर सके, 'शंकर' शक्ति विशेष ॥९॥

क्षमा बड़ों का रूप है, क्षमा साधु का वेष।
क्षमा करे 'शंकर' तभी, देते हैं निजादेश ॥१०॥

● सन्तोष महिमा ●

सन्तोषी का स्वतः ही होता सब जग दास।
घट में जब यह प्रकट हो, हो तृष्णा का नाश ॥१॥
जिस घट में सन्तोष है उसको दुख कुछ नाहि।
इन्द्रलोक तक तुच्छ वह जानत है जग माहि ॥२॥
सन्तोषी निर्मल रहे कपट क्रोध से दूर।
'शंकर' उसको शीघ्र ही, पाता है निज नूर ॥३॥
जिस घट में सन्तोष है, सदा सर्वदा शान्ति।
उसकी मिटे अवश्य ही, मैं, तू मिथ्या भ्रान्ति ॥४॥
सन्तोषी को सुख सदा, सब जग प्यारा होय।
शत्रु मित्र दोनों नहीं, आत्म रूप सब कोय ॥५॥
सन्तोषी को मिलत है, भव सागर को पाज।
शान्ति पूर्वक सुधरते, उसके सारे काज ॥६॥
सन्तोषी को साधुता, देते हैं भगवान।
तन मन सरल बनाय कर, पाते पद निर्वाण ॥७॥
बल भारी सन्तोष का, जाने सन्त सुजान।
हनते तृष्णा राक्षसी, 'शंकर' बने महान ॥८॥
साधु उसीको जानिये, जो सन्तोषी होय।
ममता तज समता धरे, शत्रु मित्र नहीं कोय ॥९॥
सन्तोषी नर पावते, सत्-पद सत्य-स्वरूप।
'शंकर' एक समान है, कहाँ रंक कहाँ भूप ॥१०॥

धीरज "धैर्य" महिमा

धीरज से मीरा तिरी, दूर होगया क्लेश ।
वार वार रक्षा करी, पहुंचाई निज देश ॥१॥

धीरज से प्रह्लाद के, हरे दुःख भगवान ।
दर्शन देकर अन्त में, दिया सलोना ज्ञान ॥२॥

धीरज के बल ध्रुव तिरे, पाया ऊंचा धाम ।
अटल चमकतो कीर्ति है, अमर होगया नाम ॥३॥

मोरध्वज का नाम है, धीरज से जग माहिं ।
धीरज धारी जगत में, दुख पावत है नाहिं ॥४॥

धीरज के बल पाण्डव, पाया था निज राज ।
कृष्ण सारथी बन गये, सुधरे सारे काज ॥५॥

धीरज धारी विभीषण, राम शरण में आय ।
भक्त बना बाधा मिटी, चेत करो चित लाय ॥६॥

धीरज धारी सुदामा, गया कृष्ण के धाम ।
दूर हो गई दीनता, पाया भक्त सुनाम ॥७॥

नरसी ने धीरज धरा, बने अनेकों काम ।
दर्शन दे भगवान ने, पहुंचाया निज धाम ॥८॥

धीरज से भक्ती मिले, धीरज सधता योग ।
धीरज से ही कटत है, 'शंकर' भव के रोग ॥९॥

माली अपने वृक्ष को, पानी नित प्रति देय ।
धीरज से सेवा करे, समय पाय फल लेय ॥१०॥

धीरज से जप, तप बने, धीरज सुधरे काम ।
विद्या धीरज से मिले, 'शंकर' धैर्य ललाम ॥११॥

प्रार्थना महिमा

करते करते प्रार्थना सुन लेते भगवान।
दया करे 'शंकर' तभी, बन जाते मतिमान ॥१॥
करते करते प्रार्थना, निर्मल होवे गात।
विषय भोग से चित हटे, मन हो जावे मात ॥२॥
करते करते प्रार्थना, बनती बुद्धि पवित्र।
शंकर' सुखकी प्राप्ति हो, निर्मल बने चरित्र ॥३॥
करते करते प्रार्थना, क्रोध काम हट जाय।
शम दम शक्ति सचेत हो, घटमें समता आय ॥४॥
करते करते प्रार्थना, हटे जगत से हेत।
समय पाय मिल जात है, भवसागर का सेत ॥५॥
करते करते प्रार्थना, निष्पृहता आजाय।
शंकर' तृष्णा दूर हो, तब नहीं जगत सुहाय ॥६॥
निश्चल मन से प्रार्थना, करते जो मतिमान।
हो गद् गद् रोने लगे, पहुंचे 'शंकर' कान ॥७॥
जा बैठे एकान्त में, त्याग जगत से नेह।
गद् गद् हो विनती करे सुधरे मानव देह ॥८॥
कूक कूक विनती करे, ममता मद हट जाय।
समता, दृढ़ता प्रकट हो, चार पदारथ पाय ॥९॥
नित प्रति विनती कीजिए, प्रेम भाव के साथ।
'शंकर' निश्चय मिलेगा, सकल जगत का तात ॥१०॥

सत्सङ्ग महिमा

जप. तप वर्ष हजार कर. सत्सङ्गति क्षण एक ।
तद्यपि समता हो नहीं, 'शंकर' सत्य विवेक ॥१॥

साधन से व्याधी मिटे, सत् सङ्गति से भेद ।
गुरु सेवा से दूर हो, 'शंकर' भव का खेद ॥२॥

होय दास विश्वास कर, आशा जगत की त्याग ।
'शंकर' नित सत्सङ्ग कर. प्रकट होय वैराग ॥३॥

साधुन का सत्सङ्ग कर, मिले सलोना ज्ञान ।
नहीं बैठ एकान्त में, कर 'शंकर' निज ध्यान ॥४॥

भृङ्ग होय है कीट से, स्वर्ण लोह से होय ।
पत्थर से प्रतिमा बने. सत् सङ्गी है सोय ॥५॥

काया मन अरु बचन से, कर सन्तों का सङ्ग ।
भव सागर की व्याधि से. शंकर' होय असङ्ग ॥६॥

तिल तेली के सङ्ग से, होय तेल का रूप ।
यदि गन्धी का सङ्ग को, पावे रूप अनूप ॥७॥

क्या प्रवृत्ति क्या निवृति है, मूढ़ सके नहीं जान ।
शंकर' बिन सत्सङ्ग के, हटे नहीं अज्ञान ॥८॥

'शंकर' काया सिन्धु में जो हैं मुक्ता श्वास ।
भेद मिले सत्सङ्ग से कर्म तिमिर हो नाश ॥९॥

सङ्ग होय जब साधु का, छूटे तभी विषाद ।
'शंकर' बिन सत्सङ्ग के, आयु जान बर्बाद ॥१०॥

योगी की महिमा

योगी भय माने नहीं, विचरे निर्भय होय।
सुख दुख को सम जान कर, 'शंकर' दृढ़ है सोय ॥१॥
लाभ हानि के भाव से विचलित कभी न होय।
इन्द्रिन पर अधिकार है, निश्चल मन है सोय ॥२॥
हर्ष शोक होता नहीं, ममता रहती दूर।
कामादिक षड् रिपुन को, करदे चकना चूर ॥३॥
क्षुधा, तृषादिक व्याधि पर, होता है अधिकार।
निद्रा इच्छा पर रखे, सदा करे सुविचार ॥४॥
इच्छा से धारण करे, स्थूल सूक्ष्म निज रूप।
गुप्त प्रकट हो जात है, 'शंकर' जग का भूप ॥५॥
सत्य होय संकल्प सब तृष्णा व्यापे नाहिं।
ऊँच, नीच सम जानता रहता समता माहिं ॥६॥
जाति उसकी मन-मय बने, शक्ति अमोघ अजेय।
निज आसन पर बैठा रहे, अखिल विश्व लख लेय ॥७॥
जाने तीनों काल की विद्या सब आज्ञाय।
जो कुछ प्रकृति ने रचा, सब अपने घट पाय ॥८॥
वीर्य स्खलित होता नहीं, निर्हिंसक है भाव।
धारे रहे दयालुता, निर-हंकार स्वभाव ॥९॥
सब जग उसका रूप है, दूर होय सब द्वन्द।
'शंकर' शंकर ही रहे, भाव बने निर्द्वन्द ॥१०॥

योग सार

❀ कुण्डलिया ❀

मूल चक्र को शोध कर. नाभि कमल में आय।
कुण्डलनी चैतन्य हो. मेरु दण्ड पथ पाय॥
मेरु दण्ड पथ पाय, शून्य में जाय समाना।
अगम अगोचर खेल, ब्रह्म गढ़ आसन लाना॥
हो सचेत कर लेय, सरल कुण्डली वक्र को।
अमृत नाथ विशुद्ध करो, तुम मूल चक्र को॥१॥

(२)

जन्म मरण दुःख रूप को, मेटन की चित माहिं।
सन्तो है जो भावना, दृढ कर आसन लाहिं॥
दृढ कर आसन लाय, चक्र नाभी में रमना।
अह निश रत हो श्वाश, जाय अजपा ही जपना॥
नाभि शिखर तक रमे, उसी को मिलता सत्य सुख।
अमृत पद हो प्राप्त, दूर हो जन्म मरण दुख॥२॥

(३

इड़ा पिंगला त्याग दे, सुषुमन नेह लगाय।
श्वाश श्वाश अमृत जपे, त्रिकुटी में मन लाय॥
त्रिकुटी में मन लाय, ज्योति अद्भुत दरशावे।
कोटि भानु सम तेज, ब्रह्म का रूप लखावे॥

दश प्रकार के नाद की, शीघ्र मिलत है शृंखला ।
'अमृत' सुषुमन रमे, त्याग कर इड़ा पिंगला ॥३॥

(४)

योग युक्ति बिन ना मिटे, भव सागर का खेद ।
कबहूं नहीं पावे कोई, जीव ब्रह्म का भेद ॥
जीव ब्रह्म का भेद, योग बिन मिलता नाहीं ।
कुण्डलनी मुख बन्द, मूल में खुलता नाहीं ॥
वङ्क नाल का पथ सुगम, अमृत होता उसी दिन ।
भाव सागर का दुःख, मिटे नहीं योग युक्ति बिन ॥४॥

(५)

ज्यों जल और तरंग में, तनिकहु अन्तर नाहिं ।
जीव ब्रह्म त्यों एक है, शंकर त्रिकुटि माहिं ॥
शंकर त्रिकुटि माहिं, ध्यान धर देखो साधो ।
श्वास माहिं तन्लीन होय आप ही * अवराधो ॥
सुधरे आहार विहार, मिले तब योग युक्ति थल ।
अमृत होता एक न न्यारी तरंग ज्यों जल ॥५॥

(६)

सोवन जागन तत्व की, महा गूढ़ है बात ।
जगे साधु शंकर वहाँ, जहँ असाधु की रात ॥

---

* आरधना करो ।

जहं असाधु की रात वहाँ जागत है साधू।
आप आप में लीन, रहे नहीं तनिक प्रमादू॥
'अमृत निश्चय धार शीघ्र विषयन से भागन।
जान लेय जो भेद कहा है सोवन जागन॥६॥

(७)

शंकर पाँचों तत्व के, मुख्य २ हैं स्थान।
तिनका मैं वर्णन करूँ, सुनो सन्त धर ध्यान॥
सुनो सन्त धर ध्यान, पाद जंघा लों धरती।
जङ्घ नाभि पर्यन्त स्थान जलका यों कह श्रुति।
नाभि कण्ठ विच अग्नि है, कण्ठ भृकुटि वायुत्व॥
भृकुटि शिखर तक नभ स्थल शंकर पाँचों तत्व॥७॥

(८)

मालु वायु को खींच कर, नाभि कमल में लाय।
इड़ा पिंगला त्याग दे, सुषुमन ध्यान लगाय॥
सुषुमन ध्यान लगाय, नासिका नयन मिलाओ।
आवत आवत श्वाश माहिं, निश दिन मन लाओ॥
कहते 'अमृतनाथ' प्राप्त हो पूर्ण आयु को।
साधन करते सन्त शुद्ध कर मूल वायु को॥८॥

(९)

वीर्य पतन मत होने दे, दृढ कर आसन लाय।
जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तज, तुरिया नेह लगाय॥

तुरिया नेह लगाय, जाप अजपा को जपना।
सदा उदासी रहो, जगत को जानो सपना॥
कच्छप की ज्यों, आत्म भाव में शीघ्र होय रत।
कहते 'अमृत नाथ' करो तुम वीर्य पतन मत॥६॥

❀ राग करखा ❀

पिण्ड ब्रह्माण्ड में तनिक अन्तर नहीं,
गुरु बिना भेद ना मिले भाई।
अगम की ओर चलना दुस्तर महा,
बड़ी ही भयानक जगत खाई॥
कमल मुख ना खिले, मेरु पथ ना मिले,
ब्रह्म के धाम को नाहिं पाई।
नाथ अमृत कहें, चरण गुरु के गहे,
शीघ्र गुरु चरण में आवे भाई॥

[२]

नाभि में वृत्ति लव लीन कर श्वास में,
डालदो शिखर में सन्त झूला॥
गुरु की दया से लग्न से आपके,
भूल दिन रैन आनन्द फूला।
श्वास के ध्यान में होय लवलीन जब,
जन्म अरु मरण के मिटे शूला॥

"नाथ अमृत" कहे सन्त सत् मानियो,

भेद यह जानिओ मुक्ति मूला ॥

[३]

मूल की वायु को लाय कर नाभि में,

शक्ति मुख उर्द्ध पथ मेरु धाओ ।

शिखर में सहस्र दल कमल मुख जब खिले,

सुधा के ताल विश्राम पाओ ॥

सत गुरु स्थान में ब्रह्म से भेंट कर,

त्रिकुटि विच होय पुनि नाभि आओ ।

"नाथ अमृत" कहे वृत्ति लवलीन कर,

रैन दिन इसी विधि मुक्ति पावो

[४]

शिखर में सर्वदा चन्द्र षोडस दियै,

उनमनी रूप में गुरु राजे ।

सुधा के ताल में अनामी हंस है,

मुक्ति की अङ्क के माहिं छाजे ॥

काल ज्वालान हीं तिलक माला नहीं,

व्याधि माला नहीं तूर बाजे ।

"नाथ अमृत" सदा एक रस ही रहे,

द्वन्द मिट जात है सिंह गाजे ॥

[५]

ब्रह्म के सिन्धु का वार पारा नहीं,

अगम है नीर नहीं भेद पाया।

विष्णु विधि रुद्र से मीन लाखों जहाँ,

बार ही बार गोता लगाया॥

ताहिं में करोड़ों बुद बुदे उठंत हैं,

बने अरु मिटे नहीं अन्त आया।

"नाथ अमृत" कहे बुद्धि मन थक रहे,

सत गुरु शब्द बल थाह लाया॥

[६]

तीन अरु पाँच से देह निर्मित भई,

ताहिं में फैलिया तिमिर भारा।

आत्मा सत्य, निर्लिप्त, निर्वाण है,

रूप अरु रेख नहीं निर्विकारा॥

अगम का घाट विज्ञान का बाट है,

ब्रह्म का ठाठ नहीं वार पारा।

"नाथ अमृत" सदा सुधा झर लावते,

गुरु मुखी पावते ध्यान धारा॥

साधन

काया मन अरु वचन से, झूठे जाने भोग।
क्षीण होय तब वासना, नष्ट होय सब रोग॥

सत्य वचन सत् का व्यवहारा, शील स्वभाव कुमति से न्यारा।
क्षमा वन्त हो धीरज धारे, हो सन्तोषी लोभ निवारे।
दया, धर्म दृढ आसन धारी, होवे हृदय तितिक्षा भारी।
ब्रह्मचर्य का पालन करना, दीन विलोक दुःख को हरना।
हो निर्मोह मान को त्यागे, तजे दम्भ सत्पथ अनुरागे।
आत्म रूप सब जग को जाने, ऊँच नीच का भेद न माने।
रहे अहिंसक भय कुछ नाहीं, संशय रहित भाव चित माहीं।
सदा गुरु-मुखि आज्ञा कारी, योग युक्ति से भव भय टारी।
शत्रु मित्र सब को सम जाने, राग द्वेष का भाव न आने।
समदर्शी हो दृढ विश्वासी, सदा रहे निर्लेप उदासी।
मन को मार सुधार वचन को, समता हित कर सदा यतन को।
खान-पान व्यवहार सुधारे, कम सोवे निद्रा को मारे।
अजपा मंत्र जपे दिन रैना, रखे नासिका ऊपर नैना।
'अमृत' होय अमर गति उनकी, सुरति लगी सोहं में जिनकी।

ब्रह्म ज्ञान

दूर निकट कुछ है नहीं ऊँचा नीचा नाहिं।
अन्तर बाहर एक है 'अमृत' सब के माहिं ॥१॥
होनी अनहोनी करे अनहोनी का हौन।
अमृत राम समर्थ है ताते धारो मौन ॥२॥
निर्गुण सगुण विचार है भिन्न भिन्न दो भेद।
अमृत पर निर्द्वन्द है, मिटे मौन से खेद ॥३॥
अग्नी तृण माहिं धरी, बिना मूल के डाल।
बिन थल जल अमृत भरे ताका शीघ्र संभाल ॥४॥
नहीं झूट नहीं सत्य है, नहीं अपार नहीं पार।
इन्द्रिय मन पहुंचे नहीं, अमृत सत्य विचार ॥५॥
जाति वर्ण आश्रम नहीं, ऊँच नीच का भेद।
'अमृत' एक स्वरूप है, साची देते वेद ॥६॥
अकथनीय, अन्तिम, अमित, अलख, अखण्ड, अभेव।
अजय अचञ्चल, अजन्मा, अमृत अगम सदैव ॥७॥
नहीं ध्यान, ध्याता नहीं, नहीं धेय भतिमान।
ज्ञेय नहीं ज्ञाता नहीं, अमृत पद निर्वाण ॥८॥
को बांधे को बंध सके, का को खोले कौन।
अमृत मन का भाव है, क्या बोले क्या मौन ॥९॥
नहीं सिद्ध साधक नहीं, नहीं असाध्य नहीं साध्य।
क्रिया नहीं साधन नहीं, अमृत बन्धन बाध्य ॥१०॥

प्रेम नहीं प्रेमी नहीं, किसका कौन प्रमेय।
स्मरण भूल कैसी कहां, ज्ञाता ज्ञान न ज्ञेय ॥११॥

जाग्रत स्वप्न न सुषुप्ती, तुरिया साक्षी रूप।
अमृत उन्मनि भाव है, अट पट भेद अनूप ॥१२॥

स्वप्न जगत व्यवहार है, आत्म सुषुप्ति जान।
तुरिया ब्रह्म का रूप है, अमृत कर पहिचान ॥१३॥

शब्द, स्पर्श, अरु रूप, रस, गन्ध तत्व के रूप।
सूक्ष्म जान तन मात्रा, अमृत भेद अनूप ॥१४॥

नेत्र नाक जिह्वा करण, चर्म इन्द्रि हैं ज्ञान।
हस्त पाद वाणी गुदा, लिङ्ग कर्म लो जान ॥१५॥

स्थूल, सूक्ष्म कारण महा कारण आतम गेह।
केवल ब्रह्म स्वरुप है, अमृत खोजो देह ॥१६॥

जागृत माहिं स्थूल है, सूक्ष्म,स्वप्न के माहिं।
कारण जान सुषुप्ति को, तुरिया केवल पाहिं ॥१७॥

पांच तत्व दश इन्द्रियां अरु तन्मात्रा पांच।
चार जान अन्तः करण, यह चौबीसों सांच ॥१८॥

चौबीसों जाग्रत रहे, नौ स्वप्ने के माहिं।
तन्मय रहे सुषुप्ति में तुरिया एक रस पाहिं ॥१९॥

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति हैं, साधक के हित जान।
तुरिया जाग्रत में बने, ताको सिद्ध पिछान ॥२०॥

पञ्च कोष अरु तीन गुण, तीन अवस्था जान।
अमृत इन से भिन्न है, आत्म रूप पहिचान ॥२१॥

भ्रम के जब तक दोय है, भ्रम नाशे तब एक।
अमृत दोय न एक है ऊँच नीच नहीं नेक ॥२२॥
जगत ब्रह्म का खेल है, खुद ही खेलन हार।
अन्य और कुछ है नहीं, 'शंकर' यह निज सार ॥२३॥
चा[illegible] दृशि अपना रूप है भिन्न और कुछ नाहिं।
मैं तू वचन विलास हैं, अमृत नाथ सुनाहिं ॥२४॥
चार वेद षट् शास्त्र अरु गीता प्रबल प्रमाण।
सकल सृष्टि में रम रहा, 'शंकर' एक समान ॥२५॥

विषय विकार

तज आतम आनन्द को विषयन में सुख मान।
मूढ़ आयु सब खो दिई, किया न अमृत ध्यान ॥१॥
घट में जाल डालत रहे, दीखे ना प्रतिबिम्ब।
त्यों आतम दरशे नहीं, विषयन के अवलम्ब ॥२॥
क्षण भंगुर है विषय सुख, ज्यों बादल की छाहिं।
विनशत बार न लाग ही, चेत करो चित माहिं ॥३॥
विषयन का सुख क्षणिक है, होय शीघ्र ही नाश।
नशा चरस का जानिये, उतरे होय उदास ॥४॥
एक स्वाद से करि फँसे, फिर नहीं सकता छूट।
पाँचों में फँस क्यों बचे, रहे रैन दिन लूट ॥५॥
तन मन से अरु वचन से, त्यागो विषय विकार।

'अमृत' आतम रस पियो, निश दिन ब्रह्म विचार ॥६॥
विषयन में फूला रहे, त्यागे नहीं प्रमाद।
'अमृत' फिर कैसे मिटे, आवागमन विषाद ॥७॥
विषय पूर्ति के लिये ही, फिरत रहा दिन रैन।
आयु गई तृप्त न हुआ, मिला न 'अमृत' चैन ॥८॥
नदी तीर का वृक्ष है, विषयन का आनन्द।
नष्ट होय क्षण मात्र में, 'अमृत' हो निर्द्वन्द ॥९॥
पञ्च इन्द्रिय हैं दोष मय, भिन्न २ ले स्वाद।
शान्त होय कबहूं नहीं 'अमृत यह उन्माद ॥१०॥
शब्द, स्पर्श, रस, रूप है, गन्ध पाचवां ज्ञान।
समय समय उत्पन्न हो, 'अमृत' बिन अवसान ॥१२॥
विषय प्राप्ति के हेतु ही, पावे दुःख अपार।
शान्ति नहीं क्षण भर मिले, 'अमृत' वेग सम्हार ॥१३॥
काम वेग जब चढत है, गिनत ऊँच नहीं नीच।
हो मदान्ध दुष्कर्मरत, 'अमृत' भय-तज * मीच ॥१४॥
चढे वेग जब क्रोध का, कर्म अकर्म विसार।
दिग्भ्रम सा हो जात है, 'अमृत' सत निर्धार ॥१५॥
लहर उठे जब लोभ की, ज्ञान प्रभा ढक जाय।
कुपथ सुपथ नहीं भान हो, 'अमृत' तज विष खाय ॥१६॥
मोह जाल जब फैलता, धन जन, विद्या राज।
मैं मेरा कर कर मरे, मिले न 'अमृत' पाज ॥१७॥

---

* मृत्यु।

हो कर वश मात्सर्य के, देय शुभा शुभ त्याग।
चौरासी भट कट फिरे, नहीं आत्म अनुराग ॥१८॥
विषय दुःख का मूल है, कहत सन्त सुजान।
इनको तज सत्संग कर, तब हो 'अमृत' ज्ञान ॥१६॥
इन्द्रिन को रस देत है, और चाहता शान्ति।
घृत से अग्नि बुझावना, 'अमृत' गहरी भ्रान्ति ॥२०॥
त्यागे विषय विकार को, सत-गुरु आश्रय आय।
अरु 'अमृत' सत् संग हो, तब अक्षय पद पाय ॥२१॥
इन्द्रिन का रस त्याग दे, आशा नेक न राख।
कर्म ग्रन्थि तब ही खुले, है 'अमृत' की साख ॥२२॥
जितने सुख संसार के, क्षण भंगुर दुख मूल।
'अमृत' धन, तिरया प्रबल, दो विपत्ति मय शूल ॥२३॥
भेट भरण चिन्ता दिन हिं, रैन कुटुम्ब में वास।
'अमृत' अवसर यों गया, बीत चले अब श्वास ॥२४॥
मान, बडाई, लोभ मद, जिह्वा इन्द्रिय स्वाद।
तिय तृष्णा जिन को नहीं, उनको नहीं विषाद ॥२५॥
विषय वासना को तजो, पाय गुरु की * सैन।
'अमृत' अजपा जाप को, जपत रहो दिन रैन ॥२६॥
लघु भोजन, कम बोलना, सत्य स्मरण व्यवहार।
ब्रह्मचर्य धारे सोही, 'अमृत' होते पार ॥२६॥

---

* संकेत

काम वृत्ति त्यागे नहीं, ❀ पचे दाम के हेत ।
'अमृत' फिर कैसे मिले, केश भये शिर † सेत ॥२८॥
नर तन हरि के भजन बिन जानो व्यर्थ गंवार ।
'अमृत' × बेला जात है, कहूं पुकार पुकार ॥२९॥
करो समर्पण शीश को, गुरु चरणन के माहिं ।
तब 'शंकर' मिल जायगी, भव सागर की थाहिं ॥३०॥

अन्य उपदेश

एक भरोसा राम का, दूजा ना विश्वास ।
अमृत निश दिन ह्वे रहो, गुरु चरणन का दास ॥१॥
अन्तर दोष अपार हैं, तीरथ करता धाय ।
'अमृत' मिट सकता नहीं, भ्रान्ति भेद समुदाय ॥२॥
योग युक्ति कर खोजिए, तन तीरथ के माहिं ।
'अमृत' त्रिकुटी मध्य ही, स्नान त्रिवेणी पाहिं ॥३॥
खान, पान, माता पिता, मिलते सब तन माहिं ।
मनुज देह सतगुरु मिले, 'अमृत' यों बलि जाहिं ॥४॥
काया, मन अरु वचन से, कर सत गुरु की सेव ।
भव सागर से तार दे, सङ्ग आपकी लेव ॥५॥
जिसने सतगुरु को किया, अर्पण अपना शीश ।
निश्चय सत् पद पायगा, अमृत विस्वा बीस ॥६॥

❀ परिश्रम करे † सफेद × समय

सत् गुरु सन्मुख ना द्रवे, धृक वह बुद्धि विवेक।
"अमृत' नहिं मिलता उन्हें, मनुज जन्म फल नेक ॥७॥
करता है पाखण्ड नित, कुटुम्ब पालने हेत।
आयु व्यर्थ यों जात है, अबतो चेत अचेत ॥८॥
योग यज्ञ, जप, तप किये, तजा नहीं अभिमान।
'अमृत' कैसे पायगा, अज्ञानी कल्याण ॥९॥
बक ध्यानी अभिमान युत, करता वाद विवाद।
'अमृत' कैसे होयगा, मन का दूर विषाद ॥१०॥
ध्यान धरो नित श्वास में, नयन नासिका लाय।
'अमृत' रूप अखण्ड तब, अपने घट में पाय ॥११॥
बाण गुरू के शब्द का, घुसे हृदय के माहिं।
'अमृत' तब चैतन्य हो, आप आप में पाहिं ॥१२॥
सब की चिन्ता राम को, सदा रहो निश्चिन्त।
'अमृत' आतम दर्शी की, चिन्ता करें अचिन्त ॥१३॥
कर्ता कोई और है, मूर्ख करे अभिमान।
मैं, मैं करना छोड़ दे, अमृत उत्तम ज्ञान ॥१४॥
निर्गुण, सगुण विचार है, भिन्न भिन्न दो भेद।
अमृत पद्द निर्द्वन्द्व है, मिटे मौन से खेद ॥१५॥
वक्ता मिलें अनन्त हैं, लखता लाखों माहिं।
लखे लखावे पात्र लख, 'अमृत' विरला माहिं ॥१६॥
सत्, रज, तम का खेल है, कुमति, आलस, नाश।
'अमृत' इनसे भिन्न है, गुरु चरणन का दास ॥१७॥

जागे आतम ध्यान में, सोवे जग मुख फेर।
अमृत अजपा जप करें, आप आप में हेर ॥१८॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, मन, जप, तप, मख मन जान।
दया, धर्म अमृत कहे, सब मन का अनुमान ॥१६॥
गुरू आज्ञा दे सो करे, देख करे कुछ नाहिं।
वह गुरू-मुखि भव से तिरे, सुखी रहे जग माहिं ॥२०॥
जैसी होवे वासना, तन छूटन की वार।
प्राप्त होय वह ही दशा, अमृत है सत् सार ॥२१॥
मन का अद्भुत खेल है, क्षण क्षण बदले रूप।
अमृत मन महादेव है, सकल जगत का भूप ॥२२॥
सतगुरु की शिक्षा विना, छूटे नहीं विवाद।
'अमृत' गुरू को ढूँढले, होवे दूर विषाद ॥२३॥
तीन भाँति की भक्ति है, तीन भाँति का त्याग।
इनते सुख दुख पावही 'अमृत' त्रैविधि भाग ॥२४॥
ज्ञान तपस्या दान व्रत, तीन भाँति का जान।
सत, रज, तम 'अमृत' कहे, श्रद्धा, योगरू ज्ञान ॥२५॥
मिले हर्ष माने नहीं, गये शोक नहीं होय।
'अमृत' ऐसे सन्त जन, लाखों में हो कोय ॥२६॥
लग्न लगी है राम से, उनके अटपट बैन।
'अमृत' गद् गद गात है, नासा ऊपर नैन ॥२७॥
नाम, रूप, गुण से रहित, क्रिया कर्म से दूर।
मन वाणी कारण विना, 'अमृत' है भर पूर ॥२८॥

अवतो मूर्ख सचेत हो, आयु चली है बीत।
'अमृत' गुरू की शरण हो, सीख भजन की रीति ॥२६॥

ज्ञाता कह सकता नहीं, कहे सो ज्ञाता नाहिं।
'अमृत' स्वाद न कह सके, ज्यों गूँगा गुड़ खाहिं ॥३०॥

शत्रु मित्र कोई नहीं, ऊँच नीच कुछ नाहिं।
वाहर भीतर सब मेरा, 'अमृत' मैं मुझ माहिं ॥३१॥

होनी होकर ही रहे, टले न कोटि उपाय।
'अमृत' यों निश्चिन्त हो, आप आप में पाय ॥३२॥

गुरु चरणन को धूर को, घूर घूर कर जीव।
क्रूर दूर हो कपट से, भूरि भूरि मिल पीव ॥३३॥

झट-पट खट-पट से हटो, अमृत गट-पट त्याग।
नट-खट कट-कट क्यों करे, चट अट-सट से भाग ॥३४॥

मानी प्रेम न पावही, सुधा बिन्दु का स्वाद।
एक म्यान में दो खड़ग, रखना महा प्रमाद ॥३५॥

नेत्र नासिका स्थिर किये, जाने अपना रूप।
विविधि भाँति कौतुक लखै, पावे ज्ञान अनूप ॥३६॥

ॐ-कार के मध्य है चार वेद का भेद।
स्थिति पालन संहार मय, सुखद मंत्र हर खेद ॥३७॥

गुरु चरणन पर वारिये, तन, मन, धन * धी. धाम।
करे जीवसे ब्रह्म है, अमर करादे नाम ॥३८॥

---

* बुध्दि।

शम, दम, की दृढ साधना, करती चित्त पवित्र।
योग युक्ति का मूल है, 'शंकर' विमल चरित्र ॥३९॥
सत्य कर्म, सत् साधना, सतगुरु का सत्संग।
सत्य वचन, सत् नाम जप, 'शंकर' सत्य उमंग ॥४०॥
विद्या उसको जानिये, दूर करे भव भोग।
चित्त वृत्ति निर्मल करे, काटे जग के रोग ॥४१॥
खट्टा, मीठा, सलौना, और नारि का प्रेम।
त्यागे तब 'शंकर' रहे, साधु सन्त की क्षेम ॥४२॥
राजा ऐसा चाहिये, करे प्रजा पर हेत।
'शंकर' दुख को दूर कर, सब काहू सुख देत ॥४३॥
जग में लज्जा से डरे, करे साधु का साथ।
आत्म दर्श की लगन हो, 'शंकर' सुधरे गात ॥४४॥
मन के बल दीखे जगत, भिन्न भिन्न अति भेद।
इसको रोके मिटत है, भव सागर के खेद ॥४५॥
इन्द्रिन से मन प्रबल है, मन से बुद्धि विशाल।
बुद्धि परे है आत्मा, सब पर दीन दयाल ॥४६॥
तेरे अनु सन्धान में, भ्रमण किया चहूं ओर।
मिला नहीं 'शंकर' तभी, देखा घट में दौर ॥४७॥
त्याग जंगल के स्वाद का, सब प्रकार का स्वाद।
'शंकर' मन मावे रहो, मेटो विषम विषाद ॥४८॥
हे भगवन, भव-भय हरण, हे भूतेश, दयालु।
हरो कष्ट संसार के, 'शंकर' परम कृपालु ॥४९॥

सब तज मेरी शरण में, जो आते बन दीन।
मैं उनको रक्षा करूँ, शंकर वचन प्रवीन ॥५०॥

ग्लानि होय जब धर्म की, तब धर मानव देह।
प्रकटे 'शंकर' विश्वपति, कर सन्तन पर स्नेह ॥५१॥

साधन एक प्रधान है, श्वास माहिं रत होय।
'शंकर' अपने रूप को, पाते घट में सोय ॥५२॥

सत गुरु की शिक्षा सुने, मन मे हो अनुराग।
विषयन के उपराम से, तीव्र होय वैराग ॥५३॥

जिसे प्राप्त कर और कुछ, शेष रहे फिर नाहिं।
ऐसे आत्म स्वरूप को, 'अमृत' घट में पाहिं ॥५४॥

चर्म-दृष्टि को रोक कर, आत्म-दृष्टि से हेर।
'अमृत' घट में पायगा, अधिक न लागे देर ॥५५॥

भोग-भाव से जगत है, त्याग भाव से नाहिं।
भोग त्याग दोनों मिटे, 'अमृत' ब्रह्म समाहिं ॥५६॥

एक अखंड अनादि है, जगत उसी का रूप।
आदि अन्त इसका नहीं, 'अमृत' सत्य स्वरूप ॥५७॥

व्याकुल होकर प्रेम में, तन मन सुधि बिसराय।
'अमृत' रँग राता रहे, आतम प्रतिष्ठा पाय ॥५८॥

करुणा भरी पुकार को, सुनते हैं भगवान।
'अमृत' प्रगटें तुरत ही, मेटें कष्ट महान ॥५९॥

रचने वाला एक है, रचना बड़ी विशाल।
स्वयं साक्षी रम रहा, 'अमृत' परम दयाल ॥६०॥

एकहि बना अनेक है, दीखे भिन्न स्वरूप।
माया तम जब दूर हो, 'अमृत' एकहि रूप ॥६१॥
पाप, पुण्य, सुख दुःख अरु, शत्रु, मित्र सम जान ।
जब हो ऐसी भावना, तब 'अमृत' निर्वाण ॥६२॥
चिदानन्द मय आत्म स्थिति, पाते योगी लोग ।
'अमृत' उनके मिटत हैं, जन्म मरण भव रोग ॥६३॥
जहाँ तहाँ मन जाय तो, लावे उलटा खींच ।
समय पाय निश्चल बने, योग युक्ति से, नीच ॥६४॥
गुरु सेवा बिन ना बने, योग, यज्ञ, तप ज्ञान ।
तीरथ, व्रत, नवधा, नियम, दया, धर्म, अरु ध्यान ॥६५॥
लगे शब्द गुरु देव का, घायल पाँचों होय ।
मन मतङ्ग निश्चय डटे, महा तीव्र गति सोय ॥६६॥
सत् गुरु सम्मुख जाय कर, दीन होय पर पाँय ।
'अमृत' हृदय पवित्र कर, निर्भय पद मिल जाय ॥६७॥
ब्रह्म और त्रैदेव गुरु, वेद-ज्ञान गुरु रूप ।
'अमृत' कृपा कटाक्ष से, पावे भेद अनूप ॥६८॥
विद्या, बल, आश्रम वरण, मान बड़ाई त्याग ।
'अमृत' गुरु सेवा करे, धन्य उन्हीं के भाग ॥६९॥
प्रेम बिना नहीं भक्ति है, प्रेम बिना नहीं योग ।
प्रेम बिना नहीं ज्ञान है, मिटे न भव के भोग ॥७०॥
प्रेम गुरु के चरण का, जगत प्रपञ्च विनाश ।
'अमृत' रूप लखाय दे, हो शंकर गुरु दास ॥७१॥

प्रेम रङ्ग में जो रँगे धन्य उन्हीं के भाग।
भव भय से निर्भय बने, छुटे द्वेष अरु राग ॥७२॥

यही ज्ञान, यही ध्यान है, यही योग तप जान।
गुरु चरणन का प्रेम रख, जगत ब्रह्म मय मान ॥७३॥

समदर्शी, शीतल वचन, दया दीनता धार।
नाभि कमल से शिखर तक, करत रहे व्यापार ॥७४॥

तन मन से अरु वचन से, नहीं सतावे काहि।
दया भाव धारे रहे, कर्म गाँठ खुल जाहि ॥७५॥

क्षमा, शील, अरु नम्रता, सत्, सन्तोष, विचार।
'अमृत' सब का हित करे, गुरु चरणन आधार ॥७६॥

अभिमानी पापी महा, इससे रहिये दूर।
कठिन यातना पायेंगे, जो स्वभाव के क्रूर ॥७७॥

क्रोधी कुछ जाने नहीं, कर्तव्याकर्तव्य।
'अमृत' कभी न जाइये, क्रोधी के गन्तव्य ॥७८॥

लोभ नीच के संग से, बचिये आठों याम।
'अमृत' यह अति नीच है, करे राम से वाम ॥७९॥

मोह जगत का बंधिक है, याते रहिये दूर।
जन्म मरण दुख दे यही, इसको तजो जरूर ॥८०॥

सत् भाषण, सत् आचरण, सत् का ही व्यवहार।
शरण सतगुरु चरण की, 'अमृत' भव दुख टार ॥८१॥

गुरु चरणन का प्रेम हो, विचरे आज्ञा माहिं।
असत् कबहु भाषे नहीं, 'अमृत' वह तिर जाहिं ॥८२॥

जब तक रसना शिष्ण का, दूर करे नहीं स्वाद।
'अमृत' तब तक मनुज का, मिटे नहीं उन्माद ॥८३॥

ठण्डा कर भोजन करे, रहे पृथ्वि पर सोय।
कठिन योग सहजहि सधे, द्विविधा रहे न कोय ॥८४॥

ध्यान श्वास का राखिये, नयन नासिका धार।
जाने अपना रूप तब, 'अमृत' ज्ञान अपार ॥८५॥

कहता हूं 'अमृत' सदा, कहा बजाऊँ ढोल।
श्वास श्वास में जा रहा, तीन लोक का मोल ॥८६॥

काम राम दोनों कभी, रहत न एके ठाम।
'अमृत' सुख उसको मिले, तजे काम अरु दाम ॥८७॥

नयन नासिका स्थिर किये धरे श्वास का ध्यान।
'अमृत' तब ही होयगा, प्राप्त विमल विज्ञान ॥८८॥

श्वास देह में घटत है, ज्यों दीपक में तेल।
'अमृत' अवसर जारहा, पूरा होता खेल ॥८९॥

उसके प्रेमी के लिये, मन्दिर हैं सब ठाँव।
सब दिन पूजा के लिये, अमर लोक है गाँव ॥९०॥

बाहर को क्या ढूँढता, घट के पट में देख।
'अमृत' सब बौरा रहे क्या पण्डित क्या शेख ॥९१॥

अन्तर यामी रूप को, बाहर कैसे पाय।
दूध माहिं 'अमृत' रमा, बाहर है घृत बाँध ॥९२॥

राम सकल में रम रहा, ज्यों पुष्पन में गन्ध।
'अमृत' पावे यतन से, देखे हो निर्द्वन्द ॥९३॥

बाहर भटकन में दिया, मानव जीवन खोय।
'अमृत' घट खोजा नहीं, दिया अन्त में रोय ॥९४॥

भटका वाद विवाद में, घट का मिला न भेद।
खटका छूटा न काल का, 'अमृत' मिटा न खेद ॥९५॥

बाहर से भक्ती करे, भीतर भरा विकार।
तब 'अमृत' कैसे मिले, सच्चा सरजन हार ॥९६॥

रमा हुआ जो सकल में, वह बाहर क्यों पाय।
भेद नशे भीतर धँसे, 'अमृत' घट के माँय ॥९७॥

बाहर झूठे खेल को, देखत है दिन रैन।
भीतर सच्चा रूप है, उस बिन मिले न चैन ॥९८॥

अपना रूप बिसार कर जो है सत्य स्वरूप।
बाहर को खोजत फिरे, गिरे अँधेरे कूप ॥९९॥

अपना आपा भूल कर, बाहर करता खोज।
'अमृत' कैसे मिल सके, चिदानन्द की मौज ॥१००॥

बाहर भीतर एक है, जब पाले निज रूप।
भेद मिटे चिन्ता छूटे, हो भूपन का भूप ॥१०१॥

सुरति शब्द का संग हो, तब पावे निज रूप।
'अमृत' नित्यानन्द में, देखे खेल अनूप ॥१०२॥

सुरति टिके संशय मिटे, छूटे वाद विवाद।
'अमृत' आवागमन का, होवे दूर विषाद ॥१०३॥

सुरति माँहि मन रम गया, ढहा भरम का कोट।
'अमृत' मैं, तू मिट गई, गुरु चरणन की ओट ॥१०४॥

सुरति लिपट गई शिखर में, रहा न तन का ज्ञान ।
'अमृत' अपने रूप में, सदा रहे गलतान ॥१०५॥
सुरति निरति का खेल है, जो कोई जाने खेल ।
'अमृत' पासा अगम का, झेल सके तो झेल ॥१०६॥
सुरति सिपाही साथ ले, शून्य महल में आय ।
'अमृत' मन निश्चल बने, अमृत रस को पाय ॥१०७॥
सुरति सयानी हो गई, पाय गुरु की सैन ।
भरम मिटा संशय हटा, 'अमृत' पाया चैन ॥१०८॥
सुरति सुहागनि पीय के, रंग महल में आय ।
आपा अर्पण कर दिया, 'अमृत' हृदय लगाय ॥१०९॥
सुरति टिकी अनुभव खुला धुल गया मन का मैल ।
'अमृत' आतम नगर की, मिली सुहेली गैल ॥११०॥

❀ कुण्डलिया ❀

कैसे जग के जाल से, मुक्ति पा सके जीव ।
स्वादों के सुख में फँसा, जो है दुख की नींव ॥
जो है दुख की नींव, उसे अति दृढ़ करता है ।
इन्द्रिन उदर अपार, कहीं यह भी भरता है ?
ऐसे ही फल मिलें, बीज बोता है जैसे ।
करे जगत के कर्म, प्राप्त हो 'शंकर' कैसे ॥१॥

(२)

जग का धन्धा छोड़ कर, अपना करिये काम ।
निन्दा स्तुति में लाभ क्या, जपिये हरि का नाम ॥
जपिये हरि का नाम, कामिनी कनक तजो तुम ।
कर सत्संग सुजान. सलोना साज सजो तुम ॥
आतम चिन्तन करो, अरे अब तो मति मन्दा ।
"शंकर" कार्य सुधार, त्याग कर जग का धन्धा ॥२॥

(३)

साथी तेरा कौन है, सब स्वारथ के लोग ।
मेरा मेरा कह रहे, किन्तु चाहते भोग ॥
किन्तु चाहते भोग, स्वार्थ बनता है तब तक ;
करते तुझ से प्यार, भार ढोता है जब तक ॥
काया निर्बल होय, बात तेरी न सुहाती ।
'शंकर' जग के माहिं, सभी मतलब के साथी ॥३॥

[४]

राग द्वेष क्यों कर करें सब ईश्वर के रूप ।
किन्तु स्वार्थ वश कर रहे, खोदें निज हित कूप ॥
खोदें निज हित कूप, डूबना इसमें पड़ता ।
उच्च, नीच फँस रहे, प्रबल अति है यह जड़ता ॥

रचते विरले सन्त हैं, जिन्हें आत्म अनुराग।
'शंकर' पद उन को मिले, हरे द्वेष अरु राग ॥४॥

[५]

समता से ममता हटे, प्रगटे आत्म प्रकाश।
जग झूठा तरशे तभी, होय दुई का नाश॥
होय दुई का नाश, आश कुछ रहे न मन में।
भावी का नहीं सोच, वृत्ति हो आत्म यतन में॥
द्वन्द मिटे, निर्द्वन्द भाव में, रहे न ममता।
'शंकर' वह नर सुखी, जिन्हों के घट में समता॥५॥

[६]

सचाई अरु प्रेम से, जग में चलता काम।
जहाँ कमी इनमें हुई, बिगड़े काम तमाम॥
बिगड़े काम तमाम, साथ कोई नहीं देता।
करे घृणा सब कोय, नाम निज नाहीं लेता॥
'शंकर अपनी दूर करो, तुम यह कच्चाई।
प्रेम पूर्वक बनी रखो, अपनी सच्चाई॥६॥

[७]

काया रहे निरोग अरु आत्म दर्श मिल जाय।
तो बस फिर आनन्द है, शेष रहा कुछ नाय॥
शेष रहा कुछ नाय, इसी का यत्न करो तुम।

त्यागो व्यर्थ प्रपञ्च, गुरु की शरण गहो तुम ॥
'सोहं' साधन आत्म दरश का मुख्य बताया।
खान, पान, व्यवहार सुधारे सुख से काया ॥७॥

[८]

काम, क्रोध अरु लोभ को, त्याग देय सो सन्त।
पण्डित वही कहावते, यों कहते गुण वन्त ॥
यों कहते गुण वन्त, यही तीनों दृढ़ शूरा।
इन्हें मारदे वही जगत में मानव पूरा ॥
'शंकर' इनसे बच रहे, वह पाते सुख धाम।
विरले बड़ भागी तजें, लोभ, क्रोध अरु काम ॥८॥

[९]

तरुणाई के जोश में, ऐंठे मत रे क्रूर।
काचा भांडा एक दिन, होय धूर की धूर ॥
होय धूर की धूर, गन्दगी के इस घर की।
मत मन ममता करे, अरे, इस काया नगर की ॥
जीर्ण होय जब देह, दूर हो सब चतुराई।
चार दिनों की रात, चाँदनी यह तरुणाई ॥९॥

[१०]

कहने भर को जगत है, वास्तव में कुछ नाहिं।
ज्योति चमकती, ईश की, शंकर कण कण माहिं ॥

शंकर कण कण माहिं, जगत सब रूप उसी का ।
ईश्वर एक अखण्ड भाव नहीं अन्य किसी का ॥
मिथ्या है यह भाव, "त्याग ने अरु क्या गहने" ।
कह गये सन्त अनन्त, पुनः को आवे कहने ॥१०॥

[११]

काम, क्रोध की गठरिया, लेकर फिरे हमाल ।
मन में बना अमीर है, गाता फिरे धमाल ॥
गाता फिरे धमाल, हृदय में कपट भरा है ।
करे ज्ञान की बात, दया मन में न जरा है ॥
कहते सन्त सुजान, मान ले बात बौध की ।
'शंकर' फेंक उतार, गठरिया काम क्रोध की ॥११॥

[१२]

जग में सच्चे बहुत कम, झूठे भरे अनेक ।
सावधान हो चालिये, कह गये सन्त कितेक ॥
कह गये सन्त कितेक, झूठ जग का व्यवहारा ।
जो कहता है सत्य वही लगता है खारा ॥
कण्टक तीखा बहुत झूठ का जानों मग में ।
सदा बचा कर पैर चलो, 'शंकर' इस जग में ॥१२॥

[१३]

क्रोधी जग का मैल है, फैलाता * दुर्गन्ध ।

---

* अशांति

वचन, कर्म से नीच यह, करता नष्ट ‡ सुगन्ध ॥
करता नष्ट सुगन्ध, सदा ही दुःख पाता है।
देता सब को कष्ट, नष्ट ख़ुद हो जाता है॥
सत्य-शान्ति कर नाश, नार की जीव अबोधो।
जानों काला नाग, जगत में मानव क्रोधी ॥१३॥

[१४]

करना संगति मूर्ख की, दुःख से ढोना भार।
नित-प्रति ठोकर ही लगे, पावे कष्ट अपार॥
पावे कष्ट अपार, मूर्ख का संग न करिये।
चाहे सागर डूब, चाहे खाकर विष मरिये॥
काल कूट से भरे, सर्प को गल में धरना।
मूर्ख मनुज का संग, कभी 'शंकर' नहीं करना ॥१४॥

[१५]

नरमी में आनन्द है, सुन लेना सब कोय।
इसका ही बल जगत में, देय क्लेश को खोय॥
देय क्लेश को खोय, नम्रता जो नर धरते।
सुर, नर रावरु रङ्क सभी हैं आदर करते॥
वह नर ठोकर खायँ, भरी है जिनमें ग़रमी।
सुख चाहो तो धरो सदा, 'शंकर' हिय नरमी ॥१५॥

---

‡ शांति

[१६]

बिगड़ी का बनना कठिन, इस में संशय नाहिं।
गया समय आवे नहीं, चेत करो चित माहिं॥
चेत करो चित माहिं, नेह जुड़ता नहीं टूटा।
विगड़ गई जो वात काँच फूटा सो फूटा॥
चिन्ता दूर न होय, हृदय में सिलगे सिगड़ी।
'शंकर' सुधरे नहीं, वात बिगड़ी सो बिगड़ी॥१६॥

[१७]

बाहर भीतर एक है, जब पाले निज रूप।
भेद मिटे चिन्ता हटे, हो भूपन का भूप॥
हो भूपन का भूप, द्वन्द फिर रहता नाहीं।
पावे गति निर्द्वन्द, वही नर घट के माहीं॥
मैं, तू का संशय मिटे, रहे न दुविधा नेक।
'अमृत' घट के पट खुलें, बाहर भीतर एक॥१७॥

[१८]

मन मतवाला बन रहा, पीय विषय की भंग।
ऊँच नीच समझे नहीं, पा इन्द्रिन का संग॥
पा इन्द्रिन का संग, भटकता फिरता बाहर।
होय रहा निर्द्वन्द जाहि विधि वन में नाहर॥
सन्त शूरमा इसे पकड़, पिंजरे में डाला।
'अमृत' वश में किया, टेक धर मन मतवाला॥१८॥

चतुष्पदी

कैसे करूँ भगवान् तेरी इस मुँह से बड़ाई।
अति ही विचित्र रूप से है सृष्टि बनाई॥
इस विश्व में आकार हैं नाना प्रकार के।
अद्भुत सुरंग रंग हैं सागर हैं सार के॥१॥
लीला विचित्र देख कर, आश्चर्य चकित हैं।
गुण का बखान करके, वेद भी तो चकित हैं॥
नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र ग्रह तारे अनन्त हैं।
इन में भरी जो शक्ति है उसका न अन्त है॥२॥
पक्षी अनेक भाँति के कलरव विचित्र है।
संसार को सजा रहे, जीवन पवित्र है॥
वृक्ष वल्ली अनन्त गुणों से भरी हुई।
उनमें प्रवेश है तेरा, जिस से हरी हुई॥३॥
पत्थर को दे प्रकाश तू हीरा बना दिया।
मोती बनाके सीप में बल को जना दिया॥
देवों में दानवों में प्रबल शक्ति भर दिई
रचना अनन्त लोक की, क्षण भर में कर दिई॥४॥
हाथ, पैर, नाक जीभ, सब दिये मुझे।
सुन्दर सुडौल देह में अतएव सभी सजे॥
नाना प्रकार से यह भोग, भोग रहे हैं।
तेरी दया से रोग सभी दूर रहे हैं॥५॥

सन्तोष, शील, भक्ति दया, योग बनाये ।
काम, क्रोध, लोभ, मोह साथ लगाये ॥
तेरी दयालुता में तो, भगवन् कमी नहीं ।
मेरी कृतघ्नता में भी लेकिन कमी नहीं ॥६॥
अणु में महान में तेरा प्रवेश है प्रभो ।
ब्रह्माण्ड पिण्ड एक है, आदेश यह प्रभो ॥
द्वैत बुद्धि से यह भिन्न दीख रहा है ।
वास्तव में एक है, सभी सन्तों ने कहा है ॥७॥
सत् रूप तेरा है तुझे सच्चे ही पा सके ।
चित् भाव तेरे में कोई चैतन्य आ सके ॥
आनन्द रूप है तेरा, दुःख का न लेश है ।
व्यापक है सकल में तू ही कुछ भी न शेष है ॥८॥
सर्वत्र है समान है, व्यापक है इष्ट है ।
संकल्प से बनी तेरे, सुडौल सृष्टि है ॥
कर्ता है तुही कर्म तुही और क्रिया है ।
नाना स्वरूप में तुही अवतार लिया है ॥९॥

मन की महिमा

❀ दोहा ❀

मन की लीला प्रबल है, यों कहते हैं सन्त।
जो इसको निश्चल करे, वो पावे सत्पन्थ॥

❀ चौपाई ❀

मन की गति अति चञ्चल भारी,
कहे शास्त्र अरु संत पुकारी।
क्षण में सुख के खेल रचाता,
ताहि समय पुनि अति दुःख पाता।
क्षण में कायर क्षणहिं सुवीरा,
क्षण में मूर्ख ताहि क्षण धीरा।
धन अभिमान करे विधि नाना,
क्षण में दीन भाव उपजाना।
जप, तप, यज्ञ, करूँ मैं भारी,
मिलहिं पुत्र, धन सुन्दर नारी।
हनूँ शत्रु जो सम्मुख आवे,
क्षण में बल का भाव बताये।
योग, भक्ति वैराग्य अचारा,
करन चहे क्षण में अति भारा।
सत वादी मुझसा नहीं कोई,
इस से मेरी शुभ गति होई।

कभी कहे मैं पापी भारी,
पछतावे निज कर्म विचारी।
कभी साधुओं के ढिंग जावे,
सत्संगति के लाभ बतावे।
मुझ से भी हो कुछ सेवकाई,
दया करे सन्तों की छाई।
क्षण में धन, पुत्रन को माँगे,
साधु सेवा के फल को त्यागे।
कभी कहे झूठा जग सारा,
हुआ मुझे वैराग्य अपारा।
क्षण में आत्म देव आराधे,
नाना विधि से साधन साधे।
राव, रङ्क सब की गति येही,
मन रोके सो राम सनेही।

मन मतवाला सारथी, चाहे जित ले जाय।
स्वर्ग, नरक, अपवर्ग में देता यह पहुंचाय॥
दया करे गुरु देव अरु, सत् साधन लग जांय।
तब मन चञ्चलता तजे, 'अमृत' सत पद पाय॥

श्री गुरु महिमा

❀ दोहा ❀

है सत गुरु संशय हरण, करण सकल आनन्द।
जन्म मरण भय कर शमन, 'शंकर' परमानन्द॥

❀ चौपाई ❀

जयति गुरो निज तत्व विहारी।
दया सिन्धु भव के दुख हारी॥
गुणातीत गुणमय गुण धारी।
विश्व-विमोहक विभु अविकारी॥
तत्वाधार जनक सब जग के।
है प्रभु, पावन-पथिक सुमग के॥
द्वन्द-रहित निर्मल-सुख दायक।
परम-कारुणिक नियम विधायक॥
निर्गुण सगुण जगत के नायक।
हे ईश्वर, हो मेरे सहायक॥
हे गुरु, तुरिय-तत्व-विहारी।
पूर्ण सुषुम्ना के अधिकारी॥
योगेश्वर निगम गम भारी।
मेरु दण्ड पथ शून्य विहारी॥
शक्ति कुण्डली के तुम दोहक।
अटल खेचरी मुद्रा मोहक॥

भाव उन्मनी आतम जोहक।
नित्य शुद्ध बुध विश्व विमोहक॥
प्राण आरती में ॐ दश बतियाँ।
नाद अनाहत × चारों गतियाँ॥
अष्ट कमल दल झूला सोहे।
शून्य शिखर गढ़ मन्दिर मोहे॥
पञ्च तत्व हैं परम पुजारी।
तीनों गुण सेवक अति भारी॥
षट् चक्रन में सोहं देवा।
शुद्ध ब्रह्म अति सुन्दर सेवा॥
तीन लोक में रूप विराटा।
अति विचित्र गति है विभ्राटा॥
व्यापक अणु २ में तुम देवा।
स्थूल सूक्ष्म कारण के खेवा॥
'अमृत नाथ' मनुज तन धारा।
सुरति निरति ले गगन सिधारा॥
मङ्गल गाते हैं नर नारी।
'शंकर' शुभ गति करो हमारी॥

~~~~~~
~~~~~~

॥ ॐ ॥

पद्य भाग

द्वितीय खण्ड

(राग काफ़ी)

गणपति गुरु के चरण मनाऊँ,

सेवक जान सहायता करि हैं,

पद रचना बल पाऊं ॥

मूल कमल में गणपति राजे,

चार पत्र, दल अद्भुत साजे।

अरुण रङ्ग शङ्खिनी स्वर बाजे,

छः सौ अजपा मंत्र जपाऊँ ॥१॥

व, श, ष, स चार हाथ हैं,

तुण्डाकार * अपार माथ हैं।

सुरति, निरति दो सखी साथ हैं,

भूचरि मुद्रा देह बनाऊँ ॥२॥

---

* पच्चीस प्रकृति।

वायु अपान तहां पर सोहे,
ऊर्द्ध अधोगति प्राण विमोहे।
भरि पूरक को निश दिन दोहे,
दृढ़ आसन शुभ सिद्ध जमाऊँ ॥३॥

अजपा की गणना के स्वामी,
ताते गणपति चरण नमामि।
योगाधार पूर्ण निष्कामी,
ज्योति विवेक अखण्ड जगाऊँ ॥४॥

'अमृत नाथ' मूल चेतावे,
प्राण अपान नाभि में लावे,।
बङ्क नाल पथ शून्य समावे,
शंकर सत्य-नित्य पद पाऊँ ॥५॥

(राग कलिंगड़ा)

साधो काया नगर गढ़ भारी।

पांच तीन का कोट बना है, बीस ❀ पांच रखवारी।
गगन भूमि बिच, झण्डा भारी, डोर लगी इक सारी।
अट पट रंग जाने कोई विरला, सुरति शिखर में धारी ॥१॥
मुक्ति द्वार पर मन है सिपाही, ले पांचों हथियारी।
रैन दिवस अति चञ्चल गति से, समर करे है भारी ॥२॥

शूर वीर आगे पग धरता, कायर परे पिछारी।
चतुर होय सो जीते रण में, हारे मूढ अनारी ॥३॥
वङ्क नाल पथ ÷ लोहा बाजे, अष्ट प्रहर इक सारी।
लागे गोला जबहि ज्ञान का, भ्रम का कोट संहारी ॥४॥
तन की चिन्ता तनिक न राखे, जीत चले रण भारी।
'अमृत नाथ' अमर गढ़ पावे, तुरिया तत्व बिहारी ॥५॥

[२]

साधो समता हृदय में धरना।
अह् निश नाभि शिखर के भीतर, निश्चल होय विचरना।
अल्पाहार विचार ब्रह्म का, मन चञ्चल वश करना ॥
मान, बड़ाई, लोभ, ईर्षा, काम, क्रोध, से टरना ॥१॥
रखो अटल विश्वास गुरु का, जो चाहो भव तरना।
आप जगत में जगत आप में, लख द्विविधा को हरना ॥
भूमि † गगन विच थम्भ रोप कर अजपा जाप सुमरना।
चन्द्र सूर्य की गम जहां नाहीं, सुरति शिखर में धरना ॥३॥
उनमनि धुनि में रहना निशदिन, लें सत गुरु का शरणा।
'अमृत' सहज समाधि लगे तब फिर नहीं होय उतरना ॥४॥

[३]

साधो अलख लखे सोही शूरा।
जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तज कर हो तुरिया में पूरा।

÷ युध्द हो। † नाभि से शिखर तक।

षट कमलों को छेद युक्ति से, सुनता अनहद तूरा।
इड़ा, पिङ्गला सम कर राखे, हो सुषुमन के घूरा ॥१॥
हो लय लीन अमीरस पीवे, कर द्विविधा को दूरा।
घाट त्रिवेणी बाट ब्रह्म की, लाभ करे पद ※ रूरा ॥२॥
निर्मल करणी भव दुख हरणी, समदर्शी सांई पूरा।
आवा गमन मिटावे अपना, होय प्रेम रस चूरा ॥३॥
त्यागे भेद, खेद को टाले, दूर करे मति कूरा।
जीवन मुक्ति लहे सोही 'अमृत' पावत है निज नूरा ॥४॥

[४]

साधो घट में गङ्गा न्हाओ।
यामें न्हाये पाप दूर हो, जन्म मरण विनशाओ।
दया तीर सन्तोष नीर है तामें गोता लाओ।
काम, क्रोध, मद, मोह मैल को, धोकर दूर हटाओ ॥१॥
अड़सट तीरथ चार धाम सब, घट गङ्गा में पाओ।
हो तन्मय चढ़ नाव भक्ति की, अमर लोक को धाओ ॥२॥
शिखर लोक से अमृत टपके, गुरु सेवा से पाओ।
रैन दिवस अविराम वेग से, पीवत नाहिं छकाओ ॥३॥
नाभि शिखर बिच लहर उठत है, तामें मन को लाओ।
'अमृत' गङ्ग अथाह नीर है, घाट त्रिवेणी पाओ ॥४॥

※ सुन्दर।

[५]

अवधू शंकर पद उन पाया ।

त्रिविधि कर्म का मर्म जान कर, समता चित में लाया ।
मैं, तू द्वन्द हटाय चित्त से, एक रस रूप बनाया ॥१॥
तज अभिमान, सुजान मान की, इच्छा में फँसाया ।
दया क्षमा सन्तोष, आर्जव, शील तत्व अपनाया ॥२॥
ब्रह्मचर्य दृढ़ धार क्रोध को मार शान्ति मन लाया ।
भव दुखं हरणी, निर्मल करणी, कर सत् पथ को धाया ॥३॥
सत् संगति अरु गुरु की सेवा, भव दुख माहिं सहाया ।
'अमृत' लगन लगी जब मन में, सफल हो गई काया ॥४॥

[६]

प्राणी क्या सुख निद्रा आवे ।

घटते श्वास क्षीण हो काया, डङ्का काल बजावे ।
झपटे आज काल एक पल में, फिर तोहि कौन बचावे ॥१॥
बाला पन खेलन में खोया, तरुण विषय ललचावे ।
वृद्ध भये शिथिलाई आई, तब काया मुरझावे ॥२॥
पैना बाण काल का लागे दशों द्वार रुक जावे ।
हो अधीर तब रोवे बहु विधि, सिसक २ दुख पावे ॥३॥
बीते रात प्रभात होत है, 'अमृत' * बेला जावे ।
हो चैतन्य स्मरण कर अपना, समय चूक पछतावे ॥४॥

[७]

गुरु मेरे तन की तप बुझाओ,
माया कृत है सकल प्रपञ्चा इनसे मोहिं छुडाओ ॥
धन अरु धाम बन्धु, सुत, दारा, इनका मोह हटाओ ।
राग द्वेष, ईर्षा, मद, मोहा, लौलुपता विनशाओ ॥१॥
आत्म ज्ञान का तेज बढ़ा कर, माया तम को मिटाओ ।
विषय वासना हटा चित्त से, समता दान दिलाओ ॥२॥
शरणागत की लाज रखो गुरु, अपना विरद समाओ ।
'अमृत' टेरत बेर हो गई, 'शंकर' दया कराओ ॥३॥

[८]

सतगुरु नौका पार उतारो ।
भव सागर का थाह नहीं है, मन के वट, मतवारो ।
हूं अनाथ कोई नहीं साथी केवल तव अधारो ॥१॥
पञ्च भ्रमर मग में अति भारी, रोकत गैल हमारो ।
अति विकराल रूप है सब विधि मच्छ एक मतवारो ॥२॥
पाँच मीन अति दीन जान मोहिं देत त्रास अति भारो ।
काँपत काया भय अति छाया, स्वामी दया विचारो ॥३॥
'अमृत नाथ' दया के सागर, मेरे दुःख निवारो ।
'शंकर' तव चरणन शरणागत, भव से शीघ्र उवारो ॥४॥

[९]

स्वामी कैसे देर लगाई।

जब नहीं देर करी प्रभु तुमने, द्रुपदी चीर बढ़ाई।
गौतम नारि, जटायू गृद्धा, तारे सजन कसाई ॥१॥
ध्रुव, प्रह्लाद, कबीर जुलाहा, नरसी, मीरां बाई।
अम्बरीष हरिश्चन्द्र उबारे, तारे सैना नाई ॥२॥
भिलनी हेतु आपने स्वामी, जूठे बेर रुचाई।
विप्र सुदामा और विभीषण, सबकी विपति मिटाई ॥३॥
भक्त तार कर यश क्या पाया, इसमें क्या अधिकाई।
बिना भक्ति जो मुझको तारो, प्रकटे तब प्रभुताई ॥४॥
टेरत हो गई देर दया निधि, अजहुं दया नहीं आई।
'शंकर' पार उतारो भव से, सत गुरु करो सहाई ॥५॥

[१०]

मन तू राम नाम नहीं लीना,

मानव तन झूँठे प्रपञ्च में मूर्ख व्यर्थ खो दीना।
काम, क्रोध मद सुखमय समझे हरि से हेत न कीना।
धन सञ्चय को मुख्य मान कर किये कर्म तू हीना ॥१॥
मात पिता, दारा, सुत, भ्राता, इनमें मन अर्ति दीना।
बीते श्वास काल जब आया, तब अति भयो अधीना ॥२॥
अजहूं चेत समझ नर भोंदू, सुन गुरु ज्ञान प्रवीणा।
'अमृत' दया करें तब मिलि हैं, 'शंकर' चरण अदीना ॥३॥

[११]

सतगुरु तुम समर्थ जग माहीं,

नाड़िन में तव रूप सुषुम्ना, कुम्भक केवल पाहीं।
मुद्रन में उनमनी रूप तुम, तुरिय अवस्था माहिं ॥१॥
रूपातीत ध्यान तुम देवा, वाणी आप परा ही।
ज्ञान समाधि प्राण वायु तुम, अजपा जाप जपाहीं ॥२॥
बन्धन में उड्यान रूप तुम, अर्चन आतम पाहीं।
शील, दया, सन्तोष रूप तुम, अचल अपार अथाहीं ॥३॥
देश काल का भाव न व्यापे एक रस रूप सदा ही।
'अमृत' चरण कमल पर, 'शंकर' वार २ बलि जाहीं। ४॥

[१२]

मन मानत नाहीं गन्दा,

ममता के मदमाता होकर, नारी प्रीति करन्दा।
काम क्रोध, मद लोभ रसा है, इन्द्रिय स्वाद लहन्दा ॥१॥
सच को झूठ, झूठ सच माने, ऐसा है मतिमन्दा।
रैन नींद भर सुख चाहत है, दिन चाहत है धन्दा ॥२॥
सत संगति में लगे नहीं यह, जाय परत है खन्दा।
हानि लाभ कुछ सोचत नाहीं, होता ना शर्मिन्दा ॥३॥
सतगुरु 'अमृत नाथ' दया कर, इसको अचल करन्दा।
'शंकर' विनय करत निशवासर, तव चरणन का बन्दा ॥४॥

[राग पीलू बरवा]

अब तो लम्पट तज लौलुपता, कठिन यातना पाना होगा।
विषय स्वाद में अति सुख माना, आगे कौन ठिकाना होगा।
दुसह दुःख यम किंकर देंगे, हां अधीर पछताना होगा ॥१॥
मात, पिता, दारा, सुत, भ्राता, द्रव्य, धाम तज जाना होगा।
ले सत गुरु की शरण बावरे, "शंकर" चरण ठिकाना होगा ॥२॥

[२]

जय जय जय सत रूप गुसांई,
निज जन पालक शुभ मति दाई ॥१॥
भव निधि तारण भक्त उबारन,
तव मूरति मोरे मन भाई ॥२॥
कारण करण, हरण विपयन के,
मेटत भक्तों की कठिनाई ॥३॥
प्रेम विवश तव विरद दया निधि,
संकट हरण शरण सुख दाई ॥४॥
'अमृत नाथ' सुनो मम विनती,
'शंकर' तव चरणन लिपटाई ॥५॥

प्रभाती

जागो सत गुरू दयाल, भक्त * जन पुकारे ।
तन, मन, धन वारन को, आय खड़े द्वारे ॥१॥
हिम कर निजधाम गया, उड़गण विश्राम लिया ।
पच्छिन कुहराम किया, आलस तज डारे ॥२॥
दिन मणि का तेज भया रात्री तम दूर गया ।
सन्तन आनन्द लहा, जयति जय उचारे ॥३॥
दानी बहुदान करे, ध्यानी तव ध्यान धरे ।
ज्ञानी एकान्त बैठ, तत्त्व को विचारे ॥४॥
रति *पति † शिव गुण अपार, लाभ मोह प्रबल धार
एक द्रव्य और नार, जडमति कर डारे ॥५॥
'अमृत' आनन्द रूप, एक छत्र सुखद भूप ।
'शंकर' महिमा अनूप, सकल ताप टारे ॥६॥

[२]

गुरु वर है शरण एक, चरण फी तुम्हारे ।
§ मृषा फन्द जग का है, थके जीव सारे ॥१॥
जप तप अरु योग ज्ञान, केवल तव चरण ध्यान ।
है नहीं + प्रतीति आन, हे गुरो हमारे ॥२॥
थक जावे काम क्रोध, होय आत्म रूप बोध ।
ऐसी हो दया नाथ, कटैं कर्म सारे ॥३॥

---

* काम † क्रोध § मिथ्या + विश्वास

कब से मैं रहा टेर, इतनी क्यों करी बेर।
अब न करो तनिक देर, मेरे रखवारे ॥४॥
"अमृत' मम त्रास हरो, ममता का नाश करो।
समता के भाव भरो, 'शंकर' बलिहारे ॥५॥

[३]

जय जय सत गुरु दयाल, प्रणत क्लेश हारी।
कामादिक शत्रु दलन, हरण ताप भारी ॥१॥
अशुभ कामना विनाश, सन्तन की हरण त्रास।
भक्तन के रहत पास, जग के हित कारी ॥२॥
भोगो के हरण रोग, योगी को देय योग।
दुष्टन की मति सुधार, दीनन हितकारी ॥३॥
दृढ़ता चित माहिं लाय, गावे रसना जगाय।
ध्यावे जो मन लगाय, होवे भव पारी ॥४॥
"अमृत' आनन्द देय, चरण शरण माहिं लेय।
'शंकर' यह अटल ध्येय, करि हैं रखवारी ॥५॥

[४]

भजले मन राम नाम जन्म क्यों गमावे।
विषयन में रहा भूल, चेतन को गया भूल ॥
मूर्ख व्यर्थ रहा फूल, मृत्यु निकट आवे ॥१॥
जग प्रपञ्च झूठ जान करले आतम निदान।
नश्वर शरीर जान, छो हो, मिट जावे ॥२॥

जाकर सन्तन समाज, सजले यम, नियम साज।
जिससे बन जाय काज, सद् गति पा जावे ॥३॥
'अमृत' घट माहिं ❀ जोय, तब अक्षय अभय होय।
'शंकर' आनन्द सोय, आत्म रूप पावे ॥४॥

[५]

अब तो कर चेत अधम हो गया ‡ सकारा।
काम, दाम ममता में, भटका मतिमारा ॥१॥
जन्म दिवस चले बीत, तदपि चाहे अरीत।
ईश्वर से नहीं प्रीति, दण्ड मिले खारा ॥२॥
काम क्रोध में प्रवीण, दम्भ मोह माहिं लीन।
बुद्धि अति है मलीन, शीष भार भारा ॥३॥
'अमृत' चैतन्य होय, साधन में लगे जोय।
सद् गति को पाय सोय, सतगुरु आधारा ॥४॥

[६]

हे गुरु तुम्हरी कृपा होय जब टूटे विषयन का फन्दा।
आवा गमन दूर हो तब ही, अचल होय मन मति मन्दा ॥१॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह के जाय परत है नर † खन्दा।
राग, द्वेष, ईर्षा, लौलुपता, सदा रहे इनमें अन्धा ॥२॥

❀ देख
‡ सवेरा
† गहरा खड्डा

क्षण २ उदय होय विषयन का, अरु इन्द्रिय गण मचलन्दा।
धर्म अधर्म विचारत नाहीं, केवल स्वारथ का धन्धा ॥३॥
वशीभूत है निज कर्मों के, सुरनर मुनि, सूरज चन्दा।
'अमृत' कर्म काट दे सत गुरु, तब हो 'शंकर' आनन्दा ॥४॥

[७]

जिन खोजा तिन पाया साधो जिन खोजा तिन पाया।
कथनी कथ कथ लाखों मरिया, भेद न अपना पाया।
त्याग विषय सुख करणी करता, वह गुरु के मन भाया ॥१॥
नाभि कमल से चेतन होकर, मेरु दण्ड पथ धाया।
शून्य शिखर में जाय समाया, गुणातीत घर पाया ॥२॥
एक होय पिण्डा ब्रह्मण्डा, ध्यान उनमनी लाया।
कोटि भानु सम भया उजाला, सूरज चन्द लजाया ॥३॥
अटल समाधि लगे योगी की, भ्रम का भार हटाया।
तीन छोड़ चौथा पद पाया, आवागमन मिटाया ॥४॥
अमृत नाथ अखण्ड रूप में, जाय मिले सुख पाया।
वार न पार हद नहीं बे हद, पद निर्वाण सुहाया ॥५॥

[८]

साधो गुरु की प्रभुता भारी।

महा स्वतन्त्र परम उपकारी; तम अज्ञान विडारी।
भव भय नाशक सत्य प्रकाशक, काम क्रोध भय टारी ॥१॥
मुनि मन रञ्जन, खल दल गञ्जन, भक्तन के हितकारी।
मोह हरण, प्रण तारन भञ्जन, सत् स्वरूप सुखकारी ॥२॥

तीन काल की गति को जानत, नाशत अघ अति भारी।
अन्तर्यामी, पूर्णअकामी, शरणागत दुख हारी ॥३॥
सत चित सुख के रूप गुरु हैं. गुणातीत गुण धारी।
'अमृत नाथ' भक्त सत गुरु के पावे ब्रह्म अटारी ॥४॥

[९]

सन्तो पिव से डोर लगाओ।

जन्म मरण दुख मेटा चाहो, तो समता चित लाओ।
काम, क्रोध, मद, मोह हटाकर, सत् सन्तोष जगाओ ॥१॥
प्रेम मांहिं तन्मय हो ऐसे, तन की सुरति भुलाओ।
गद्‌गद् रहो मौन व्रत धारो दृढ कर आसन लाओ ॥२॥
अजपा जाप जपो निशवासर, सुषुमन तकिया लाओ।
घाट त्रिवेणी पीव मिलेंगे, रूप में रूप समाओ ॥३॥
आवागमन दूर हो तब ही, भ्रम का भार हटाओ।
'अमृत' निर्भय शून्य शिखर में, परम हंस पद पाओ ॥४॥

[१०]

साधो सत्संगति बल भारी।

लख पावे निज रूप तुरत ही,
त्रैगुण फाँस निवारी।
कीट बने संगति से भँवरा,
अपना रूप निवारी ॥१॥

चन्दन संग नीम हो चन्दन,
पाय सुगन्ध पियारी।
सज्जन साथ नीच सज्जन हो,
निज दुर्मति को टारी ॥२॥
पारस संग स्वर्ण हो लोहा,
मिले प्रतिष्ठा भारी।
तिल को साथ मिले गन्धी का,
लहे सुगन्धी सुप्यारी ॥३॥
एक और सुख स्वर्ग मोक्ष का,
सत् संगति एक ÷ पारी।
अर तीलो नहीं होय बराबर,
'अमृत' सत्य विचारी ॥४॥

[११]

सन्तो ऐसा भेद बताया।

कृपा हुई जब गुरु अपने की भ्रम का भार हटाया।
§ सैन करी सत गुरु निर्वाणी सत की नाव चढाया।
जन्म २ का कर्म काट कर, निर्मल रूप बनाया ॥१॥
ज्ञान ध्वजा घट में फहराई, घाट त्रिवेणी न्हाया।
अगम देश बेगम नगरी में, अलख पुरुष दरशाया ॥२॥

÷ पलड़ा।

§ संकेत

ऐसा घर सत गुरु दिखलाया, जो विरले लख पाया ।
ज्ञानी ध्यानी थक कर बैठे, खोजी खोज लगाया ॥३॥
पांच चोर बसते घट भीतर, हाथ. पांव नहीं काया ।
गुरुवर ने, पहचान बताई, उनको मार भगाया ॥४॥
जन्म मरण की त्रास न व्यापे, मन चञ्चल घर आया ।
'अमृत नाथ' अगम मग पाई, वज्र कपाट हटाया ॥५॥

[१२]

सन्तो ऐसा योग बताया

भ्रम का भेद हटाय हृदय से. निर्मल ज्ञान सिखाया ।
त्रिगुण रहित निर्बाणी पद का, निश्चल ध्यान बताया ॥१॥
पांच पचीसों मार हटाया, आवागमन नशाया ।
जप, तप, योग, यज्ञ कुछ नाहीं, ना तीरथ मन धाया ।
सहज भाव से समता पाई, अमर नगर दरशाया ॥२॥
सोहं शब्द जगा घट भीतर, नाभि कमल सरसाया ।
बङ्क नाल की राह पकड़ कर, शून्य शिखर को धाया ॥३॥
'अमृत' अपना रूप पालिया, भ्रम का भार हटायो ।
सिंह गर्जना होय शिखर में, गुञ्जत सारी काया ॥४॥

[राग आशावरी]

अवधू ऐसा योग कमाओ ।

तज जग जाल, सम्हाल सुरति को, शून्य शिखर में लाओ ।
हो चैतन्य मान गुरु शिक्षा, मूल, हृदय चेताओ ।
प्राण अपान मिलाय नाभि में, दश दिशि चक्र घुमाओ ॥१॥

सोहं शब्द उठाय युक्ति से. पश्चिम दिशि को धाओ ।
शून्य शिखर में भ्रमर गुफा के, वज्र कपाट हटाओ ॥२॥
अमर ताल अमृत से भरिया, हंस किलोल मचाओ ।
सदा बसन्त, रैन दिन नाहीं, एक रस रूप बनाओ ॥३॥
काल ज्वाल का भय तहाँ नाहीं परम स्वतन्त्र कहाओ ।
'अमृत नाथ' अगम धुनि लागे, ब्रह्म रूप हो जाओ ॥४॥

[२]

सन्तो शूर वीरता धारो ।
जब तक प्राण रहे काया में, कायरता न विचारो ॥
सत का सांग उठाय हाथ में, तप तलवार सम्हारो ।
शील क्षमा, की ढाल लेय कर, रणथल में हुंकारो ॥१॥
काम क्रोध, से प्रबल रिपुन को, हो सम्मुख ललकारो ।
रैन दिवस जब लोहा बजे, कांपे मन मतवारो ॥२॥
पीछे पैर धरो मत वीरो, आगे को चित धारो ।
शीश दिये से बनि है सौदा, गुरु चरणन पर वारो ॥३॥
अमर नगर में राज्य मिले तब, होवे सफल जमारो ।
'अमृत नाथ' अमर पद पाकर, आवा गमन निवारो ॥४॥

[३]

साधो घट का भेद बतावो ।
पिण्ड और ब्रह्माण्ड खोज कर, एक रस रूप दिखाओ ॥
सात समुद्र कहां काया में, इनका भेद बताओ ।
गङ्गा, यमुना और सरस्वती, कहां, कौन विधि पावो ॥१॥

अमर गुफा का द्वार कौन दिशि, औधो कूप कहां पावो।
कैसे खुले कपाट शिखर के, ज्योति अखण्ड लखाओ ॥२॥
पांच तत्व पच्चीस प्रकृति के, कारण कार्य बताओ।
दश विधि नाद बजे कहाँ घट में, सिंह गर्जना पाओ ॥३॥
षट चक्रन का स्थान रूप रङ्ग, ठीक भाँति समझावो।
कहा नागनी कैसे जागे, किस दिशि शून्य समाओ ॥४॥
किस विधि सहज समाधि लगत है, अजपा जाप बताओ।
'अमृत नाथ' अखण्ड रूप को, निज घट माहिं पाओ ॥५॥

[४]

साधो मन का मान हटाओ ॥

त्याग विषय सुख, समता धारो, दृढ़ कर आसन लाओ ॥
वश कर पाँच पच्चीस हटा कर, सत्संगति मन लाओ।
गुरु के वचन यतन कर अपना, अमर नगर को धाओ ॥१॥
अल्पाहार विहार सुधारो, नयन नासिका लाओ।
हो लवलीन प्रेम रस चाखो, आतम ज्ञान जगाओ ॥२॥
घाट त्रिवेणी अमर * निसैनी, ता में गोता लाओ।
सुषुमन सेज बिछाय शिखर में, सुरति सहेली पाओ ॥३॥
जग से भाग जाग घर भीतर, अजपा को अपनाओ।
'अमृत नाथ' अमर गढ़ पाओ, एक छत भूप कहाओ ॥४॥

---

* सीढ़ी।

[५]

अवधू ज्ञान विना सुख नाहीं ।

विन-गुरु ज्ञान मिले नहीं कवहूं, कहते हरिजन गाई ।
दीपक विन ज्यों घर अँधियारा, जिमि दर्पण मल पाही ।
ऐसे ज्ञान विना घट मैला, रूप दरशता नाहीं ॥१॥
चन्द्र विना ज्यों रैन अँधेरी, ज्यों रवि विन दिन नाहीं ।
जग अंधियारा मिटता नाहीं, ना दीखे परछाहीं ॥२॥
सूक्ष्म शरीर ज्ञान विन कबहूँ, दरशे ना घट माहीं ।
नाभि शिखर विच अटल हिंडोला, झूल सके कोई नाहीं ॥३॥
राग, द्वेष छूटे नहीं कबहूं, भव सागर भर माहीं ।
'अमृत' ज्ञान मिले जब गुरु से तब घट समता आहीं ॥४॥

[६]

भजन विन जाती आयु तिहारी,

श्वास अमूल्य पदार्थ व्यर्थ ही खोता मूढ अनारी ।
काम, क्रोध, मद लोभ प्रबल अति राग द्वेष है भारी ॥
ईर्षा, कपट, दम्भ, लौलुपता, इनको छोड़ गँवारी ॥१॥
मात, पिता भ्राता सुत वनिता, आदि कुटुम्ब परिवारी ।
स्वारथ हेतु करे हित तुम से, आगे देख दुखारी ॥२॥
तातें चेत हेत कर हरि से, गुरु शिक्षा शिर धारी ।
आवा गमन छूट जाय तेरा, कट जाय बन्धन भारी ॥३॥

हो चैतन्य भजन कर जिससे ले निज रूप निहारी।
'अमृत नाथ' अविद्या नाशे, दूर होय भ्रम भारी ॥४॥

[७]

सन्तों गुरु के वचन सम्हारो,
जिससे कर्म क्षीण हो जावे, आवा गमन निवारो।
काया नगर में पञ्च प्रेत हैं. भिन्न २ रङ्ग धारो ॥
एक एक अति प्रचल शक्ति से, फैलावे अँधियारो ॥१॥
पांचों नारि बहुत मतवारी, भोगत भोग सुधारो।
इनको रोक परम पद पावो होवे सफल ×जमारो ॥२॥
नाभि मूल से वङ्क नाल दिशि, सोहं की गति धारो।
नयन नासिका स्थिर कर राखो, भव के बन्धन टारो ॥३॥
भ्रमर गुफा में सत गुरु राजें, कोटि भानु उजियारो।
'अमृत नाथ' अमर पुर पावो, त्रैगुण फाँस निवारो ॥४॥

[८]

साधो वोही परम पद पावे,
गुरु चरणन में भेंट करे शिर दुविधा दूर हटावे ॥
शिक्षा श्रवण करे मन देकर, इन्द्रिन पर वश पावे।
भली प्रकार दमन कर मनका, समता चित में लावे ॥१॥
मैं, तू द्वन्द हटाय हृदय से, भ्रम का कोट ढहावे।
स्वप्न समान जगत को जाने, ब्रह्म अग्नि चेतावे ॥२॥

× जन्म

हो चैतन्य सत्य व्रत धारे, निर्मल रूप बनावे।
अपना भेद आप तब जाने, नित्यानन्द मनावे ॥३॥
पांच तीन को उत्पति जाने, केवल रूप बनावे।
नाद बिन्दु का जीव ब्रह्म, तत्व समझ में आवे ॥४॥
भिन्न रूप को निज कर माने, दृष्टा दृश्य नशावे।
'अमृत नाथ' अखण्ड अवस्था, आप में आप समावे ॥५॥

[९]

अवधू तन का गर्व हटाना।

छिन शत जाके बार न लागे, इसका मोह मिटाना ॥
मुख में मैल, नयन में मल है, कर्ण भरा मल जाना।
भरा नासिका भीतर मल है, फिर भी अभिमाना ॥१॥
उदर भरा मल, नसनस मल है, तनिया मल का ताना।
निकसत मल, हो जाय शिथिल तन, क्या बनता मस्ताना ॥२॥
रचना मल से, चलता मल से, याका कहा गुमाना।
अस्थि, चर्म, मेदा अरु लोहू, नख शिख भरा खजाना ॥३॥
मल का कोट बना चहुं दिशि है, तामें राजत प्राणा।
'अमृत' अचरज कारीगर का, इसमें प्रगटे ज्ञाना ॥४॥

[१०]

सन्तो एक छत भूप कहाया।

करत किया अरु भूमि बिछौना, गगन वितान तनाया।
पङ्खा पवन चलत है निश दिन, योगी आसन लाया ॥१॥

चन्द्र, सूर्य दीपक दो जलते, बुद्धि वधु अपनाया।
मनसे सखा, सुरति सी दासी, पुत्र विचार बनाया ॥२॥
सम,दम सेना शिखर लोक गढ़, ज्ञान कोट खिचवाया।
सत्य भया सेनपति शूरा, जग परिवार सुहाया ॥३॥
शान्ति धार उन्मनि धुनि लाया, तब सुरपति ललचाया।
मगन होय अमृत पद पाया, घट घट अलख लखाया ॥४॥

[११]

सन्तो वह सच्चे वैरागी।

जिनका वन अरु नगर समाना हृदय गुफा मा लागी।
सुन्दर शैय्य स्वच्छ शिला की, जाने सो बड़ भागी ॥१॥
पत्र, पुष्प, फल भोजन या कुछ जो मिलता बिन् मांगे।
कर का खप्पर दश दिशि अम्बर, वृत्ति गगन में लागी ॥२॥
अपना आप विचार करत है अनुभव अग्नि जागी।
पुण्य पाप सुख दुख, सम जाने दुर्मति दुविधा भागी ॥३॥
मिले हर्ष खोये नहीं चिन्ता, ऐसा हो सो त्यागी।
नाश रहित पद विरले पावे, 'अमृत' के अनुरागी ॥४॥

[१२]

सन्तो घट में खोज लगाओ,

भटके से खटका नहीं मिटता क्यों काया कलपाओ।
नगर बसो चाहे वन में जाओ, चाहे गुफा समाओ।
जाय हिमालय वास करो चाहे ऐसे शान्ति न पाओ ॥१॥

गंगा यमुना स्नान करो चाहे, गंगा सागर जाओ।
चार धाम में भटकत डोलो, निर्भय पद नहीं पाओ॥२॥
भ्रमो चाहे अड़ूपट तीरथ में, काशी करोत लगाओ।
जाय मदीने हाजी बनो चाहे, भटक २ घर आओ॥३॥
गुरु के वचनों पर श्रद्धा कर, मिथ्या भ्रम विनशाओ।
सहज समाधि मिटे भव व्याधी, तब 'अमृत' पद पाओ॥४॥

[१३]

साधो सन्त वही है पूरा,
हिंसा करे न पर धन लेवे, कर्म करे नहीं क्रूरा।
पर निन्दा में मन नहीं देवे, समता से भरपूरा॥१॥
नारी नेह तनिक नहीं राखे, ब्रह्म चर्य रहे +रूरा।
धन की तृष्णा मन नहीं व्यापे सो है साधु शूरा॥२॥
राग, द्वेष का भाव न राखे रहे प्रेम चक चूरा।
गुरु का भक्त जगत शुभ चिन्तक, सत् शिक्षा के ‡ धूरा॥३॥
सत् भाषण अरु दृढ़ कर आसन, विश्वासी हो पूरा।
'अमृत नाथ' साथ सोहुं का, सो पावे निज नूरा॥४॥

[१४]

साधो ऐसा वेष बनाओ।
जाको निरख २ मन अपने आपहि हर्ष मनाओ।
ले सन्तोष कमण्डलु कर में, घाट त्रिवेणी न्हाओ।
ब्रह्म चर्य का धार लिंगोटा, भस्म साव की पाओ॥१॥

+ सुन्दर॥ ‡ आधार॥

दया तिलक सत रूप सुमरणी, प्रेम पलक विच लाओ ।
जप की जटा ध्यान की सेली घट में अलख जगाओ ॥२॥
ब्रह्म अटारी शून्य किंवारी श्रुति की सेज बिछाओ ।
सुमति सहेली सेवा माहीं, सुषुमन तकिया लाओ ॥३॥
नाभि शिखर विच डाल हिंडोला आपहि आप झुलाओ ।
'अमृत नाथ' अखण्ड रूप में, सहज समाधि लगाओ ॥४॥

[१५]

सन्तो सतगुरु रङ्ग चढ़ाया.

जो नहीं उतरे तीन काल में, दिन दिन होत सवाया ।
श्याम. श्वेत, पीला नहीं नीला, अद्भुत वर्ण बनाया ।
नेत्र नहीं पहिचान सकत है, गुरु गम भेद लखाया ॥१॥
हृदय 'वस्त्र पर रङ्ग भक्ति का, लागत परम सुहाया ।
ज्ञान विज्ञान लहरिया कीन्हा, ओढ़ परम सुख पाया ॥२॥
छींपी छाप सके नहीं वैसा, ना रंगरेज रंगाया ।
कहन, सुनन में आवे नाहीं, सतगुरु सैन बताया ॥३॥
'चम्पानाथ' प्रेम के रंग में, रंग कन्था पहिनाया ।
'अमृत' जीर्ण होय नहीं कबहू, सदा रहे सरसाया ॥४॥

(५) राग काफी

सतगुरु ज्ञान बताया, हृदय मे मार्ग हटाया ।
काम, क्रोध मद मोह मारकर तृष्णा नीर जलाया ॥
पाँचों सखियाँ चेरी बन गई, तम अज्ञान हटाया ।
ज्ञान का दीप जलाया ॥१॥

भोगी, रागी अरु वैरागी, कोई थाह न लाया ।
ज्ञानी, ध्यानी श्रम कर हारे, विरले वह लखपाया ॥
सोही गुरु सैन लखाया ॥२॥

पण्डित वेद थके उस पथ में, काजी कुरान न पाया ।
जप, तप, व्रत, तीरथ कर हारे, तत्व नहीं दरशाया ॥
भेद गुरु देव बताया ॥३॥

सतगुरु दया निधान मिले तब, भव से अभय कराया ।
'अमृत' नित्य सत्य पद पाया, नित्यानन्द मनाया ॥
राम का रूप लखाया ॥४॥

[२]

सतगुरु होरी खिलाई, पीर भव सिन्धु मिटाई ।
ज्ञान गुलाल की भर कर झोली मम मुख पर लिपटाई ।
दूर भया माया तम सारा, अवगुण सकल हटाई ।
कुटिलता दूर भगाई ॥१॥

अचल ध्यान की घोल कुमकुमा सत् अरु शील मिलाई।
सम, दम, नियमाचार युक्ति सब, दया धर्म मन भाई।
ज्ञान का भानु उगाई ॥२॥

योग, दान, तप, यज्ञ आदि का, लोनासार कढ़ाई।
वैरागादि भये सब दृढ़ अति, शिक्षा सत्य सुनाई।
जाप अजपा अपनाई ॥३॥

नवधा भक्ति चढ़ाय यंत्र पर, ज्ञान की अग्नि जलाई।
तामें सार प्रेम को पाया, कहते हरिजन गाई।
बात साधुन को भाई ॥४॥

अचल अनूठे मिले खिलैया, 'चम्पानाथ' गुसाँई।
'अमृत' क्लेश हरे सब भवके, फाग जीत घर आई॥
सुनो साधो मन लाई ॥५॥

[३]

ऐसा फाग रचाया, अनूठा रङ्ग दिखाया।

उत से दश इन्द्रिय बल धारी, अपना मुण्ड बनाया।
काम क्रोध की कुम कुम होरी, तृष्णा नीर भराया॥
राग का रङ्ग घुलाया ॥१॥

उत से सम, दम नियमा चारा, सत्सङ्गति रङ्ग पाया।
दृढ़ आसन कर लई पिचकारी, तान के मान भगाया॥
शील सन्तोष जगाया ॥२॥

दम्भ, मोह ने निश्चय कर तब व्यसन अबीर घुलाया।
तामस आदि लई पिचकारी, आशा हाथ चलाया ॥
भोग का ताल भराया ॥३॥

शब्द का नीर भराय सत्यने, समता का रङ्ग पाया।
ज्ञान, ध्यान की भर पिचकारी, सब को मार भगाया ॥
दुःख को दूर हटाया ॥४॥

सत गुरु चम्पानाथ मिले तब, प्रेम रङ्ग बरपाया।
अमृत घट में फाग खेल कर अभय होय सुख पाया ॥
अचल पद में सरसाया ॥५॥

[४]

इस विधि फाग रचाया, योग के पन्थ सिधाया।
मूल शोध कर खींच शंखिनी, उलट अपान चलाया।
तीनों बन्ध लगे जब घट में, पवन थकी सुख पाया ॥
शब्द आकाश जगाया ॥१॥

द्वादश पलट सुरति दो दल घर, अनहद में मन लाया।
नवों द्वार अति दृढ़ कर रोके, शून्य शिखर घर पाया ॥
भेद लख खेद मिटाया ॥२॥

दल सहस्र का कमल अनूठा, मेघ अभी झर लाया।
तेज पुञ्ज का रूप बना है, कोटि भानु छांव छाया।
कल्प तरू कर में आया ॥३॥

उन्मनि चित्त लगा कर रखिया, मन निज रूप मिलाया।
काल ज्वाल की गम जहां नाहीं, गुणा तीत घर पाया॥
जीव से ब्रह्म कहाया॥४॥

नहीं द्वन्द निर्द्वन्द रहा कुछ, सतगुरु भेद बताया।
'अमृत' घट में खोज करी तब, अपना रूप लखाया॥
परस पारस सुख पाया॥५॥

[५]

सतगुरु पार उतारो, मेरे कर्मन को जारो।

यद्यपि कृतघ्न नाथ मैं सब विधि तद्यपि दास तुम्हारो।
अवगुण तनिक गिनों मत स्वामी, गुण की ओर निहारो।
दास पर दया विचारो॥१॥

त्रिविधि कर्म घन रांग लगे सङ्ग, इनसे मोहिं उबारो।
निराधार नहीं कोई रक्षक, केवल तव आधारो॥
दया कर कष्ट निवारो॥२॥

इन्द्रिय गण दौड़त विषयन को, लें सङ्ग मन मतवारो।
भाँति २ के भोग भोगते, टरत नहीं प्रभु टारो।
नाथ इनको बल भारो॥३॥

तव आश्रय, पुनि देख मोहि लोग हँसत हैं भारो।
यह उपहास असह्य गुसांई, इसको शीघ्र निवारो॥
विनय कर २ मैं हारो॥४॥

अति आरत बहु दीन होय कर, शरण लई प्रभु तारो।
अमृत देर करो मत अब तो, 'शंकर' पार उतारो।
नाथ मैं बालक थारो ॥४॥

---

(६) राग हेली

हेली मेरी गुरु चरणन पर वारी।
होय प्रसन्न सुनाओ निश दिन महिमा अमित अवारी।
हेली—फूल कमल की राह बताई, झटपट सुरति सँवारी।
नाभी मण्डल प्राण मिलाया, वङ्क नाल पथ धारी ॥१॥
हेली—शिखर लोक में अनहद बाजा, सिंह करत हुंकारी।
कोटि भानु सम रहे उजाला, है नहीं साँझ संवारी ॥२॥
हेली—काम धेनु ठाढ़ी रहे निश दिन, पवन करत रखवारी।
अटल सिंहासन एक छत्र शासन, रूप उनमनी धारी ॥३॥
हेली—अपना जाप आपही करता, तुरिया तत्व विहारी।
'अमृत नाथ' अभेद भेद है, अद्भुत ब्रह्म अटारी ॥४॥

[२]

हेली मेरी अचरज है एक भारी।
एक कहूं तो दो होय दरशे, दो बिच एक विहारी ॥
हेली—जल के माहिं लहर उठत है, है जल से नही न्यारी।
नाम रूप से भेद लखावे कहते सन्त विचारी ॥१॥

हेली—नाना भाँति बने आभूषण, कञ्चन है एक सारो।
जीवन ब्रह्म में ऐसा अन्तर निरखो नयन उघारी ॥२॥
हेली—भिन्न २ घट भासत है पर, सब विच मिट्टी धारो।
इस विधि आतम अरु परमातम, निज घट माहिं विचारी ॥३॥
हेली—अद्भुत २ रूप बनाये, तिनका आप विहारी।
'अमृत' आप आप में रमता, घट विच लेय निहारी ॥४॥

[२]

हेली मेरी सतगुरु राह बताई।
आतम में परमात्म दिखाया, दुर्मति दूर हटाई।
हेली—काम, क्रोध, मद, मोह हटाया, सुमति हृदय विच आई।
राम रूप चारों दिशि दरशा, आतम तत्व दिखाई ॥१॥
हेली—राग द्वेष का भाव न व्यापे, समता चित्त में आई।
वृत्ति भई अनुरक्त तत्व में, ज्ञान सुधा झर लाई ॥२॥
हेली—देश काल का भेद रहा नहीं, ना शुभ, अशुभ लखाई।
आश्रम, वर्ण, जाति कुल का भय, हट गए मान बड़ाई ॥३॥
हेली—चार धाम अरु अड़सठ तीरथ, निज घट भीतर पाई।
परमानन्द प्रकट भया तन में, दिया द्वन्द हटाई ॥४॥
हेली—आतम एक सकल घट व्यापक, पाया अति सुखदाई।
उत्पति, पालन, नाश रहित पद, गुरु निज भाव बताई ॥५॥
हेली—नाभि मूल है मेरु दण्ड पथ, शून्य शिखर घर पाई।
तीन काल में रहत एक रस, ना कुछ आवन जाई ॥६॥

हेली—वाट त्रिवेणी, मुक्ति निसैनी, श्वासा थम्भ रुपाई।
"अमृत नाथ' रमे तुरिया में, पद निर्वाण सुहाई ॥७॥

[४]

हेली पद निर्वाण विचारो,

छेद छहों दल जाय शिखर में, अपना रूप निहारो ॥
हेली—तीनों गुण की तीन नाड़ियाँ, नाभी माहिं सम्हारो।
इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना, गुणातीत घर न्यारो ॥१॥
हेली—चारों अन्तःकरण जानियो, मन, बुद्धि चित अहंकारो।
जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति, तुरिया, तज उन्मनि धुनि धारो ॥२॥
हेली—निर्गुण, सगुण विलास वचन का, स्थूल रु सूक्ष्म विकारो।
पिण्ड और ब्रह्माण्ड भेद नहीं, केवल ब्रह्म पसारो ॥३॥
हेली—गुप्त, प्रकट, लघु, दीर्घ, नहीं कुछ, नहीं वर्ण अ
तम न प्रकाश ऊँच नहीं नीचा, नहीं कुछ थल आधारो ॥४॥
सब में एक, एक में सब है, पञ्च तत्व से न्यारो।
'अमृतनाथ' अखण्ड अगम है, 'शंकर' समता धारो ॥५॥

---

(७) राग पार

क्यों भटका फिरे अनारी, क्या सङ्ग चलेगा तेरे॥
तू धन के लालच में फिरता, पाप कर्म करता नहीं डरता।
कभी ध्यान प्रभु का नहीं धरता, मोह जाल के घेरे ॥१॥

विद्या बल का है अभिमाना, अहंकार का ताना ताना ।
तिय तृष्णा के मोह फँसाना, करता मेरे मेरे ॥२॥

ऊँचे भवन बना गरबाया, तिन में बैठ बहुत हर्षाया ।
सत्पुरुषों का संग न भाया, तोहि अज्ञान अन्धेरे ॥३॥

दया दीन पर करता नहीं, दम्भ भरा है चित के माहीं ।
'अमृत' बेला व्यर्थ गमाही, चेतन होय सवेरे ॥४॥

[२]

घट में रमते भगवान हैं, क्या बहार भटका डोले ।
जा चाहे मक्का अरु काशी, भस्म रमा चाहे होय उदासी ।
ऐसे नहीं कटे यम फांसी, यदि घट नाहिं टटोले ॥१॥

यज्ञ करो चाहे व्रत पालो, लाख बार गंगा में न्हालो ।
औंधे शिर हो झूला डालो, रस में मिट्टी में घोले ॥२॥

ज्ञान सुनो चाहे ध्यान लगाओ, देवी पूजो देव मनाओ ।
अन्तर दृष्टि नहीं जो लाओ, पिव क्या परदा खोले ॥३॥

नम्र होय कर शब्द विचारो, सोंहं सोहं और निहारो ।
'अमृत' नयन नासिका धारो, भेद अगम को खोले ॥४॥

[३]

विश्वास नहीं एक श्वास का, क्या मेरा और तुम्हारा ।
यह किया, अब उसे करूँगा, इधर से लाया उधर धरूँगा ।
इससे लूँगा, उसको दूँगा, क्षण भंगुर है सारा ॥१॥

अहंकार वश भ्रम के माहीं, करता मेरा २ सदा ही ।
काल सङ्ग जैसे परछाई, क्षण में करे सँहारा ॥२॥
तू ने समझा मैं करता हूं, मैं देता अरु मैं धरता हूँ ।
मैं दीनों के दुख हरता हूं, कहता वारम्वारा ॥३॥
ऐसे रहा सदा भरमाया, कभी ध्यान प्रभु का नहीं लाया ।
सत संगति में मन न लगाया, जीवन यों खो डारा ॥४॥
जन्म मरण का भय है भारी सहाय करेगा कौन तिहारी ।
'अमृत' केवल गुरु रखवारी 'शंकर' के आधारा ॥५॥

---

[८] राग मलार

सन्तो ज्ञान घटा घिर आई ।

गहरी होय गरजने लागी, प्रेम नीर वरषाई ।
विन्दु विन्दु अमृत सम टपकी, भक्ति बेल फैलाई ॥१॥
निर्मल-बुद्धि रूप है सरिता, तट सन्तोष सुहाई ।
रैन दिवस वह प्रवल वेग से, क्षमा नीर सरसाई ॥
जहँ तहँ सरवर भरे मही पर, जिमि सन्तन समुदाई ।
दादुर बोलत मुदित होय जनु, हरिजन हरि गुण गाई ॥३॥
जलचर सुख से विचरन लागे, सत् संकल्प सुहाई ।
चहुं दिशि फैली है हरियाली, ज्यों शुभ मति सुखदाई ॥
फूले कर्मल कमलनी जल में, जनु षट कमल खिलाई ।
'अमृत' कर गुञ्जार मग्न होय, भ्रमर शिखर में लिपटाई ॥५॥

[२]

सत गुरु प्रेम लहर लहराई।

दश दिशि कमल मध्य से उठती, जाय शिखर टकराई।
स्पर्श होय कर ब्रह्म तीर से, फिरी मुदित मन माहीं ॥१॥
चञ्चल गति से भ्रमण करत है, बिच कमलन समुदाई।
बंधा तार टूटत नहीं कबहूं चार अवस्था माहीं ॥२॥
जहँ तहँ भँवर पड़त अति गहरे, दृष्टि नहीं ठहराई।
जानत पर न बखान होत है, नित्यानन्द सुहाई ॥३॥
भरा अथाह ब्रह्म सगर है, आदि अन्त कुछ नाहीं।
'अमृत' चेतन रहे रैन दिन, आप में आप समाहीं ॥४॥

[३]

प्राणी राम नाम बिन रीता, तेरा समय जाय है बीता।
जग प्रपञ्च में भरमत डोले, रे! गठड़ी से रीता।
श्वास अमूल्य बीत जावेंगे तब होगा भय भीता ॥१॥
कनक कामनी से हित तज कर, जग से होय अहीता।
ले सत गुरु की शरण बावरे, पावे ज्ञान पुनीता ॥२॥
'अमृत' देते सीख सुधा मय, शिष्य प्रेम से पीता।
'शंकर' चरण शरण सत गुरु की, सुनी ज्ञान मय गीता ॥३॥

[४]

सजनी तूने श्याम भुलाये, याते श्याम, दृष्टि नहीं आये।
अब है श्याम विरह में व्याकुल, श्याम गात हो आये।
श्याम २ अब सदा बिलखती, श्याम नयन झर लाये ॥१॥

श्याम विना है शाम हलाहल, श्याम ही रंग खिलाये।
श्याम मयी रजनी में चातक, श्याम श्याम धुनि गाये ॥२॥
श्याम श्याम, हा श्याम! पुकारूँ, श्याम शिखर गढ़ पाये।
'शङ्कर' श्याम विरह को मेटा, श्याम दया उर लाये ॥३॥

[५]

सजनी प्रीति किये दुख पाये, अब तक भी प्रभु नहीं आये।
सावन मन भावन नहीं आये, विरह अग्नि तन ताये।
चातक, दादुर, मोर चकोरा, पिव २ शब्द सुनाये ॥१॥
पूरब प्रीति विसारी पिवने, तनिक दया नहीं लाये।
हमको विलखत छोड़ श्याम ने, शिखर लोक घर छाये ॥२॥
चैन मिला पल भर नहीं हेली, निश दिन काग उड़ाये।
तब 'अमृत' ने दया धार कर, 'शंकर' हृदय लगाये ॥३॥

[६]

सतगुरु प्रेम घटा घिर आई, जाने सुधा बूँद बरषाई।
अमृत मय बूँदों के बल से, भक्ति बेल फैलाई।
चारों ओर भई अति गहरी, सन्त रहे सुख पाई ॥१॥
शम, दम नियम चली वह सरिता, निर्मल जलथल माई।
काम, क्रोध, मद, मोह बहाकर, सुन्दर भूमि बनाई ॥२॥
तरु पल्लव भये हरित चहूं दिश, योग युक्ति सरसाई।
सुख से सहज समाधि लगी है जो न कभी उतराई ॥३॥

सतगुरु 'अमृत नाथ' दया कर, ऐसी राह बताई।
'शङ्कर' सुख पद भक्ति विमल को, गुरु सेवा ते पाई ॥४॥

[७]

अब तक क्यों न लई सुधि मेरी।

विप्र सुदामा दीन हीन की, तुरतहि विपति निवेरी।
मीराँबाई, सजन कसाई, गणिका की गति केरी ॥१॥
द्रुपद सुता का चीर बढ़ाया, जब दुखिया हो टेरी।
नाम देव को छान उठाकर, कीनी दया घनेरी ॥२॥
दया करो गुरु देव हमारे, अब तो होय अंबेरी।
'अमृत' भव के कष्ट मिटाओ, 'शङ्कर' करो न देरी ॥३॥

---

[६] राग कल्याण

सतगुरु विनवों बारम्बार।

काम, क्रोध, मद, लोभ ग्राह अति, नौका है मझधार।
नहीं डूबने में कुछ देरी, त्राहि त्राहि करतार ॥१॥
भक्ति, ज्ञान, वैराग न जानूँ, केवल तव आधार।
भव सागर की कठिन धार से, लेवो मुझे उबार ॥२॥
तुम बिन कौन सुने हे स्वामी, मेरी आर्त पुकार।
सतगुरु 'अमृत नाथ' शीघ्र ही, शङ्कर' चूक सुधार ॥३॥

[२]

कैसे कटि है जग का जाल।

दिन २ अति दृढ़ हुआ जात है, विषयन के प्रतिपाल।
ममता, मद में अन्ध होय कर, ऊँचा रखता भाल।
नहीं साधुता तनिक हृदय में, व्यर्थ बजावत गाल ॥१॥
काम, दाम के हेतु अहर्निश, रच नाना विधि जाल।
अपने दोष छिपावन कारण धार दम्भ की ढाल ॥२॥
हो अधीर अति पीर सहे जब, आन दबावे काल।
याते 'शङ्कर' निर्मल कर मन, विषय वृत्ति को टाल ॥३॥

[३]

रे मन, अब तो तज कुटिलाई।
बीती रैन भोर होती है, अपना पथ गह भाई॥
स्वाद बहुत इन्द्रिन से चाखे, माने अति सुखदाई।
नाश मान जग के भोगों में, भूला, प्रभु प्रभुताई ॥१॥
जिसने साधन शक्ति दिये शठ, ताहि दिया विसराई।
रे पिशाच, मैं मैं करने में, तेरी मति बौराई ॥२॥
बड़े २ मतिमान जनों की, तैनें वृत्ति डिगाई।
विरले सज्जन धार वीरता, गुरु मुखि गति को पाई ॥३॥
तेरी चञ्चल गति अति भारी, इसका अन्त न आई।
'अमृत' चरण शरण में लागे, तो 'शंकर' सुख दाई ॥४

(१८) राग सोरठ बिहाग।

साधो सन्त वही है शूरा।

अपनी लग्न अनुग्रह गुरु की, प्राप्त करें पद पूरा।
क्षमा ढाल धारे रहे निश दिन, निकट न आवे क्रूरा।
ध्यान खड्ग से पूर्व कर्म का, करदे चकना चूरा ॥१॥
श्रुति तरकस पर शब्द वाण धर मेरु दण्ड का धूरा।
त्रिकुटि लक्ष्य बनावे अपना, तब पावे निज नूरा ॥२॥
आगे बढे, हटे नहीं पीछे, कर विषयन को दूरा।
सहे आघात होय कर निर्भय, शूर वीर सोही पूरा ॥३॥
एक छत्र हो राज्य तभी तब मान 'चढाई दूरा।
'अमृत' सतगुरु पूर्ण मिले से, प्राप्त होय पद पूरा ॥४॥

[२]

सन्तो घट का भेद निहारो।
नाभि चक्र को शोध युक्ति से, सुरति श्वास में धारो।
बङ्क नाल की राह पकड़ कर, शून्य शिखर गढ़ मारो ॥१॥
इड़ा पिंगला और सुषुम्ना, त्रिकुटी माहिं सम्हारो।
भँवर गुफा अद्भुत उजियाला, काँपि मन मत वारो ॥२॥
उलटा कूप अगाध नीर है, ता में गोता मारो।
सूर्य चन्द्र अरु तारा मण्डल, है नहीं साँझ सवारो ॥३॥
पाप पुण्य सुख दुख कुछ नाहीं, है नहीं नियम अचारो।
'अमृत नाथ' रूप नहीं रेखा, पञ्च कोष ते न्यारो ॥४॥

[३]

अवधू देश दिवाना रे।

जाग्रत, स्वप्न, सुपुप्ति तज, तुरिया गलतानारे ॥
रणङ्कार के ध्यान होय, सतगुरु का पानारे।
सुरति सहेली संग होय तब, हो पहिचाना रे ॥१॥
इड़ा पिङ्गला त्याग ध्यान, सुषुमन में लाना रे।
पाँच, पचीसों थके, अमर गढ़ होवे जाना रे ॥४॥
कथा पुरान, कुरान, नहीं इनमें अटकाना रे।
सतगुरु शब्दी बाण लगे, मन मार भगाना रे ॥३॥
'अमृत नाथ' अखण्ड ध्यान धर नहीं डरपाना रे।
'शंकर' मिले अमर पद, छुट जाय आना जाना रे ॥४॥

[४]

हरि को जिन खोजा तिन पाया।

जो प्रमाद वश रमा विषय में, उसने गोता खाया।
क्या हो सागर तट जा बैठे, जब गोता नहीं लाया।
समय गया मोती नहीं पाया, हाथ मले पछताया ॥१॥
पढ़-२ विद्या पण्डित बन गये, अरु उपदेश सुनाया।
निज भ्रम नहीं मिटाया जिसने, तो क्या लाभ उठाया ॥२॥
बैठ कन्दरा धूणी लगाई, कष्ट दिया ताना ताया।
फिर यदि सच का बेरा न खोजा, कैसे सन्त कहाया ॥३॥

समता विन ममता नहीं हटती, निर्मल हो नहीं काया ।
'अमृत' पद 'शङ्कर' तब पावें. मेटे मन से माया ॥४॥

[५]

सन्तो भक्ति भाव उपजाओ ।

सुधरे जन्म भक्ति करने से, भव की तप्त बुझाओ ।
भक्त बने भव भय टल जावे, निर्मल गति को पावो ।
भ्रम का भार हटे सुख होवे, अनघड़ रूप बनाओ ॥१॥
चारों ओर पिया जब दरशे, ब्रह्म अनल चेताओ ।
हो चैतन्य प्रेम रस चाखो, स्वाद सुधा का पाओ ॥२॥
वाद, विवाद मिटे सब मन से मैं तू दूर हटाओ ।
रैन दिवस पिव चरणन लिपटो, दुविधा दूर भगाओ ॥३॥
तन, मन, कर्म निछावर करदो, अपने राम रिझाओ ।
हटे द्वैत का भाव हृदय स, ब्रह्म सकल में पावो ॥४॥
सतगुरु 'अमृत नाथ' चरण में अपना शीष चढाओ ।
'शंकर' तबहि राम रीझेंगे. दुर्मति दूर हटाओ ॥५॥

[६]

मन तू त्याग जगत का लटका ।

गुरु के वचन मान ले प्यारे हट जाय यम का खटका ।
ममता त्याग धार दृढ़ समता, परदा हटादे घट का ।
विरही वेष बनाय तुरत ही, रूप त्याग दे नटका ॥१॥

तज अभिमान भजन कर हरिका, मिट जाय भव का खटका।
जब तक श्वास रहे काया में, देख राम का लटका ॥२॥
तन मद त्याग सुधार वचन को, इन्द्रिन का तज चटका।
मान बड़ाई छोड़ करो नित, वास त्रिवेणी तटका ॥३॥
निश्चय होय वासना छूटे, भेद मिटे घट पटका।
'अमृत' अपना रूप लखे तब, अमृत जैसा गटका ॥४॥

[७]

अवधू सत सुख पावेंगे।
जो घट भीतर निशदिन अपनी खोज लगावेंगे॥
मणि ∴ पूरक से चेतन होकर, बङ्क सिधावेंगे॥
शून्य लोक में अनहद ध्वनि वह नर सुन [illegible]वेंगे ॥१॥
अवघट घाट बाट अति × विखमी, सन्त [illegible]वेंगे।
= सैन शब्द का साथ हुए, भ्रम दूर हटावेंगे ॥२॥
ऊपर जड़ नीचे शाखा का, तरु एक पावेंगे।
तहां अमर फल खाय, अमर वह नर हो जावेंगे ॥३॥
कूप अधो-मुख माहिं जब, गोता कोई लावेंगे।
'अमृत' आभा आपकी, 'शंकर' चमकावेंगे ॥४॥

[८]

अवधू ऐसा ध्यान लगाओ।
तन्मय रहो थको मत कबहूं, आवागमन मिटाओ।

∴ नाभि कमल × दुर्गम = संकेत

शीतल वाणी मुख से बोलो, झूठ कपट छिटकाओ।
राव, रङ्क को सम कर जानो, सत् वाणिज्य चलाओ ॥१॥
काम क्रोध, मद लोभ मारकर, समता चित में लाओ।
शीत गरम को सम कर जानो, तन की सुधि बिसराओ ॥२॥
घाट त्रिवेणी बाट मिले, तब तुरिया तत्व दिखाओ।
अमर नगर में सतगुरु राजे, उनके दर्शन पाओ ॥३॥
'अमृत नाथ' गगन जाय झूमे ज्योति में ज्योति समाओ।
'शंकर' आवागमन दूर हो, सोहं सोहं गाओ ॥४॥

[६]

अवधू समझ देख मन माहिं।

तृष्णा सम नहिं व्याधि जगत में, धर्म दया सम नाहिं।
नारि समान न बन्धन कोई, तीन लोक के माहिं ॥१॥
तप नहीं क्षमा बराबर कोई, सत साथी नाहिं।
भय नहीं द्वेष समान जगत में, तोहि कहूं समझाहिं ॥२॥
बाजीगर सग द्रव्य जान ले, बन्दर जो नचवाहिं।
क्रोध भयानक शत्रु करत है नाश समय को पाहिं ॥३॥
सतगुरु से दाता नहीं कोई, संगति लाभ सुझाहिं।
चेतन हो 'अमृत' को पाओ, 'शंकर' संशय नाहिं ॥४॥

[१०]

अवधू नश्वर है यह काया।

हाड मांस का बना पींजरा, ता पर रङ्ग चढ़ाया।
विनशत बार नेक नहीं लागे, तू जिस पर गरवाया ॥१॥

लगा उबटना, मल मल न्हाया, सुन्दर वस्त्र सजाया।
दर्पण देख मोद में भरिया, बहुत घना इतराया ॥२॥
इस काया के दश दरवाजे, सुन्दर सुघड़ सजाया।
भीतर मल भण्डार भरा है, देखत मन मिचलाया ॥३॥
क्षण में रूप बिगड़ जाय सारा, व्यर्थ फिरे भरमाया।
"अमृत' रूप लखे बिन भोला, 'शङ्कर' पद नहीं पाया ॥४॥

[११]

जो नर खोज करन में लागे।

राग द्वेष को हटा चित्त से, गुरु शब्दन अनुरागे।
रैन दिवस तन्मय रहे ध्वनि में, वही सन्त बड़भागे ॥१॥
इड़ा, पिंगला त्याग, सुषुम्ना पन्थ चलन को जागे।
कुण्डलनी मुख पश्चिम करके, मेरु दण्ड धुर लागे ॥२॥
अमर लोक में जाय समाये, अमर सरोवर पागे।
सदा बसन्त नहीं सुख दुख है, उन मनि ध्वनि में अनुरागे ।३।
गुणातीत तुरियावस्था से सप्तम भूमि समागे।
"अमृत नाथ' द्वन्द से छूटे, भाग्य उन्हीं के जागे ॥४॥

[१२]

क्या सुख सोता है रे प्राणी।

सोवत २ समय खोदिया, नेक न चिन्ता आनी।
बीतें श्वासि काल जब आवे, तब न चले मन मांनी ॥१॥

अपने शुद्ध रूप को भूला, होय रहा अज्ञानी ।
नर प्रमाद वश रमे विषय में, हृदय अविद्या आनी ॥२॥
समझत है मैं बड़ा होत हूं, घटत आयु दिन जानी ।
बीते रैन †विहान होत है, चिड़ियाँ खेत चुगानी ॥३॥
ताते चेत हेत कर 'अमृत' गुरु चरणन लिपटानी ।
निर्भय हो 'शङ्कर' पद पावे, जाने अकथ कहानी ॥४॥

[१३]

ऐसा हो सो सद् गति पावे ।
सत भाषण, अरु दृढ़ कर आसन, तृष्णा दूर हटावे ।
गुरु की भक्ति चलन युक्ति कर, प्रेम पन्थ को धावे ॥१॥
मान, बड़ाई निन्दा त्यागे, रागरु द्वेष मिटावे ।
काम क्रोध, मद प्रबल भूत है, इनकी चोट न खावे ॥२॥
ब्रह्मचर्य व्रत दृढ़ कर धारे, नारी नेह न लावे ।
हो निर्मोह रमे निर्जन में, स्वाद कबहुं नहीं चावे ॥३॥
नाभि शिखर बिच डाल हिंडोला, निर्भय झोटा खावे ।
अमर होय 'अमृत' पद पावे, सुरति ठिकाने आवे ॥४॥

[१४]

मन तू क्यों इतरावे रे ।
भजले हरिका नाम वृथा क्यों देर लगावे रे ।

---

† सवेरा

गर्भवास में वचन दिया सो, मत विसरावे रे।
निश्चल होकर ध्यान, वृत्ति को काहे डुलावेरे ॥१॥
सुत, भ्राता, नारी, धन, जन में ममता लावेरे।
निकट न आवें कोय, आन जब काल दबावेरे ॥२॥
जन्म, मरण दुख जठर अग्नि का, ना छुट पावेरे।
जब तक प्रभु के नाम से, निश्चय नहीं लावेरे ॥३॥
गुरु चरणन में ध्यान कोई कर प्रेम लगावेरे।
उसकी नौका गुरु आप ही पार लगावेरे ॥४॥
सत्सङ्गति निज साधन 'अमृत नाथ' बतावेरे।
'शंकर' घट की ओट में, निर्भय पद पावेरे ॥५॥

[१५]

भेद कोई विरला योगी जाने।

कटे, जले, छीजे नहीं भीजे, नहीं तने अरु ताने।
नहीं आवे जावे नहीं कितहूँ, नहीं प्रकट छाने ॥१॥
बाहर, भीतर, नीचे ऊपर एकहि रूप समाने।
भेद अभेद न हर्ष खेद कछु, यों माने सो माने ॥२॥
जान विलक्षण सत असत्य से, गुणातीत गुण साने।
पञ्च तत्व अरु तीन अवस्था, भिन्न रूप पहिचाने ॥३॥
आत्म रूप सत् चिदानन्द है, यों गाने सो गाने।
'अमृत' अनुभव से जानत है, पर नहीं सकत बखाने ॥४॥

[११] राग माढ़

तृष्णा डाकनी रे अवधू, इसका पेट अपार।
दिन दिन बढ़ती जात है, ज्यों पृथ्वी पर भार।
बचते विरले सन्त हैं गुरु शिक्षा शिर धार ॥१॥
एक होय तो सौ चहे, सौ पर चहे हंजार।
इसका अन्त न आवहीं गये अनेकों हार ॥२॥
दीखन में आवे नहीं, लगे नहीं कुछ भार।
जहाँ जाओ तहाँ संग है, यह निर्दय बटमार ॥३॥
बना शस्त्र सन्तोष का, इसको लेना मार।
तबही 'अमृत' पायगा, जीवन का सतसार ॥४॥

[२]

गुरु बिन मिलता नाहीं रे अवधू आत्म तत्व का ज्ञान।
खुले गाँठ नहीं कर्म की, दूर न हो अभिमान।
जन्म मरण ना मिट सके, सुनियो सन्त सुजान ॥१॥
मूल कमल खिलता नहीं, हो न नाभि में वास।
बङ्क नाल पथ ना मिले, दृढ न होय विश्वास ॥२॥
शिखर लोक गम ना पड़े, पश्चिम उगे न भान।
काम धेनु दरशे नहीं मिले न अमृत पान ॥३॥
तीन अवस्था ना मिटे, हो न तुरिया का ज्ञान।
अनहद सुन नहीं पावते, उलटा कूपन जान ॥४॥

श्वास त्रिकुटि में हो नहीं, पड़े न सुषुमन जान।
अमर गुफा पट ना खुले, होय न अजपा ज्ञान ॥५॥
दया होय गुरु देव की, तब हो सत पहिचान।
"अमृत" उनमनि धुनि लगे, पावे पद निर्वाण ॥६॥

---

[१२] बारह मासिया सोरठ विहाग

अवधू काल जाल की त्रास, गुरु विन कौन मिटावेरे।
चैत्र चतुर चैतन्य हो, चलो गुरु के पास।
तन मन धन अर्पण करो, होय चरण के दास ॥
मान मन का मिट जावेरे ॥१॥
लगत मास वैशाख के, निर्मल होय विवेक।
गुरु की शिक्षा हृदय धर, पकड़ सत्य की टेक ॥
भक्ति का रङ्ग जमावेरे ॥२॥
ज्येष्ठ जगत के विषय से, पावे चित उपराम।
जा बैठे एकान्त में रे, तज धन, दारा धाम ॥
नहीं मन को कुछ भावेरे ॥३॥
आश लगे आषाढ़ में आवे चित सन्तोष।
लहर उठे जब प्रेम की, हटे हृदय का दोष ॥
बुद्धि मन से मिल जावेरे ॥४॥
श्रावण मन आवन लगी, करूँ योगिया वेष।
भस्म रमाऊ अङ्ग में, शीष बढाऊँ केश ॥
चैन दिन रैन न आवेरे ॥५॥

प्रेम घटा भादों चढ़ी, बरषत हैं घनघोर।
पिहू पिहू प्रिय शब्द करे, चहुं दिश बोलत मोर ॥
हृदय में हूक न मावेरे ॥६॥

पका भक्ति का खेत है, आया आश्विन मास।
सन्देशा ऐसा मिला, धरले दृढ़ विश्वास ॥
चित्त में मत घबरावे रे ॥७॥

कातिक में गुरु देव की, कृपा हुई भरपूर।
पश्चिम पथ समझा दिया, सुनिया अनहद तूर ॥
शिखर की ओर सिधावेरे ॥८॥

अगहन थम्भ रुपाइया भूमि गगन के बीच।
तापर चढ़ हँसने लगे, अब नहीं व्यापे † मीच ॥
रैन दिन मोद न भावेरे ॥९॥

पौष कोष विज्ञान का, खुला शिखर के माहिं।
परम पिता गुरु देव के, चरणन में बलि जाहिं ॥
सुरति निश्चल घर आवेरे ॥१०॥

ऋतु बसन्त है माघ में, हिल मिल खेल बसन्त।
पाँच पचीसों मिल गई रे, रूप बनाया सन्त ॥
नहीं इत उत भरमावे रे ॥११॥

फाल्गुण सुषुमन सेज में, भ्रमर गुफा के माहिं।
तुरिया तत्व विलास में, मन वाणी थक जाहिं ॥
दृश्य दृष्टा नश जावेरे ॥१२॥

---

† मृत्यु.

आप आपके रूप को, देखत है चहूँ ओर ।
'अमृत' पद निर्द्वन्द है, नहीं ओर नहीं छोर ॥
सत्य 'शंकर' लख पावेरे ॥१३॥

---

(१३) रंगत जोगिया

ठण्डा खाना रे लड़के, जमी का लेटना।
कठिन फकीरी रे अवधू, सहज सध जायगी ॥१॥
ताता भी खाना रे लड़के, सेजों का सोवना।
कठिन फकीरी रे लड़के, सधेगी नाहिं ॥२॥
औषधि नहीं खाना रे लड़के, बूँटी नहीं खोजना।
वैद्य वसे घट में अवधू, नाड़ी दिखावना ॥३॥
थोड़ा भी खाना रे लड़के, अधिक नहीं सोवना।
मौन होय रहना रे अवधू, ज्यादा नहीं बोलना ॥४॥
रहना अकेला रे लड़के, भवन ना वनावना।
काम दाम से रे अवधू, मन न लगावना ॥५॥
क्रोध नहीं करना रे लड़के, आतम एक है।
शान्त होय रहना रे अवधू त्रिंकल नहीं होवना ॥६॥
राग नहीं करना लड़के, द्वेष को त्यागना।
मोह ममता में रे अवधू, दुःख अनेक है ॥७॥
सन्तों की सङ्गति रे लड़के, सेवा गुरु देव की।
'अमृत' मिलेगा रे अवधू, 'शकर' ध्यान से ॥८॥

[२]

दुःखी नहीं होना रे लड़के, दुखी नहीं होवना।
एक रस रहना रे अवधू, समता धारना ॥१॥
काया नगर में लड़के, सकल संसार है।
माहिं विचरना रे अवधू, खेल अपार है ॥२॥
उनमनि धुनि में रे लड़के, सदा तन्लीन हो।
भेद नहीं देना रे अवधू, लवलीन हो ॥३॥
शून्य शिखर में रे लड़के, सुधा का ताल है।
बूँद २ टपके रे अवधू, पाते सुजान है ॥४॥
घाट त्रिवेणी रे लड़के। अगम सा वाट है।
सन्त शूर चढतेरे अवधू, अनोखा ठाठ है ॥५॥
सहस दल कमल में लड़के सुषुम्ना सेज है।
वचन में न आवे रे अवधू अनोखा तेज है ॥६॥
क्रिया कर्म नहीं रे लड़के, वर्ण नहीं जात है।
रूप नही रेखा रे अवधू, पिता नहीं मात है ॥७॥
सत गुरु लखावे रे लड़के, लखे शत शिष्य है
'अमृत' मिले है रे 'शंकर' बदले मे शीष के ॥८॥

[३]

नयन नासिका रे लड़के, गगन में ध्यान है।
श्वास माहिं वृत्ति रे अवधू आतम ज्ञान है ॥१॥
मूल कमल का रे लड़के, नाभि मे मेल कर।
कुण्डली उठा लेरे अवधू, मेरु के पन्थ से ॥२॥

स्वास २ जपना रे लड़के, अजपा जाप है।
आवागमन का रे अवधू, रहे सन्देह ना ॥३॥
पाप. पुण्य नाहीं रे लड़के, नहीं सुख दुःख है।
व्याधि ना उपाधि रे अवधू अचल आनन्द है ॥४॥
तन, मन, वचन से लड़के, सदा सत् बोलना।
गुरु की आज्ञा में रे अवधू रैन दिन चालना ॥५॥
सहज समाधि रे लड़के, नहीं मन डोलता।
वासना मिटा दे रे अवधू, यही सन्यास है ॥६॥
सुरति सहेली रे, लड़के आतम भूप है।
पाँच पचीसों रे अवधू, सदा सेवा करे ॥७॥
जाय नहीं आवे रे, लड़के, सदा एक रस रहे।
'अमृत' रमे है रे 'शंकर', पद निर्वाण में ॥८॥

[४]

नाभि से उठाले रे लड़के लेजा शून्य में।
भ्रमर गुफा में रे अवधू, अचल आनन्द है ॥१॥
ताल है सुधा का रे लड़के, अनामी हँस है।
मुक्ति की गोद में रे अवधू, करत किलोल है ॥२॥
ऋतु है वसन्त रे लड़के, नहीं दिन रैन है।
तेज पुञ्ज की रे अवधू, अनोखी सेज है ॥३॥
एक अवस्था है लड़के सदा एक रूप है।
जन्म मरण का रे संशय नहीं

इड़ा नहीं पिंगला रे लड़के, सुषुम्ना अन्त है।
दश विधि बजता रे अवधू, सदा ही नाद है ॥५॥
सिंह की गरजना रे लड़के, गगन में गूँजती।
पञ्चानन बाजे रे अवधू, सदा ही शंख है ॥६॥
योगी नहीं योगी रे लड़के, सिद्ध साधक नहीं।
वेद नहीं वक्ता रे अवधू, वरण नहीं जात है ॥७॥
अचल अखण्डो रे लडके, अमृत नाथ है।
श्वास का स्मरण कर रे शंकर, भजन तेरे हाथ है ॥८॥

---

(१४) राग मङ्गल।

सखियो मङ्गल गाओ हे.

सतगुरु आज पधारिया, चरणन पड जाओ हे ॥
÷ पग पाँवडा करो तन मन से, हृदय बिछाओ हे।
चरण धोय नयनों के जल, चरणामृत पायो हे ॥१॥
नम्र भाव का जल ले करके, स्नान कराओ हे।
पांच तीन का वस्त्र, टेक टोपा पहनाओ हे ॥२॥
चित का चन्दन घोट कर, मस्तक चर्चाओ हे।
धर्म, अर्थ अरु काम, मोक्ष के, पुष्प चढाओ हे ॥३॥
इड़ा पिंगला साज कर, दो दीपक लाओ हे।
अग्नि ज्ञान की लाय, ध्यान की धूप जलाओ हे ॥४॥

÷स्वागत

नवधा भक्ति की बाती कर, आरती सजाओ हे ।
अनहद घण्ट बजाय कर, उनमनि धुनि लाओ हे ॥५॥
अमी झरे दिन रैन, ताहिका भोग लगाओ हे ।
धार दीनता प्राण वायु का, चँवर ढुलाओ हे ॥६॥
शिखर महल के माहिं, सुषुम्ना सेज बिछाओ हे ।
सोहं सोहं गाय कर, गुरु देव रिझाओ हे ॥७॥
'अमृत' भेद अपार है, सहज ही लख पाओ हे ।
सुरति ठिकाने लाय कर, 'शंकर' गुण गाओ हे ॥८॥

[२]

सतगुरु शब्द सम्हाल, दूर भव व्याधि हो ।
चञ्चल मन थक जाय, सहज समाधि हो ॥१॥
जन्म मरण दुख मिटे, योग सहज ही स ॒ ।
निर्मल होवे बुद्धि, ज्ञान का बल बढ़े ॥२॥
मूलाधार सुधार, नाभि की सुधि करे ।
मेरु दण्ड के मार्ग, शिखर में श्रुति धरे ॥३॥
भ्रमर गुफा के माहिं, अनोखा ख्याल है ।
अद्भुत होता नाद, सुधा का ताल है ॥४॥
कोटि सूर्य सम तेज, सहस दल रूप है ।
रहे सदा ऋतु एक, गुरु तहँ भूप है ॥५॥
तुरिया तत्व विलास, सुषुम्ना सेज है ।
अमृत रूप अखण्ड, ब्रह्म का तेज है ॥६॥

सतगुरु 'चम्पानाथ' अमर गढ़ राजते।
'अमृत नाथ' सदैव, अनाहत बाजते ॥७॥

[३]

इड़ा पिंगला त्याग, सुषुम्ना साधिये।
श्वास लगा कर थम्भ, तहाँ मन बाँधिये ॥१॥
जाय त्रिवेणी घाट, अमीरस पीजिये।
आतम रूप निहार, सदा ही रीझिये ॥२॥
तहाँ भँवर अविराम, गति से बोलता।
पिण्ड और ब्रह्माण्ड, भेद सब खोलता ॥३॥
जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति, अवस्था तीन है।
सागर ब्रह्म अथाह तहाँ के मीन है ॥४॥
अमर गुफा के बीच, अधोमुख कूप है।
गोता लावे सन्त शूरमा भूप है ॥५॥
तुरिया तत्व अनूप, ब्रह्म का रूप है।
जाने सन्त सुजान, भेद अति गूप है ॥६॥
'चम्पानाथ' विचार, सकल भ्रम नाशिया।
सन्तों 'अमृत नाथ' सुधारस चाखिया ॥७॥

[४]

काम कला का भाव, कभी नहीं धारिये॥
वनिता चित्त न लाय, वासना मारिये ॥१॥

क्रोध पाप का मूल, कबहुं नहीं कीजिए।
शान्ति हृदय में धार, सुधा रस पीजिये ॥२॥

मोह शत्रु को मार, सदा निर्मोह हो।
कर सन्तन का सङ्ग, राम की खोज हो ॥३॥

दम्भ भाव का त्याग, शान्ति का मूल है।
दूर करो अभिमान, मिटे यम शूल है ॥४॥

लोभ वृत्ति दुख रूप, सदा निर्लोभ हो।
रहे सदा एकान्त, कभी नहीं क्षोभ हो ॥५॥

अहं भाव चित माहिं, कभी नहीं धारणा।
अहंकार को योग युक्ति से मारना ॥६॥

धरिये सत् सन्तोष, नम्र हो चालिये।
सतगुरु आज्ञा सत्य हृदय से पालिये ॥७॥

कर आलस को दूर, साधना कीजिये।
होय सदा लवलीन, आत्म रस पीजिये ॥८॥

सतगुरु 'चम्पा नाथ' दिया मोहिं ज्ञान है।
अमृत नाथ अखण्ड, लगा तव ध्यान है ॥९॥

---

[१५] पद

गठरी सङ्ग न राखते हो, नारी नेह न होय।
'शंकर' ऐसे साधु जन, होते विरला कोय ॥

ऐसे सज्जन बिरले होंय, जिनमें लोभ समूल नहीं है।
जिनने तेरा मेरा त्याग, सब कुछ समझा अविभाग॥
जग में धन्य उन्हीं का भाग, जिनको प्रभु की भूल नहीं है॥१॥
जिनका स्त्री, धन से नहीं प्रेम, उनको रहता सदैव क्षेम।
समझा सम पत्थर अरु हेम, उनको सङ्कट शूल नहीं है॥२॥
जिनने भ्रम को दूर हटाय, चित से वाद विवाद भगाय।
समता के हित किये उपाय, प्रभु उनके प्रतिकूल नहीं है॥३॥
जिनने सहज समाधि लगाय, सोहं सोहं शब्द जगाय
'शंकर' पाया त्रिकुटी माहिं, उनको भ्रम या भूल नहीं है॥४॥

[२]

सदा सर्वदा एक रस, स्थूल सूक्ष्म से भिन्न।
उत्पति प्रलय विकार से, अमृत होत न खिन्न॥
भगवन् तेरा अद्भुत रूप, बिरले योगी लख पाते हैं।
जिनके सुधरे अहार विहार, नश्वर जाता है संसार।
होना ठाना भव से पार, उनको विषय नहीं भाते हैं॥१॥
तृष्णा तक्षक के सम जान, होकर सन्तोषी निर्मान।
जिनने धरा गगन में ध्यान, उनके सङ्कट टल जाते हैं॥२॥
जग को जाना अपना रूप, वह नर बन गये एक छत भूप
उनकी होगई दशा अनूप, जो जन प्रभु रंग में राते हैं॥३॥
गुरु की शिक्षा को शिर धार, जिनने जीवन लिया सुधार।
उनको मिल गया सत का सार, 'शंकर' घट में पा जाते हैं॥४॥

[३]

सतगुरु दया विचारिये, बिलखत हो गई बेर।
क्यों न सुनी शंकर विनय कहां लगाई देर॥
गुरुवर दया दृष्टि से देख, मेरी चिन्ता दूर हटाओ।
भगवन भव का नीर अथाह, तृष्णा सरिता प्रबल प्रवाह॥
दीखत है नहीं मुझको राह, बैयां पकड़ो पार लगाओ॥१॥
हैं कामादिक शत्रु प्रचण्ड, मुझको भ्रमा रहे उद्दण्ड।
इनका मेटो नाथ घमण्ड संयम वृत्ति मेरी प्रगटाओ॥२॥
मुझको चैन नहीं दिन रैन, निकलें मुख से अट-पट बैन।
निश दिन करें प्रतिक्षा नैन देकर दर्शन कष्ट मिटाओ॥३॥
मुझको केवल तव अवलम्ब, करुणामय क्यों करो विलम्ब।
'अमृत' अद्भुत सा प्रतिबिम्ब, 'शंकर' घट में मोहि दिखाओ॥४॥

[४]

मैं दुखिया तुम दुःख हरण, मैं सेवक तुम नाथ।
चरणन पड़ विनती करूँ पकड़ो मेरा हाथ॥
स्वामी विनय करूँ कर जोड़, अब तो दया मेरे पर करना।
आगे तारे पतित अनेक, मेरी विनती सुनिये नेक।
रखिये शरणागत की टेक, चाहूं भव से पार उतरना॥१॥
गुरुवर काम क्रोध दो टार, इनसे गया नाथ मैं हार।
प्रभु अब किससे करूँ पुकार, मैं अति दीन पड़ूं तव चरणा॥२॥
आशा तृष्णा लीया घेर, स्वामिन सुनिये मेरी टेर।
इतनी कहां लगाई देर, अब तक क्यों न करी प्रभु करुणा॥३॥

मेरी नौका है मँझधार, तुम बिन कौन उतारे पार।
गुरुवर मेरा जन्म सुधार, 'शंकर' केवल तेरी शरणा ॥४॥

[५]

ध्यान रहे निश दिन तेरा, हे गुरुवर गुण खान।
शंकर' है यह याचना, पूर्ण करो भगवान ॥

भगवन् रहे तुम्हारा ध्यान, जब यह प्राण देह को छोड़ें।
भव-भय हरण तुम्हारा रूप, सत् चित आनन्द ब्रह्म स्वरूप।
एक-टक निरखें दर्श अनूप, गुरुवर नयन पलक नहीं मोड़ें ॥१॥
होवे तव चरणन का प्रेम, तब ही दीन वन्धु हो क्षेम।
सम हो भाषे लोहा हेम, लोभादिक से नाता तोड़ें ॥२॥
स्वामिन् होय दया की दृष्टि, सुख-मय रूप बने सब सृष्टि।
प्रेमामृत की होवे वृष्टि, मन को तव चरणन से जोड़ें ॥३॥
निश्चल होय दयामय, वृत्ति, जग से पाऊँ नाथ निवृत्ति।
'शंकर' चरणन माहिं प्रवृत्ति, दुविधा दुष्टा का शिर फोड़ें ॥४॥

[६]

तुम सब के आधार हो, हे प्रभु दीन दयालु।
सुन लो मेरी प्रार्थना, 'शंकर' परम कृपालु ॥

सब जग के तुम स्वामी एक, फिर मैं करूँ याचना किससे।
सुनिये मेरी आर्त पुकार, केवल तुम मेरे आधार।
विनती करता बारम्बार, भव की मिटे यातना जिससे ॥१

राग अरु द्वेष दूर हो जाय, समता का सत रूप दिखाय।
मन में निश्चलता आजाय, त्राण हो जाय विषय के विष से ॥२॥
प्रभो यह क्रोधादिक की आंच तपाती है कहता हूँ सांच।
इन्द्रिय प्रबल बहुत यह पांच, दुखी हूं बहुत नाथ मैं इससे ॥३॥
मेरी रक्षा करो दयालु, तुम सम और न अन्य कृपालु।
मुझ को बना देवो श्रद्धालु, 'शंकर' मिले शान्ति जिससे ॥४॥

---

(१६) गजल भैरवी बागेश्वरी

रटो सोहं सदा सोहं, सदा सोहं सदा सोहं सोहं।
भृकुटि में ध्यान धर करके, रटो सोहं सदा सोहं ॥१॥
करो चैतन्य नाभी से, चढो पथ मेरु हो करके।
जपो ब्रह्माण्ड में सोहं सदा सोहं सदा सोहं ॥२॥
दमन कर पांच रिपुओं का, पचीसों को विजय करके
शिखर की ओर को धाओ रटो सोहं सदा सोहं ॥३॥
कोटि दिनकर के सदृश तब विलक्षण ज्योति दरशावे।
अलौकिक नाद है, सोहं सदा सोहं सदा सोहं ॥४॥
इड़ा अरु पिंगला तज कर, रहो तन्मय सुषुम्ना में।
नयन को नासिका लाओ रटो सोहं सदा सोहं ॥५॥
मिला जिह्वा को दसनों से, सुधा का स्वाद लो निश दिन,
निराली शान्ति है इस में, रटो सोहं सदा सोहं ॥६॥
मिले आशा, छूटे तृष्णा, उनमनी ध्यान जब लाओ।
लखो निज रूप को तब ही, रटो सोहं सदा सोहं ॥७॥

भरा सागर है 'अमृत' का, अनामी हंस रमता है।
यह उसका ध्यान है 'शंकर' रटो सोहं सदा सोहं ॥८॥

[२]

तेरी सत्ता प्रकट होती सदा सर्वत्र हे भगवन्।
मनुज में देव, दैत्यों में, अधम उत्तम में हे भगवन् ॥१॥
चन्द्र में, सूर्य में, तारों में, नभ में, वज्र बादल में।
तेरी ही ज्योति दर्शाती, हमें सर्वत्र हे भगवन् ॥२॥
भक्ति, योग में वैराग्य में जप तप में अरु मख में।
तेरी महिमा अलौकिक है, न वर्णन हो सके भगवन् ॥३॥
भ्रमर में, गन्ध में, पुष्पों में फल में और वृक्षों में।
तुही सुरभित है विकसित है, नहीं कुछ अन्य हे भगवन् ॥४॥
युवा में, वृद्ध में, शिशु में, पुरुष में, नारि जीवन में।
तेरी प्रतिभा अनोखी सी, चमकती है सदा भगवन् ॥५॥
स्वर्ग में, मृत्यु में, पाताल में निर्वाण के सुख में।
तेरी अक्षुण्ण सत्ता ही, प्रकटती है सदा भगवन् ॥६॥
नगर में, और घर में, तनमें, वनमें, शैल सरिता में।
अनल में, जल में, पृथ्वी में, पवन में व्याप्त हे भगवन् ॥७॥
श्रवण में नयन, मुख अरु घ्राण में जिह्वा में, वाणी में।
चमकती शक्ति है तेरी, बिना आधार हे भगवन् ॥८॥
थके मन, बुद्धि, वाणी पार कुछ पाया न हे 'शंकर'।
क्रिया अरु कर्म, कर्ता तू, नहीं व्यतिरेक हे भगवन् ॥९॥

[३]

दयालु नाथ दुख भञ्जन, मिटा दो त्रास मेरी को।
सुनो मेरी विनय अब तो, कटा दो फांस मेरी को ॥१॥
कई जन्मों से व्याकुल हो रहा, कर्मों के रोगों से।
प्रभो अब तो दया करके, मिटा दो त्रास मेरी को ॥२॥
मैं सब विधि हीन हूं स्वामी, महा कपटी कुटिल कामी।
रहा तव चरण से वामी, मिटा दो त्रास मेरी को ॥३॥
स्मरण निज कर्म करता हूं, महा भय माहिं परता हूं।
दुखी हो श्वास भरता हूँ, मिटा दो त्रास मेरी को ॥४॥
गुरो एक आपकी आशा, सकल आधार है नाशा।
दया कर शीघ्र ‘शंकर’ मिटादो त्रास मेरी को ॥५॥

[४]

दयालु दीन हितकारी, पड़ा हूँ शरण में तेरे।
महा पापी हू तथापि, आ पड़ा हूं चरण में तेरे ॥१॥
तुही स्वामी, सखा भ्राता, तुही मेरा पिता माता।
मेरा उद्धार कर भव से, पड़ा हूं चरण में तेरे ॥२॥
मैं निर्धन हूं कुटिल कामी, महा विषयी अधीनामी।
पतित तारण है तू स्वामी, पड़ा हूं चरण में तेरे ॥३॥
भयङ्कर है विषय विष, शान्त कर, दे दान अमृत का।
तुही ‘शंकर’ शरण त्राता, पड़ा हूं चरण में तेरे ॥४॥

[५]

प्रभो अब तो दया करके, मिटा दो खेद मेरे को।
जान कर चरणन का चेरा, हटादो भेद मेरे को ॥१॥
मेरी एक प्रीति तुमसे हो शरण में ही प्रतीति हो।
रीति हो नीति हो कुछ भी, मिटादो खेद मेरे को ॥२॥
कहत हैं सन्त सुख कारी, तुम्हारा नाम अघहारी।
सदा भक्तों के भय टारी मिटादो खेद मेरे को ॥३॥

[६]

दयामय दास की विनती, सुनो अब तो दया करके।
हरो भव पीर को मेरे, दयालु अब दया करके ॥१॥
कई जन्मों से व्याकुल हो रहा दर्शन तुम्हारे को।
दिखादो सोहनी सूरत दयालू अब दया करके ॥२॥
रहा अविवेक में अब तक हितू जाना मैं विषयों में।
करो उद्धार मेरा हे दयालु अब दया करके ॥३॥
कहाँ जाऊँ किधर ढूँढूँ नहीं कुछ स्फूर्ति होती है।
बतादो स्थान को अपने, दयालु अब दया करके ॥४॥
नहीं होता भजन कुछ हे गुरो नहीं ध्यान बनता है।
लेवो चरणन हे शंकर, दयालु अब दया करके ॥५॥

[७]

दया सागर दया करके, दरश दो दास अपने को।
उदय कर ज्ञान के रवि को, हरो अज्ञान स्वप्ने को ॥१॥

काम अरु क्रोध से रिपु हैं, लगे प्रभु संग में मेरे।
पराजित शीघ्र कर इनको, हरो अज्ञान स्वप्ने को ॥२॥
त्रिविध कर्मों के रोगों ने, बनाया हैं मुझे रोगी।
दया कर मेंट दो इनको, हरो अज्ञान स्वप्ने को ॥३॥
है मन चञ्चल बड़ा भगवन्, सदा ही दौडता रहता।
बनादो इसको निश्चल, अरु हरो अज्ञान स्वप्ने को ॥४॥
दया कर दान दो 'अमृत', मुझे भव से अभय करदो।
शरण है आपकी 'शंकर' हरो अज्ञान स्वप्ने को ॥५॥

[८]

नहीं आधार कुछ मेरे, तुम्हारी आश है भगवन्।
हरोगे कष्ट को मेरे यहीं विश्वास है भगवन् ॥१॥
न यज्ञादिक बने मुझ से न किया स्नान गङ्गा में।
न जाना भेद वेदों का हुआ मम ह्रास है भगवन् ॥२॥
बनी नहीं भक्ति कुछ मुझ से रहा रत पञ्च विषयों में।
न श्रद्धा धर्म को कुछ है; नहीं अवकाश है भगवन् ॥३॥
हानि अरु लाभ की चिन्ता, रही निशदिन मेरे मन में।
सदा ही स्वार्थ का लालच बड़ा उपहास है भगवन् ॥४॥
करूँ जब स्मरण कर्मों का, तो हो उत्पन्न भय मन में।
पड़ेगी मार शिर यम की, छोड़ेगा नाश है भगवन् ॥५॥
पतित पावन तुम्हारा नाम सुनकर हे गुरु दाता।
शरण में आपकी 'शंकर' है दृढ़ विश्वास है भगवन् ॥६॥

[६]

कृपा गुरुदेव कारण हटि दुर्मति हमारी हैं।
हुआ शुभ ज्ञान सूर्योदय, घटी तम की अँधारी है ॥१॥
काम अरु क्रोध म उडगण, छिपे मद मोह से तारे।
है चमकी लाल सी आभा शिखर गढ़ पर हमारी है ॥२॥
हुआ सत्संग का गायन, किलोलें सन्त करते हैं।
सरल भावों का वल बढ़ कर हृदय में शान्ति धारी है ॥३॥
क्षमा अरु शील, शम, दम ज्ञान प्रकटे क्लेश भागा है।
हुआ है भोर यों घट में, सुमति 'शंकर' को प्यारी है ॥४॥

[१०]

हटादे वासना मन से, तेरा उद्धार तव होगा।
शरण गुरुवर की लेकर राम भज उद्धार तव होगा ॥१॥
जन्म अरु मरण का संकट मिटे भव निधि से तिरजावे।
दमन कर इन्द्रियों का तज विषय उद्धार तव होगा ॥२॥
घटे है आयु पल २ श्वास क्षण २ क्षीण होते हैं।
रहे तन्मय सदा इनमें, तेरा उद्धार तव होगा ॥३॥
यह मानव तन अमोलक। ईश ने तुझको दिया प्यारे।
रहे चैतन्य निशवासर तेरा उद्धार तव होगा ॥४॥
जगत बन्धन हरण 'अमृत' हरेंगे पीर जव तेरी।
हटेगी वासना तव चित्त से 'शङ्कर' शरण होगा ॥५॥

[११]

घटा शिरकाल की गाजे, तुझे क्या नींद आती है।
प्रमादी चेत कर अबतो, तेरी सब आयु जाती है ॥१॥
कनक अरु कामनी मिलकर, प्रबल सेना सजाई है।
उठाले शस्त्र शम, दम का, विजय जो तुझको भाती है ॥२॥
हृदय में दीनता धर के, अहं वृत्ती को वश करके।
हटा दे द्वेष मन से, जो तुझे शिक्षा सुहाती है ॥३॥
परम पावन चरण गुरु के, शरण हो नम्रता धर के।
सदा जप मंत्र अजपा को, यही ध्वनि रंग रानी है ॥४॥
अभय पद पायगा तब ही समाधि सहज जब लागे।
सदा कर पान 'अमृत' का, तेरा 'शङ्कर' सुसाथी है ॥५॥

[१२]

अरे नर ध्यान धर घट में, वृथा क्यों जन्म खोता है।
विषय के भूल भूले में, क्यों दुःख के बीज बोता है ॥१॥
गया तू भूल चेतनता, प्रपञ्ची बन गया जग में।
न जाने देह को नश्वर, सदा सुख नींद सोता है ॥२॥
सदा सत् संग कर प्यारे, दमन कर पञ्च विषयों का।
सजग हो आत्म चिन्तन में, समय सम्पूर्ण होता है ॥३॥

शरण गुरु देव की गह कर, श्रवण कर सत्य शिक्षा को।
बने आतम तभी निर्मल, अभय पद प्राप्त होता है ॥४॥
अविद्या भाव तब नाशे, लखे चहुं ओर 'अमृत' को।
समावे आप में "शङ्कर" तभी सुख रूप होता है ॥५॥

[१३]

हटादे मोह की निद्रा, सवेरा होता आता है।
नहीं तुझको तनिक चिन्ता समय को खोता जाता है ॥१॥
बिसारा रूप को अपने, गमाया जन्म मानव का।
न की उद्धार की चिन्ता, क्षणिक आनन्द भाता है ॥२॥
भयङ्कर मृत्यु के क्षण में, नहीं साथी कोई तेरा।
समझ कर मान कर फिर भी, न कुछ उपराम लाता है ॥३॥
स्मरण बिन शान्ति जीवों को, मिलेना सन्त यों कहते।
न पावे धाम 'शंकर' का, वृथा ही जन्म जाता है ॥४॥

[१४]

हुआ है भोर मन मेरे, हटा आलस्य को प्यारे।
मिला नर तन भजन को है, इसी का ध्यान रख बारे ॥१॥
विषय को जान प्रिय तूने, रमण करता रहा इन में।
न माना काल के भय को, रहा उन्मत्त मतवारे ॥२॥

जगत बन्धन कहे तब ही, शरण गुरु देव की लेवे।
नहीं तो क्लेश पावेगा, जठर की अग्नि का मारे ॥३॥
हृदय में धार दृढ़ समता, हटा अज्ञान के तम को।
सदा जप मंत्र अजपा को, तेरे 'शंकर' हों रखवारे ॥४॥

[१५]

कपट की कामना की क्रोध की गठरी मेरे बाबा।
उतारो तुम दया करके, मेरे बाबा मेरे बाबा ॥१॥
कभी तो प्रार्थना मेरी सुनोगे, है मुझे निश्चय।
यही आशा भरोसा है, मेरे बाबा मेरे बाबा ॥२॥
जगत के बन्धनों से त्राण पा जाऊँ तो अच्छा हो।
उबारो शीघ्र ही मुझको, मेरे बाबा मेरे बाबा ॥३॥
क्षमा कर भूल मेरी को, दयामय जान कर बालक।
सुमति दे, त्रास हर, 'शंकर' मेरे बाबा मेरे बाबा ॥४॥

[१] कव्वाली

किसको सुनाऊँ स्वामिन्, मैं घोर क्लेश मेरा।
चहुं ओर दे लिया है, यह राग द्वेष घेरा ॥१॥

सेना बना के अपनी, क्रोधादि शत्रुओं ने।
शुभ ज्ञान हर लिया है, स्वामिन अशेष मेरा ॥२॥
कुसमय मेरी यह नौका, भवसिन्धु में अड़ी है।
अज्ञान मय तमी है, नहीं है दिनेश मेरा ॥३॥
पतितों में हूँ शिरोमणि, अगणित अनर्थ मेरे।
तद्यपि तेरे सहारे, चाहता हूँ देश तेरा ॥४॥
अमृत तेरी शरण है, आधार तव चरण है।
'शंकर बना के किंकर, भिक्षा दे वेश तेरा ॥५॥

[२]

भूतेश विश्व भर्ता भगवन विनय हमारी।
मिल जाय शीघ्र हमको, भव में विजय हमारी ॥१॥
कामादि प्रति भटों से, संग्राम रैन दिन है।
रक्षा बिना न होवे, इनमें विजय हमारी ॥२॥
त्रय ताप की जलन से, दुख पा पुकारते हैं।
अब तो अवश्य सुनिये, स्वामिन् विनय हमारी ॥३॥
'शंकर' है नाम तेरा, हम दास हो दुखी हैं।
कल्याण कर दयालु, सुन कर विनय हमारी ॥४॥

(लावनी राग विहाग)

हे करुणा मय, हम निर्बल है मति हीना।
व्याकुल हैं भव में, जैसे जल बिना मीना॥
भव सिन्धु अथाह, अरु नौका जीर्ण हमारी।
है विकट भँवर में, ग्राह चहूँ दिशि, भारी॥
मन केवट है उन्मत्त महा मतवारी।
तिस पर प्रचण्ड कर्मों की मारुत जारी॥
तुम सहाय करो प्रभु, जान हमें अति दीना॥१॥
यह पञ्च विषय प्रभु, हमको बहुत सुहाये।
होकर प्रमाद वश, इनको हम अपनाये॥
खो दिया सकल शुभ, समय नहीं डरपाये।
जब क्षीण भये सब विधि तब हम पछताये॥
हो सब प्रकार बल हीन, स्मरण तव कीना॥२॥
धन, धाम, भ्रात, माता, पितु सबने छोड़ा।
प्रिय पुत्र, कलत्रादिक ने मुख को मोड़ा॥
सर्वस्व दिया हम जिन्हें नेह वह तोड़ा।
मन अन्त समय भी उस ही ओर को दौड़ा॥
धिक्कार हमें तव चरणन को नहीं चीन्हा॥३॥
अब त्राहि २ कर गहे आपके चरणा।
होकर अधीर प्रभु आय लिया तव शरणा॥
हे सतगुरु, दीन दयालु करो टुक करुणा।

हैं दुख हारी तव नाम क्लेश यह हरणा ॥
'शंकर' दयालु कर दूर यह मरना जीना ॥४॥

[२]

है मन मतङ्ग चञ्चल मेरा हे स्वामी।
कपटी,कठोर,मतिमन्द कुटिल अरु कामी ॥
राग, द्वेष, ईर्षा, मद मोह सुहाये।
धन सञ्चय के हेतु कुकर्म कमाये ॥
हैं मात, पिता, दारा, सुत को अपनाये।
दम्भी बन कर पाखण्ड यह बहुत रचाये ॥
तव चरण कमल से रखा नाथ मोहि वामी ॥१॥

वश होय काम के अन्ध, नारि अपनाई।
सर्वस्व समझ कर, उसको गले लगाई ॥
प्राणों से प्यारी जान, मान सुखदाई।
शुभ समय खो दिया, अन्त निकट नहीं आई ॥
खो कर्म, धर्म भय भक्ति बनाया पामी ॥२॥

हो क्रोध शत्रु के वशीभूत मति हीना।
कर गुरु जन का अपमान दर्प अतिकीना ॥
निति अनीती की ओर ध्यान नहीं दीना।
हो अहङ्कार में अन्ध मार्ग नहीं चीन्हा ॥
शुभ कर्म नाश कर, होगा रौरव गामी ॥३॥

होकर लोभी निशवासर नीच भ्रमाया।
दे दीन जनों को कष्ट द्रव्य उपजाया॥
खो कर्म, धर्म का ध्यान किये अन्याया।
नहीं प्रबल काल का भय पामर ने खाया।
पछतायेगा फिर बन पतितन में नामी॥४॥

हो गर्त मोह में निज कर्तव्य भुलाया।
सुत, बन्धु, मात, पितु अरु कलत्त अपनाया॥
धन जन अरु सुन्दर, सदन देख गरवाया।
बस सदा सर्वदा इनमें रहना चाया॥
हो दुखी रुदन किया, अन्त भये सब वामी॥५॥

हे दीन बन्धु मोहिं दीन जान अपनाओ।
है पतित उधारण नाम, पाप विनशाओ॥
आरत हो करता आहि, दरश दिखलाओ।
सतगुरु दयालु अब नेक विलम्बन लाओ॥
'शंकर' तव चरणन बारम्बार नमामी॥६॥

[२]

हे दीन बन्धु करुणा मय सुखद गुसाँई।
नहीं सुनी दीन की टेर बेर कहाँ लाई॥
प्रभु प्रबल अनल में निबल अबोध बचाये।
नरसिंह रूप धर, निज जन कष्ट छुड़ाये॥
पक्षी के अण्डे घण्टा डार बचाये॥
पाण्डव नारी के कष्ट तुरन्त नशाये॥
सुनते आरत टेर दया मन आई॥१॥

नामा कबीर गणिका अरु गृद्ध उवारे ।
धन हीन सुदामा के तुम कष्ट निवारे ॥
पापिन में नामी अजामेल को तारे ।
ध्रुव को ध्रुव पद तुम दिया चरण बलिहारे ।
सैन, सजन अरु तारी मीराँ बाई ॥२॥

गज के कारण प्रभु गरुड़ त्याग कर आये ।
धन्ना के खेत हरि बिन बोये उपजाये ॥
रैदास, अहिल्या, शिवरी को अपनाये ।
त्यागे व्यञ्जन, कर कृपा फूल फल खाये ॥
सुग्रीव, विभीषण की तुम विपति नशाई ॥३॥

प्रभु तारे सन्त अनन्त दया उर धारी ।
नहीं सके गिनन कोऊ शेष शारदा हारी ॥
कह नेति २ तव लीला वेद उचारी ।
भक्तन भय हारी अमिट विपति को टारी ॥
बार बार सन्तों के भये सहाई ॥४॥

कोऊ हवन, यज्ञ, तप, दान मान से करते ।
दृढ़ आसन धारी ध्यान शिखर में धरते ॥
आचार, नियम, यम, धर्म सहारे तरते ।
पूजन, अर्चन, वन्दन से साधन करते ॥
मैं निबल, दीन मतिहीन कछु न उपाई ॥५॥

काहू के धन, जन, धाम, ग्राम आधार ।
विद्या, बल, यश, गुण, रूप, उच्च कुल भारा ॥

कोई परोपकार कर कार्य के जगत के सारा।
मैं निराधार प्रभु तुम्हारा एक सहारा।
मुझ से आरत को तारण में अधिकाई ॥६॥

प्रभु त्राहि २ कर शरण आपकी आया।
शरणागत त्राता नाम सुनत हर्षाया॥
करुणा निधान अब मेरी करो सहाया।
सतगुरु दयाल तब चरणन शीष चढ़ाया॥
'शंकर' शरणागत भव के दुख नशाई ॥७॥

लावनी रंगत लंगड़ी।

सत गुरु शरणे जाय ज्ञान को पाय, चेत कर अज्ञानी।
मत कर नादानी, कहानी सुन ईश्वर निर्वाणी॥
विविध कर्म का मर्म जान कर, भेद भरम को दूर करो।
यो ही वचन खरो है, डरोमत शुभ करणी से भवन भरो॥
नाभि कमल से चेत, हेत कर मेरु दण्ड की, राह परो।
मत टरो बीच में, व्याधि को व्याधि की हरो,
अखण्डी ध्यान धरो॥
भ्रमर गुफा के माहिं नाथ याहि कहें मुनिवर ज्ञानी ॥१॥

इड़ा पिंगला छोड़ दौड़ कर मोड़ सुषुम्ना हो पारी।
मिलते फल चारी, तिहारी नाथ करेंगे रखवारी॥

बजते अनहद नाद, स्वाद आल्हाद जाय माया हारी।
तृष्णा को मारी, ध्यान धारी पावे जग हितकारी ॥
दृढ़ आसन अरु सत् का भाषण यही योग तप है दानी॥२॥
जाग्रत स्वप्न छोड़ कर प्यारे सुषुप्ति से हो न्यारे।
तुरिया आधारे, वास कर श्वास श्वास हरि गुण गारे।
सत्य ध्यान सन्मान, छोड़ अभिमान ज्ञान के घर आरे।
क्रोधादिक मारे, पधारे ममता मद समता लारे॥
शम, दम, नियमाचार, विश्वकर्तार सार में गलतानी॥३॥
व्यापक ब्रह्म विशुद्ध बुद्ध की चरण शरण मत विसरावे।
वेदादिक गावे, बतावे सार, प्रेम को दर्शावे॥
निर्विकार सतसार दीन आधार पार कोई नहीं पावे।
योगी जन गावे, सिधावे अमर लोक, फिर नहीं आवे॥
जगन्नाथ, जगदीश, जगत पितु, जग तारण सुसरो प्राणो॥४॥
सत्य, सच्चिदानन्द, स्वयंभू, सत्य रूप भव भयहारी।
यम का भय टारी, उतारी पार नाव अवगुण गारी॥
सतगुरु अमृत नाथ, पकड़ कर हाथ, साथ लिया हितकारी।
अगम अपारो, शील सन्तोष धार किया उपकारी॥
'शंकर' चरण शरण के बल से पार भये बहु नर ज्ञानी॥५॥

[२]

धन्य दयालू गुरो कृपालु, तव चरणन में नमो नमो
दया विचारो, उबारो भव से स्वामिन् नमो नमो॥
अगम, अपार, अगाध, अकामी, नाम का अघनाशी।
सन्तन घट वासी, नाम से दूर होय यम की फांसी॥

शेष, महेश पार नहीं पावे, जपे जाप नित सुखरासी।
कर्मन की गांसी, कृपा से छूट जात है चौरासी॥
दीनन के हितकारी, आप अधिकारी विश्व के नमो नमो ॥१॥

त्रिगुण रहित निर्वाण, योग, तप, ज्ञान,ध्यान से हो न्यारे।
वेदादिक हारे, अपारे नेति नेति कह उचारे।
निराकार, नित रूप, निरामय, पालन पोषण संहारे।
भक्तन हितकारे, तुम्हारे चरित विमल अपरम्पारे॥
क्षर, अक्षर को छोड़ आप निर अक्षर रूपी नमो नमो ॥२॥

क्षण में घटा घन घोर और क्षण माहिं दामिनी दमकावे।
मेहा बरषावे, और क्षण में तारा गण सरसावे॥
आदि अन्त नहीं मध्य आपका वेद शास्त्र यों दर्शावे।
कोई पार न पावे, भक्त जन यही ध्यान चित्त में लावे॥
करुणा सागर सब गुण आगर,नीति उजागर नमो नमो ॥३॥

अद्भुत देश वेश कुछ नाहीं, नहीं पाप है नहीं धरम।
नहीं शीत गरम है, और नहीं क्रिया रूप तहाँ नहीं करम॥
उदय, अस्त नहीं रैन दिवस, अरु तहां भेद भय नहीं भरम।
नहीं स्थूल नरम है, चराचर में व्यापक है ज्योति परम॥
आश्रम, वर्ण, अवस्था नाहीं, एक व्यवस्था नमो नमो ॥४॥

अघहारी निज इच्छा चारी, ध्यान धारणा सब हारी।
कामादिक भारी, हमारी नाथ करो तुम रखवारी॥

सतगुरु अमृत नाथ दिया है ज्ञान, क्लेश भव के टारी।
जाऊँ बलिहारी, न्याय कारी भक्तन के भय हारी॥
'शंकर' बारम्बार तुम्हारे चरण कमल में नमो नमो ॥४॥

(लावणी रंगत बड़ी

एक अलख खलक में व्यापक है,
उसका ही सकल पसारा है।
है गुप्त कहीं, अरु प्रकट कहीं,
है सब में सब से न्यारा है॥
कहीं त्रिगुण उपासी बनता है,
कहीं सदा उदासी रहता है।
कहीं बन में जा कर बसता है,
कहीं ध्यान शिखर में धरता है।
कहीं शीष मुँडा कहीं जटा बधा,
कहीं अङ्ग विभूति रमाता है।
कहीं भिक्षा करके खाता है,
कहीं अपने हाथ कमाता है॥
है खट्टा, मीठा कहीं, कहीं,
है तेज और कहीं खारा है॥१॥
है बालक, वृद्ध कहीं है युवा,
कहीं नारि पुरुष दर्षाता है।

है रङ्क कहीं, धनवान कहीं,

दाता है कहीं पछताता है॥

कहीं जल विन खेत जलाता है,

कहीं सुधा विन्दु बरषाता है।

कहीं दुखिया दुख को पाता है,

कहीं मन में अति हरपाता है॥

है मध्य में डुबकी खाता कहीं है,

वार और कहीं पारा है॥२॥

है मूर्ख कहीं, विद्वान् कहीं,

अरु कहीं योग मख करता है।

जप, तप, व्रत, तीरथ, दान,

मान से पूर्व पाप को हरता है॥

कहीं वेद पढे, कैलाश चढे,

कहीं स्थित है कहीं विचरता है।

कहीं उच्चासन पर बैठ व्यास,

शास्त्रों के वचन उचरता है॥

कहीं ध्यान, धारणा में रत है,

अरु कहीं ज्ञान की धारा है॥३॥

कहीं मात, पिता कहीं भ्रात सखा,

कहीं दारा सुत का रूप धरा।

कहीं गुरु और है शिष्य कहीं,

निज रूप कहीं अनुरूप भरा॥

कहीं प्रेम और कहीं प्रेमी है,
कहीं खोटा है अरु कहीं खरा।
कहीं गगन, वायु, वन्ही, जल है,
अरु कहीं बनाया रूप धारा॥
कहीं योग और कहीं योगी है,
कहीं पञ्च तत्व से न्यारा है॥४॥
कहीं नाभि कमल से चेतन हो,
जा शून्य शिखर में वास किया।
कहीं छहों कमल छेदन करके,
अरु भ्रमर गुफा को पास किया।
कहीं हठ से कर हठयोग सिद्धवन,
अष्ट सिद्धि विश्वास किया।
कहीं उदासीनता धार लिई,
माया प्रपञ्च का नाश किया।
सतगुरु 'अमृत नाथ' कहीं बन,
'शंकर' काज सुधारा है।

रङ्गत चौवोला।

❁ दोहा ❁

करुणा सागर कृपानिधि, कारुणीक करतार।
क्रिया कर्म से रहित है, केवल पद भरतार॥

❀ टेर ❀

केवल पद भर्तार, सार आधार, जगत के स्वामी ।
खल-दल-गञ्जन, दुष्ट विभञ्जन पूरण अन्तर्यामी ॥
पतित उधारण, भव निधि तारण, जारण विषय अकामी ।
निराधार, निज रूप, भूप तुम, अमर लोक के धामी ॥

❀ झड़ ❀

शिखर गढ़ आसन धारे, हमारे कार्य सुधारे ।
सदा 'अमृत' रखवारे, 'शंकर' किंकर वार २
तव चरण नमामि उचारे ॥१॥

[२]

❀ दोहा ❀

निराकार निर्भय निगुण, निजानन्द आधार ।
निर-आमय, निर्दोष प्रभु, निर्भिमान सत सार ॥

❀ टेर ❀

निर-भिमान, सत्सार, विश्वकर्तार, भार भुवि हारी ।
निश्चल, नित्य, निरूप, भूप, दुःख भञ्जन दुर्मति टारी ॥
निगमा गम आधार, मिले ना पार, पूर्ण अधिकारी ।
सत्य नित्य, अनुरक्त भक्त पर, कहते सन्त पुकारी ॥

❀ झड़ ❀

आप दुःख मेरा टारो, काम क्रोधादिक मारो।
सदा 'अमृत' रखवारे, 'शंकर' किंकर वार २
तव चरण नमामि उचारे ॥२॥

[३]

❀ दोहा ❀

दीन बन्धु, दानवदलन, दीनानाथ दयाल।
दुष्ट ध्वंस के हेतु तुम, रूप धरे तत्काल ॥

❀ टेर ❀

रूप धरे तत्काल दीन हितु, दयानाथ सुखकारी।
दया सिन्धु, दुःख दलन, दीन पितु, दीनन के हितकारी ॥
दया करो दुःख हरो, दिव्यदाता. दुर्मति को टारी।
अशरण शरण, शरण प्रतिपालक, भवन्दावा बलहारी ॥

❀ झड़ ❀

दया निधि नाम तुम्हारा, कष्ट भक्तों का टारा।
हरो प्रभु क्लेश हमारा, सतगुरु 'अमृत नाथ'
चरण पर 'शंकर' है बलिहारा ॥३॥

[४]

❀ दोहा ❀

अकथनीय अन्तिम, अमित, अलख अखण्ड अभेव।
अजय, अचञ्चल, अजन्मा, अतुलित अगम सदैव ॥

❀ टेर ❀

अतिलुत, अगम सदैव, भेद भय खेद हरण हो भारी।
हो नहीं सके बखान आपका, भव-भय-भञ्जन कारी ॥
ममता मिटा देय कर, समता, रत्ता करो हमारो।
हटा वासना, मन निश्चल कर, देय अविद्या टारी ॥

❀ झड़ ❀

आश तव चरण कमल से, उबारो मुझको भव से।
सदा गुरुदेव हमारे, 'शंकर' किंकर वार २ तव
चरणन पर बलिहारे ॥४॥

प्रात: प्रार्थना

प्रात: उठ कर तव चरणन का ध्यान करूँ मैं हे गुरु देव !
प्रकटे शुभ संकल्प हृदय में, अरु क्षमता समता की टेव ॥१॥
नियम पूर्वक शौच, स्नान अरु ध्यान, प्रार्थना, पठन करूँ।
शिष्टाचार करूँ महतों का, मित्रों में प्रिय भाव भरूँ ॥२॥
यथा शक्ति दीनों दुखियों की सेवा अरु सहायता करूँ।
अरु जीवन निर्वाह हेतु मैं, योग्य उचित व्यवसाय करूँ ॥३॥
भ्राता सम है पुरुष जगत के, और नारियाँ बहिन समान।
सदा यही धारणा रहे अरु, करता रहूँ अतिथि सम्मान ॥४॥

चाहे जैसा कष्ट मिले पर कभी असत्य न मार्ग गहूँ।
सद् ग्रन्थों का करूँ अध्ययन, सन्त जनों के सङ्ग रहूँ ॥५॥
बना रहूँ निर्भीक सत्य आचरण रहे गुरुवर मेरा।
हलका सादा-सात्विक भोजन, करूँ जो है आदेश तेरा ॥६॥
आप सर्व व्यापक हैं भगवन् हृदय नाथ, करुणा सागर।
सञ्चालित करते सब जग को, उचित रूप से नट नागर ॥७॥
तव शिक्षा अनुकूल "श्वास का ध्यान" नहीं विसरे मेरा।
हे शंकर! शंकर पद पाऊँ, "शंकर" चरणन का चेरा ॥८॥

ॐ सायंकाल आरती ॐ

जय सत गुरु दाता, ॐ जय सत गुरु दाता।
त्रिगुण रहित निर्वाणी, जग में विख्याता ॥
चेतन रूप निरञ्जन, आप पिता माता।
भक्तन के हितकारी, सदा-सुखी-नाता ॥१॥ ॐ जय ॥
आदि-सनातन-देवा, अगम ज्ञान ज्ञाता।
दुःख हरता सुख करता, सत्य रूप भाता ॥२॥ ॐ जय ॥
मन के रोग मिटावन, पावन-पथ-जाता।
शील, क्षमा गुण आगर, शरणागत त्राता ॥३॥ ॐ जय ॥
शान्ति रूप शरीरा, नाशक भव-पीरा।
सुख सागर के नीरा, भक्तन के नाता ॥४॥ ॐ जय ॥

आदि पुरुष अविनाशी, सन्तन घट वासी।
भव सागर–दुःख नाशी, सत सुख के दाता ॥५॥ ॐ जय ॥

अगम अगोचर स्वामी, तुम अन्तर्यामी।
अमर लोक के धामी, सन्तन मन राता ॥६॥ ॐ जय ॥

सत्य रूप भय हारी, कामादिक मारी।
भक्तन के अघहारी, पार नहीं पाता ॥७॥ ॐ जय ॥

"अमृत नाथ" दयाला, हरिये भव जाला।
'शङ्कर' कर प्रतिपाला, चरणन बलि जाता ॥८॥ ॐ जय ॥

❀ श्री अमृत नाथाष्टक ❀

कैसे तुम पिलाणी में, प्रकट भये हो नाथ।
† चेतन ‡ चैतन्य कियो ज्ञान को सुनाय के ॥१॥

आयु वर्ष तीन की में, कोस तेईस गये।
अचरज पैदा किया, शक्ति को दिखाय के ॥२॥

बाला पन माहिं बाल चरित अनेक किये।
रहे निर्द्वन्द भय चित्त से हटाय के ॥३॥

ब्रह्मचर्य्य वृत्तिधार, काम क्रोध दिये मार।
'अमृत' प्रणाम बार बार शिर नाय के ॥४॥

---

† श्री नाथ जी के पिता।

‡ आत्म ज्ञान दिये।

वर्ष षट्त्रिंश माहिं, 'चम्पानाथ' गुरु पाय ।
लिया था सन्यास, वास वनका सुहाया है ॥
राजपुरा माहिं 'हीरानाथ' को दिखाया बल ।
सींगी मोहरा हींगलू ६ सेर आग खाया है ॥
‡ शूरसिंह जू के कोढ़ क्षण में मिटाये नाथ ।
‡ तेजसिंह जू का पुत्र मृत्यु मे बचाया है ॥
चूरू माहिं तीन सेर, विष को चबाय लिया ।
दया कर वऊ गाँव, रोग से बचाया है ॥२॥
‡ 'बलवन्तसिंह' को दिखाय निजरूप दिया ।
लोभ माहिं फँसा तब, ताने दुःख पाया है ॥
‡ शिवनाथसिंह' जू के खेत माहिं नीर बहा ।
भक्त 'पञ्जाबी' का आवागमन मिटाया है ॥
'बंशी' स्वर्णकार भया, एक नेत्र हीन तब ।
अग्नि से सुझाया नाथ अचरज आया है ॥
लाखों रोगी स्वस्थ किये दुःख से बचाय लिये ।
'अमृत' उवारे सोही, 'शंकर' सुहाया है ॥३॥
कैसे "नाथ पाँगल" को हाथ पैर दिये नाथ ।
खारे कूपहू का जल, मीठा कैसे किया है ॥
कैसे दण्ड लकड़ी का दौड़ाया मनुज पीछे ।
सौ गोली जमाल गोटे की पचाय लिया है ॥

‡ यह बऊ का राजपूत थे ।

साधु, नारायण गिरि, ❀ माई स्पर्श घेकी कही ।
वही हिंगलाज का दरश दिखा दिया है ॥
शरण ‡ 'गुलाबचन्द' आया मेटे भव फन्द ।
पाये गुरु 'अमृत' शंकर शुद्ध हिया है ॥४॥
वर्ष ÷ षट्त्रिंश तक, भ्रमण में रहे नाथ ।
भीषण प्रतिज्ञा ऐसी, मुख से सुनाई है ॥
शयन करेंगे अब रमण करेंगे नहीं ।
अक्षय कोप खुलेगा जो माँगि हैं सो पाई हैं ॥
फतेपुर माहिं तब आश्रम निर्माण भया ।
भक्त मण्डली ने जाना अति सुखदाई है ॥
'गोरख राम' सेवा पाय क्रोड़ पति भया ।
ऐसे 'नाथ अमृत' की शंकर बलि जाई है ॥५॥
राव राजा () माधवसिंह, चरणन आय परे ।
भेद को मिटाय ताकी चिन्ता दूर लियी है ॥
ठाकरसी सराफ को, कराल सर्प डसा तब ।
हाथ फेर क्षण माहिं, पीर दूर कियी है ॥
दरभङ्गा के पण्डित 'श्रीकान्त' को दिखाया तत्व ।
आत्म रूप पायबे की शिक्षा नीकी दियी है ॥
खान, पान, वाणी, व्यवहार के सुधार हेतु ।
रीतियाँ बताई है सो हिये माहिं पियी है ॥६॥

❀ हिंगलाज के दरशन । ‡ आमेर के पुरोहित ।

÷ छत्तीस वर्ष । () सीकर नरेश

रहे निर्लेप ज्यों कमल जल माहिं रहे।
लाखों उपकार किये, तप-बल भारी है॥
'श्यामतिनाथजी' के शीश धार के हस्तारविन्द।
जीवन मुक्त किये प्रभु महती दया धारी है॥
कहाँ लों बखानूँ तव लीला है परम गुरु।
बुद्धि वाणी थक रही, माया तम टारी है॥
'अमृत नाथ' आपके चरित सुखदायक है।
'शङ्कर' अनेक बार चरणन वारी है॥७॥

जय गुरु देव चरणन बारम्बार।
दीनता से शीश धार विनय हमारी है॥
वृत्ति हो पवित्र अरु निर्मल चरित्र होय।
सन्तन का संग मिले माया तम टारी है॥
राग द्वेष झूठे क्लेश नहीं लव लेश रहे।
आयु अवशेष कटे भक्ति में तुम्हारी है॥
ज्ञान का प्रकाश होय अविद्या तिमिर नाशे।
ऐसी दया होय गुरु 'शङ्कर' सुधारी है॥८॥

श्री विलक्षण अवधूत छः खण्ड
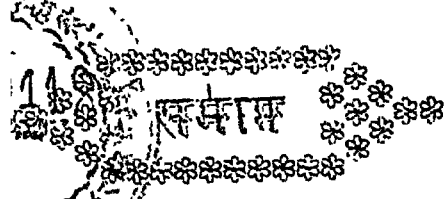
श्रीनाथ सम्प्रदाय का कुछ परिचय।

यह सम्प्रदाय भारत की परम प्राचीन उदार ऊँच नीच की भावना से परे एवं अवधूत अथवा योगियों की सम्प्रदाय है।

इसका आरम्भ आदिनाथ शङ्कर से हुआ है और इसका वर्तमान रूप देने वाले योगाचार्य बालयति श्री गोरक्ष-नाथ हैं। श्री गोरक्षनाथ भगवान शङ्कर के अवतार हुए हैं। जिनके प्रादुर्भाव और अवसान का कोई लेख अब तक प्राप्त नहीं हुआ।

पद्म, स्कन्द शिव ब्रह्माण्ड आदि पुराण तंत्र महार्णव आदि तांत्रिक ग्रंथ, बृहदारण्यक आदि उपनिषदों में तथा और दूसरे प्राचीन ग्रन्थ रत्नों में श्री गुरु गोरक्षनाथ की कथायें बड़े सुचारु रूप से मिलती हैं।

श्री गोरक्षनाथ वर्णाश्रम-धर्म से परे पञ्चमाश्रमी अवधूत हुए हैं जिन्होंने योग क्रियाओं द्वारा मानव शरीरस्थ महा शक्तियों का विकास करने के अर्थ संसार को उपदेश दिया

और हठ योग की प्रक्रियाओं का प्रचार करके भयानक रोगों से बचने के अर्थ जन समाज को एक बहुत बड़ा साधन प्रदान किया।

श्री गोरक्षनाथ ने योग सम्बन्धी अनेकों ग्रंथ संस्कृत भाषा में लिखे जिनमें बहुत से प्रकाशित हो चुके हैं और कई अप्रकाशित रूप में योगियों के आश्रमों में सुरक्षित हैं।

श्री गोरक्षनाथ की शिक्षा एवं चमत्कारों से प्रभावित होकर अनेकों बड़े २ राजा इनसे दीक्षित हुए और अपने अतुल वैभव को त्याग कर निजानन्द प्राप्त किया तथा जन-कल्याण करने में अग्रसर हुए। इन राजर्षियों द्वारा बड़े २ कार्य हुए।

श्री गोरक्षनाथ ने सांसारिक मर्यादा की रक्षा के अर्थ श्री मत्सेन्द्रनाथ को अपना गुरु माना और चिरकाल तक इन दोनों में शङ्का समाधान के रूप में संवाद चलता रहा। श्री मत्सेन्द्र को भी पुराणों तथा उपनिषदों में शिवावतार मान कर अनेक जगह इनकी कथाएँ लिखी हैं।

यों तो यह योगी सम्प्रदाय अनादि काल से चली आ रही है किन्तु इसकी वर्तमान परिपाटियों के नियत होने का काल भगवान् शङ्कराचार्य से २०० वर्ष पूर्व है। ऐसा शंकर दिग्विजय नामक ग्रन्थ से सिद्ध होता है।

बुद्ध काल में वाम मार्ग का प्रचार बहुत प्रबलता से हुआ जिसके सिद्धान्त बहुत ऊँचे थे किन्तु साधारण बुद्धि के लोग इन सिद्धान्तों की वास्तविकता न समझ कर भ्रष्टाचारी होने लगे।

इसी काल में उदार चेता श्री गोरक्षनाथ ने वर्तमान नाथ सम्प्रदाय का निर्माण किया और तात्कालिक ८४ सिद्धों में सुधार का प्रचार किया। यह सिद्ध वज्रयान मतानुयायी थे।

इस सम्प्रदाय में उस काल में नव नाथ प्रसिद्ध हुए। यथा:—श्री गोरक्ष नाथ, ज्वालेन्द्र नाथ, कारिण नाथ, गहिनी नाथ, चर्पट नाथ, रेवण नाथ नाग नाथ, भर्तृ नाथ, गोपीचन्द नाथ।

इस सम्बन्ध में एक दूसरा लेख भी मिलता है जो कि निम्न प्रकार है:—

ओंकार नाथ, उदय नाथ, सन्तोष नाथ, अचल नाथ, गजबेली नाथ, ज्ञान नाथ, चौरंगी नाथ, मत्स्येन्द्र नाथ और गुरु गोरक्ष नाथ। सम्भव है यह उपर्युक्त नाथों के ही दूसरे नाम हों।

यह योगी सम्प्रदाय बारह पन्थ में विभक्त है यथा:—सत्यनाथ, धर्मनाथ, दरियानाथ, आई पन्थी रामके, वैराग के, कपिलानी, गंगानाथी, मन्नाथी, रावल के, पाव पन्थी और पागल।

इन बारह पन्थ की प्रचलित परिपाटियों में कोई भेद नहीं है। भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में योगी सम्प्रदाय के बड़े बड़े वैभवशाली आश्रम हैं और उच्च कोटि के विद्वान इन आश्रमों के सञ्चालक हैं।

श्री गोरक्षनाथ का मान नैपाल प्रान्त में बहुत बड़ा था और अब तक भी नैपाल का राजा इनको प्रधान गुरु के रूप में मानते हैं और वहाँ पर इनके बड़े २ प्रतिष्ठित आश्रम हैं। यहाँ तक कि नैपाल की राजकीय मुद्रा (सिक्के) पर श्री गोरक्ष का नाम है और वहाँ के निवासी गोरक्षे ही कहलाते हैं इसी का अपभ्रंश गोरखा है।

काबुल-गान्धार देश, सिन्ध, बिलोचिस्तान; कच्छ और अन्य देशों तथा प्रान्तों में यहाँ तक कि मक्का मदीने तक श्री गोरक्षनाथ ने दीक्षा दी थी और ऊँचा मान पाया था।

इस सम्प्रदाय में कई भाँति के गुरु होते हैं यथाः—चोटी गुरु, चीरा गुरु, मंत्र गुरु, टोपा गुरु आदि।

श्री गोरक्षनाथ ने कर्ण छेदन—कान फाड़ना या चीरा चढ़ाने की प्रथा प्रचलित की थी। कान फड़ाने को तत्पर होना कष्ट सहन की शक्ति, दृढ़ता, और वैराग्य का बल प्रगट करता है। श्री गुरु गोरक्ष ने यह प्रथा प्रचलित करके अपने अनुयायियों शिष्यों के लिये एक कठोर परीक्षा नियत करदी। कान फड़ाने के पश्चात् मनुष्य बहुत सी सांसारिक झंझटों से

स्वभावतः या लज्जा से बचता है। चिरकाल तक परीक्षा करके ही कान फाड़े जाते थे और अब भी ऐसा ही होता है। बिना कान फटे हुए साधु को 'ओघड़' कहते हैं और इसका आधा मान होता है।

भारत में श्री गोरक्षनाथ के नाम पर कई विख्यात स्थान हैं और इसी नाम पर कई महोत्सव मनाये जाते हैं।

यह सम्प्रदाय अवधूत सम्प्रदाय है। अवधूत शब्द का अर्थ होता है "स्त्री रहित या माया प्रपंच से रहित"। जैसा कि "सिद्ध सिद्धान्त पद्धति" में लिखा है:—

"सर्वान् प्रकृति विकारान वधू नोतित्यऽवधूतः ॥"

अर्थात् जो समस्त प्रकृति विकारों से भिन्न है वह अवधूत है। पुनश्च:—

"वचने २ वेदास्तीर्थानि च पदे पदे।
दृष्टो २ च कैवल्यं सोऽवधूतः श्रिये स्तुनः ॥"
"एक हस्ते धृतस्त्यागो भोगश्चैक करे स्वयम्।
अलिप्तस्त्याग भोगाभ्यां सोऽवधूता श्रियस्तुनः ॥"

उपर्युक्त लेखानुसार इस सम्प्रदाय में नव नाथ पूर्ण अवधूत हुए थे और अब भी अनेक अवधूत विद्यमान हैं।

नाथ लोग अलख (अलक्ष) शब्द से अपने इष्ट देव का ध्यान करते हैं। परस्पर आदेश या आदीश शब्द से अभिवादन करते हैं। अलख और आदेश शब्द का अर्थ प्रणव

था परम पुरुष होता है जिसका वर्णन वेद और उपनिषद आदि में किया गया है।

योगी लोग अपने गले में काले ऊन का एक जनेऊ रखते हैं जिसे 'सेली' कहते हैं। गले में एक सींग की नादी रखते। इन दोनों को सींगी सेली कहते हैं। यह लोग शैव हैं अर्थात् शिव की उपासना करते हैं।

षट् दर्शनों में योग का स्थान अत्युच्च है और योगी लोग योग मार्ग पर चलते हैं अर्थात् योग क्रिया करते है जो कि आत्म दर्शन का प्रधान साधन है। जीव ब्रह्म की एकता का नाम योग है चित्त वृत्तियों के पूर्ण निरोध को योग कहते हैं।

वर्तमान काल में इस सम्प्रदाय के आश्रम अन्यत्रस्थित होने लगे हैं। इसी हेतु "अवधूत योगी महा सभा" का संगठन हुआ है और यत्र तत्र सुधार और विद्या प्रचार करने में इसके सञ्चालक लगे हुए हैं।

प्राचीन काल में स्याल कोट नामक राज्य में शंखभाटी नाम के एक राजा थे उनके पूर्ण मल और रिसालु नाम के दो पुत्र हुए। यह श्री गोरक्षनाथ के शिष्य बनने के पश्चात् क्रमशः चोरंगी नाथ और मन्नाथ के नाम से प्रसिद्ध होकर उग्र तपस्या के द्वारा महा शक्ति प्राप्त करके जन कल्याण कारक कार्य करते हुए भ्रमण शील रहे। "योगश्चित वृत्ति निरोधः" सूत्र की अन्तिमावस्था को प्राप्त की और इसी का प्रचार एवं

प्रसार करते हुए जन कल्याण किया और भारतीय या मानवीय संस्कृति को अक्षुण्ण बनी रहने का बल प्रदान किया।

उपर्युक्त १२ पन्थ में जो 'मन्नाथी' पन्थ है वह इन्हीं "श्री मन्नाथ" का पन्थ है। श्री मन्नाथ ने भ्रमण करते हुए वर्तमान जयपुर राज्यान्तर्गत शेखावाटी प्रान्त के बिसाऊ नगर के समीप आ कर अपना आश्रम निर्माण किया। यह ग्राम अब 'टाँई' के नाम से प्रसिद्ध है। श्री मन्नाथ ने यहीं पर अपना शरीर त्याग किया था यहीं पर इनका समाधि मन्दिर है और मन्नाथी योगियों का गुरु द्वार है।

टाँई के आश्रम के आधीन प्राचीन काल से २००० बीघा जमीन है, अच्छा बड़ा मकान है और इसमें कई समाधियाँ बनी हुई हैं। इस से ज्ञात होता है कि श्री मन्नाथ के पश्चात् यहाँ पर दीर्घकाल तक अच्छे सन्त रहते रहे हैं।

इस समय इस स्थान में बाबा श्री ज्योतिनाथ जी के शिष्य श्री केशरनाथ रहते हैं। इन दिनों इस आश्रम का जीर्णोद्धार भी हुआ है।

श्री मन्नाथ के वंश में आगे चल कर श्री चञ्चलनाथ अच्छे सन्त हुए और इन्होंने कदाचित् सं० १७०० वि० के आस पास झुंझनू (जयपुर) में अपना आश्रम बनाया यहीं इनका समाधि मन्दिर है।

इससे आगे का इतिहास इस पुस्तक के परिशिष्ट सं० २ में लिखा गया है। यदि सम्भव हुआ तो श्री गोरक्षनाथ की

शिक्षाएँ और एकत्र करके प्रकाशित करने की चेष्टा की जायगी।

नाथ लक्षण:—

"नाकारोऽनादि रुपंच 'थकार' स्थाप्यते सदा"
भुवनत्रय मे वैकः श्री गोरक्ष नमोस्तुते।
"शक्ति संगम तंत्र ॥

अवधूत लोग अद्वैत वादी योगी होते हैं जो कि बिना किसी भौतिक साधन के योगाग्नि प्रज्वलित करके कर्म विपाक को भस्म कर निजानन्द में रमण करते हैं और अपनी सहज शिक्षा के द्वारा जन कल्याण करते रहते हैं। तभी उपर्युक्त नाथ शब्द सार्थक होता है।

इनका सिद्धान्त है :—

न ब्रह्मा विष्णु रुद्रौ, न सुरपति सुरा,
नैव पृथ्वी न चापौ।
नैवाग्निर्नापि वायु न च गगन तलं,
नो दिशौ नैव कालः।
नो वेदा नैव यज्ञा न च रवि शशिनो,
नो विधि नैव कल्पाः।
स्व ज्योतिः सत्य मेकं जयति तव पदं,
सच्चिदा नन्द मूर्ते ॥

शान्ति ! प्रेम !! आनन्द !!!

श्री गोरक्षनाथ

की

आरती

ॐ जय गोरक्ष देवा, श्री स्वामी जय गोरक्ष देवा ।
सुर नर मुनि जन ध्यावें, सन्त करत सेवा ॥

ॐ गुरुजी योग युक्ति कर जानत, मानत ब्रह्म ज्ञानी ।
सिद्ध शिरोमणि राजत, गोरक्ष गुण खानी ॥१॥ जय ॥

ॐ गुरुजी ज्ञान ध्यान के धारी, सब के हितकारी ।
गो इन्द्रिन के स्वामी, रखते सुधि सारी ॥२॥ जय ॥

ॐ गुरुजी रमते राम सकल माहीं, छाया है नाहीं ।
घट घट गोरक्षक व्यापक, सो लख घट माहीं ॥३॥ जय ॥

ॐ गुरुजी भस्मी लसत शरीरा, रजनी है संगी।
योग विचारक जानत, योगी बहु रंगी ॥४॥ जय ॥

ॐ गुरुजी कण्ठ विराजत सींगी सेली, जत मत सुख मेलो।
भगवाँ कन्था सोहृत, ज्ञान रत्न थैली ॥५॥ जय ॥

ॐ गुरुजी कानन कुण्डल राजत, साजत रवि चन्दा।
बजते अनहद बाजा, भगते दुख द्वन्दा ॥६॥ जय ॥

ॐ निद्रा मारो कल संहारो, संकट के वैरी।
करो कृपा सन्तन पर, शरणागत तेरी ॥७॥ जय ॥

ॐ गुरुजी ऐसी गोरक्ष आरती, निशि दिन जो गावे।
❀ वर्णे "राजा रामचन्द्र योगी" सुख सम्पति पावे ॥८॥ जय ॥

❀ वर्णन करे

❀ ॐ ❀

उप संहार

आध्यात्म-धर्म-प्रधान भारतवर्ष में न जाने कितने ऐसे शरीर अवतीर्ण हुए जिन्होंने इस जगत को गतिमान किया अपने ढङ्ग से। नाना प्रकार की शिक्षाएँ दीं, मार्ग दर्शन किया, नवीन आविष्कार किये, गुप्त तत्वों को प्रकाश में लाये और स्वयं पूर्ण शान्ति प्राप्त करके, अपने अनेक अनुयाइयों को शान्ति पथ पर चलाये-उद्धार किया। और शेष जगत के लिये श्रवण, मनन और निधिध्यासन के अर्थ प्रचुर मात्रा में उत्तम उत्तम सामग्री छोड़ कर अन्तर्धान हुए।

इन दिव्य आत्माओं में भारतीय संस्कृति के अनुसार देवता-चाहे उनके स्वरूप और बनावट की कैसी भी कल्पना करली गई हो-इस जगत के नेता, पथ प्रदर्शक एवं शिक्षक हुए हैं। ऋषि मुनि, सर्वज्ञता पूर्ण भगवान कृष्ण और राम जैसे राजा।

शुकदेव जैसे ज्ञानी अष्टावक्र जैसे ब्रह्म वेत्ता। व्यास, कपिल, कणाद, गौतमादि षट्-दर्शनों के रचयिता-ऊर्ध्व रेता ब्राह्मण, गुरु गोरखनाथ, दत्तात्रय आदि पूर्ण योगी एवं महात्मा, तथा श्री शङ्कराचार्य बुद्ध, महावीर आदि व्याख्याता उपदेशक एवं आचार्य श्री नानक देव, दादू दयाल कबीर आदि भक्त जन, स्वामी विवेकानन्द और राम तीर्थ तथा स्वामी दयानन्द आदि युगानुसार साधु। अपने अपने ढङ्ग के एक से एक अच्छे नर देह धारी सन्त जनों का नाम लिया जाता है। जिन्होंने अपनी विलक्षणता का समय समय पर दिग्दर्शन एवं प्रसार तथा प्रचार किया

आध्यात्मिक पुरुषों के समान ही शौर्य, राजनीति, अर्थ-शास्त्र, समाज शास्त्र, शरीर विज्ञान, औषधि विज्ञान, काव्य, कला, ज्योतिष आदि के धुरंधर विद्वान, वीर नर पुंगवों का यह भारत सदा से क्रीड़ा स्थल एवं रंग भूमि रहा है और इसी कारण अपने आपको जगद् गुरु के उच्चासन पर प्रतिष्ठित करने का महान गौरव प्राप्त किया है और कर रहा है।

इस पवित्र तपो-भूमि में यह क्रम न रुका है और न रुकने वाला है। एक से एक अच्छा पथ प्रदर्शक और नेता इस देश को मिला है और मिलता रहेगा।

इस बीसवीं शताब्दि में भी यहाँ अनेक दिव्य आत्माओं का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें से कुछ ने केवल अपने कल्याण एवं शान्ति के अर्थ त्याग तपस्या और साधन किये और पूर्ण शान्ति प्राप्त की। इनके सहवास-सत्संग में रहने वाले जिज्ञासु पुरुष और दुःखी जन समाज को शान्ति एवं सुख प्राप्त हुआ।

इन अनुकरणीय साधु पुरुषों में श्री सूतलीदास, श्रीशीतलदास, श्री तूही राम, श्री नारायण दास, श्री गणेशदास (गूदड़ो वाले बाबा) भारती बाबा आदि कई सन्त और कुछ गृहस्थ राजस्थान प्रान्त के जयपुर राज्य में प्रादुर्भूत हुए और कल्याण के साथ ही विविध प्रकार से जनता का कल्याण किया।

"दिव्य आत्माएँ जन समाज के कल्याणार्थ प्रकट होती हैं यह सर्वथा सत्य है"।

साधारणतः समस्त देह धारी नैमित्यक होते हैं और अपने भाग के कार्य इस विश्व रूपी नाट्य शाला में करते हैं। किन्तु कुछ दिव्य आत्माएँ विशेष प्रकार के कार्य सम्पादन के अर्थ प्रादुर्भूत होती हैं और इनके द्वारा महान एवं कल्याण-कारक कार्य एवं विधियाँ पूर्ण होती हैं और इनके अन्तर्धान

होने के पश्चात् भी चिरकाल तक इनके उपदेश और कार्यों से संसार को लाभ होता है और किसी न किसी रूप में इनका सम्पर्क, स्मरण और प्रभाव बना रहता है।

पूज्य पाद गुरु देव बाबा श्री अमृतनाथ इस शताब्दि में एक विलक्षण महात्मा के रूप में जन समाज के कल्याणार्थ अवतीर्ण हुए।

विलक्षण इस लिये कि आप का जन्म विलक्षण रूप से हुआ। बाल्य, किशोर एवं युवावस्था का समय विलक्षणता पूर्ण रहा। संन्यास और भ्रमण काल में विलक्षण कार्य किये। आहार बिहार तो ऐसा बिलक्षण कि लिखते समय लेखनी को रुकना पड़ता है।

शिक्षा एवं साधन भी क्रान्तिकारक सर्वतन्त्र स्वतन्त्र एवं अनुभूत और विलक्षण। रहन सहन त्याग तपस्या कथनी करणी सभी विलक्षण।

चलना, फिरना, ठहरना, बैठना, और अन्त में लेटना भी विलक्षण और शरीर–त्याग–निर्वाण प्राप्ति भी विलक्षण रूप से ही।

इस प्रकार आदि से अन्त तक इस विशेष नैमित्यक शरीर के द्वारा विलक्षण ही विलक्षण कार्य हुए। इसी कारण आपके दिव्य चरित्र एवम् सदुपदेश के इस ग्रन्थ का नाम "विलक्षण अवधूत" रखना उचित, उत्तम और सार्थक जान पड़ा।

वैसे तो पाठक इस ग्रन्थ के पढ़ने पर स्वयं ही जान जायँगे कि आपका चरित्र क्यों कर विलक्षण है। किन्तु इन विलक्षणताओं की एक सूची लगाना श्रेयष्कर जान पड़ता है।

१—जन्म—पैरों द्वारा गर्भ से बाहर आना, तीन दिन तक दूध न पीना।

२—श्री चेतनराम को स्वप्न में दर्शन एवं शिक्षा।

३—तीन वर्ष की आयु में २३ कोस तक पैदल और न जाने हुवे रास्ते से अकेले जाना और ऊँटों से पहिले पहुंचना।

४—छोटी आयु में घर वालों और साथी बालकों को शिक्षा देना और वैराग्य रहना।

५—विवाह न करने की प्रतिज्ञा करके आजन्म दृढ़ संयम और ब्रह्मचर्य द्वारा उर्ध्व रेता रहना।

६—चीरा चढ़ाने—कान फाड़ने के समय अपने हाथ से कान फाड़ना।

७—भारी वर्षा कठोर शीत, और भून देने वाली उष्णता-गर्मी खुले मैदान में व्यतीत करना और साथ वालों से करवाना। महीनों कठोर मौन रखना।

८—२० वर्ष तक एकाकी भ्रमण करना, किसी से याचना न करना और अनिकेत रहना।

९—थोड़े ही दिन में ६ सेर हींगल और सींगी मोहरा तथा ४ सेर संखिया भक्षण करना। मणों गौ मूत्र पीना और नीम के पत्ते खाना। जलती हुई अग्नि के ढेर पर कई दिन बैठा रहना और कई दिन तक औटता हुआ गर्म पानी पीना।

१०—प्रति दिन मणों दूध, मणों छाछ, मणों जल रावड़ी, मतीरे का जल, घृत, शहद आदि का मणों के परिमाण में पान करना। मणों गाजर मूली अन्न आदि का भक्षण करना।

११—लाखों जीर्ण रोगी और मृत प्राय व्यक्तियों को निरोग करना साधारण पदार्थों से। और दूसरे के शरीर का रोग अपने शरीर में ले लेना।

१२—महीनों निर्जल रहना-व्रत करना। दिन रात चलते रह कर प्रतिदिन ५२ कोस का भ्रमण करना और केवल एकही वार अन्न जल लेना।

१३—जन्म के टूटे पाँगलनाथ साधु के हाथ पैर ठीक कर देना। लकड़ी के डण्डे को व्यक्ति के साथ दौड़ना।

१४—अशिष्ट एवं असभ्य व्यवहार करने वाले व्यक्तिओं को क्षमा करना।

१५—भोजन-पान रहन-सहन के सम्बन्ध में क्रान्तिकारक परिवर्तन की शिक्षा और इसके प्रत्यक्ष लाभ।

१६—कई मनुष्यों को आर्थिक संकट एवं सम्भावित हानि से मुक्त करना। कई अपुत्रवानों को पुत्र प्राप्ति करवाना। अनेकों मनुष्यों को दुर्व्यसन एवं दुर्गुणों से बचा कर सन्मार्ग पर लाना।

१७—कई जिज्ञासु पुरुषों को आत्म स्वरूप प्राप्ति की शिक्षा देना और कतिपय निष्ठावान सत्य प्रिय सज्जनों को आत्म साक्षातकार करवा कर जीवन मुक्त बना देना।

१८—योग क्रिया, साधन और सिद्धान्त आदि की सत्य, सरल और प्रत्यक्ष अतः मान्य विवेचना। प्राचीन परिपाटियाँ एवं मान्यता का सत्य रूप दर्शन। खण्डन मण्डन से परे सब वर्गों को लाभप्रद शिक्षा देना।

१९—जाति-पाँति, वर्ण-आश्रम, ऊँच नीच, मान अपमान, राग द्वेष, तृष्णा, संग्रह से परे रहना। वर्णाश्रम के सत्य स्वरूप दर्शक, दयालु, निर्भीक उदार सच्चे त्यागी एवं प्रत्यक्ष वैराग्य वान।

२०—मन की बात जानने वाले, भविष्य वक्ता, लौकिक एवं पार लौकिक सारभूत, वास्तविक शिक्षा देने वाले शिक्षक।

२१—अपने शरीर को एक से अधिक जगह दिखा देने वाले, दृढ़ संयमी, इन्द्रिय जीत, निन्द्रा जीत, सांसारिक प्रपञ्च से दूर। राजा के द्वारा पूरे ग्राम की भेंट को अस्वीकार करने वाले निर्लोभ सन्त।

२२—तत्काल वर्षा करा देना, खारी जल और पदार्थों को मीठा बना देना, छाछ को दूध कर देना और निरीह बालक के समान वृत्ति रखना।

उपर्युक्त लेख सूची से मानना होगा कि आप विलक्षण अवधूत थे जैसे कि संसार में बहुत कम हो सकते हैं।

आपने अपने अनुभव के बल पर योग सम्बन्धी शरीरस्थ पट् चक्र का जो रूप वर्णन किया वह प्राचीन पुस्तकों में लिखे रूप से विलक्षण है। किन्तु युक्ति संगत एवं प्रपञ्च से दूर है और थोड़ा भी अभ्यास करने वाले के लिये प्रत्यक्ष दर्शन में आ सकता है। योगी पुरुष में जो सिद्धियाँ तथा शक्तियाँ उत्पन्न एवं विकसित होती हैं वह आपके बताये हुए पट् चक्र रूप से ही हो सकती है।

प्राणायाम के जो लाभ और रूप आपने बतलाये हैं वह व्यावहारिक तर्क संगत एवं सरल हैं।

प्राचीन लेखानुसार श्वास को रोक कर बैठने को आप प्राणायाम नहीं मानते। यह तो अस्वाभाविक-अप्राकृतिक और कष्टदायक है ऐसा आपका कथन है श्वास को समगति से

ही चलाते हुए-अर्थात् एक मिनिट में १५ श्वास इसमें तन्मय होने में ही आत्मानन्द मिल सकता है। यह तो प्रत्यक्ष बात है। अकारण श्वास की गति को रोकना और उससे आध्यात्मिक लाभ की आशा रखना अव्यवहार्य और अज्ञान है।

कुण्डलिनी शक्ति के सम्बन्ध में आपने जो अनुभूत एवं युक्ति संगत सारभूत विवेचन किया है वह तर्क संगत एवं प्राकृतिक है। आपके विवेचनानुसार चिरकाल से सोई हुई, विषयासक्त और बहिर्मुख वृत्ति को चैतन्य, दिव्य और अन्तर्मुखी बनाने से ही तो आत्मानन्द मिल सकता है, अमरलोक प्राप्त हो सकता है अमृतपान मिल सकता है। सुरति ठिकाने आना इसी का तो नाम है। यह बहिर्मुख वृत्ति ही तो सर्पिणी कुण्डलिनी है।

सुषुम्ना नाड़ी ही मेरु दण्डाश्रित मालाकार श्वास का आधार है। इसमें तन्मय होने से ही मन रुक सकता है, आत्मानन्द प्राप्त होता है और "जीवो ब्रह्मनेवा परै:" सूत्र साथक होता है।

योग—सहज योग की पूर्णावस्था ही तो आत्म साक्षात्कार है। आपका कथन है कि इसके बिना वेदान्त की बातें बनाना ढोंग है, प्रपञ्च है एवं मिथ्या है।

समाधि के सम्बन्ध में आपके विचार बहुत क्रान्तिकारी है इसमें आपका यह कथन है कि वास्तविक समाधि वही है

जो एक बार लगने या चढ़ने पश्चात् न उतरे। पूर्णतः आत्मानन्द में तन्मय करदे, सांसारिक विकारों से दूर हटादे।

आपने तीन प्रकार की समाधियों का बखान किया है। यथा भक्ति समाधि, योग समाधि और ज्ञान समाधि।

इन में आप ज्ञान समाधि श्रेष्ठ मानते हैं। इस विषय में आपका कथन है।

ज्ञान समाधि या सहज समाधि लगे तब योग रु ध्यान नहीं।
आप में आप नहीं कुछ अन्य है, द्वन्द हो कैसे न स्थान कहीं।
एक न दोय है शून्य महा, नहीं स्वर्ग पताल न ज्ञान सही।
कर्म क्रिया कर्ताहु नहीं ऐसा 'अमृत नाथ' का ज्ञान सही।

श्वास रोक कर बैठने का कष्ट पाने के भय से जन समाज का चित्त समाधि जैसे उत्तम कर्म की ओर से फिर गया है और इसके द्वारा होने वाले कल्याणमय लाभ से लोग वञ्चित हो गये यह देश का दुर्भाग्य है।

मैं मुक्त कण्ठ से घोषणा करता हूँ, अपने अनुभव के बल पर घोषणा करता हूं कि समाधि में श्वास रोकने की आवश्यकता नहीं है। जो ऐसा कहते हैं या जिन ग्रन्थों में ऐसा लिखा है वह नर पिशाचों द्वारा बिगड़े हुए ग्रन्थों के आधार पर है अब समय आ गया है कि इस में सुधार किया जाय।

कुछ लोगों ने समाधि का जनता में प्रदर्शन करके अपनी जीविका चलाना आरम्भ कर दिया है। यह बुरी बात है।

मैं स्पष्ट करता हूं कि 'सहज योग' का ही दूसरा नाम समाधि है। खान पान का सुधार ब्रह्मचर्य और श्वास में तन्मयता बस यही।

मन कितहू डोले नहीं निश्चल पद में वास।
सहज समाधि लगाय ले यह पद है सन्यास॥

आसनों के सम्बन्ध में भी आप क्रान्ति कारक हैं। आप का कथन है कि आसन विशेष से आत्म शान्ति नहीं मिलती। केवल शारीरिक सञ्चालन ठीक होते रहने के हेतु ही नाना प्रकार के आसन हैं। केवल सिद्धासन और कोमल पद्मासन ही साधक के लिये लाभदायक हैं। मुख्यतः सुख आसन ही सर्व श्रेष्ठ है। आसन के अंग में विस्तार से देखो।

इनके अतिरिक्त योग सम्बन्ध और २ साधनों पर भी आपने क्रान्ति कारक विचार व्यक्त करते हुए स्पष्ट कथन किया है, कि भारत पर बाहरी जातियों के आक्रमण, इनसे संघर्ष और असावधानी तथा असावधानी तथा निर्बलता के प्राचीन ग्रन्थों का नाश हुआ।

सरल, सत्य, व्यावहारिक क्रिया और साधनों की जगह मूर्ख विधर्मियों ने कठोर कष्ट साध्य और अमान्य सा रूप देकर भोंदू लेखकों के द्वारा लिखवा दिया।

योग विद्या के ग्रन्थ भ्रष्ट हो गये, साधक और सिद्धों का अभाव सा होता चला गया। अतः इस समय जो कुछ ग्रन्थ, साधन व सिद्धान्त मिल रहे हैं वह वर्तमान समाज के लिये दुरूह अव्यवहारिक और अनुपयोगी हो गये।

साधु-समाज योगी-लोग भी इन्हीं ग्रन्थों में उलझ गये अनुभव नहीं करते इसी कारण एक मात्र कल्याण कारक योग मार्ग अब कण्टकाकीर्ण हो रहा है। इसको स्वच्छ, सरल एवं दिव्य बनाने की, इसमें क्रान्ति लाने की आवश्यकता है।

योग,साधन में आहार-विहार का सुधार, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय संयम धैर्य अनुभवी गुरु का सांनिध्य और एकान्त निवास अतीव वांछनीय और आवश्यक है।

सर्व साधारण के अर्थ आपने मुख्य चार शिक्षाएँ दी है। यथा :—

१—खान-पान रहन-सहन का सुधार।

२—प्राकृतिक जीवन का अभ्यास।

३—इन्द्रिय संयम पूर्ण ब्रह्मचर्य।

४—सहज योग का साधन।

आत्म स्वरूप में प्रतिष्ठित कराने वाला केवल मात्र साधन सहज योग ही आपने बताया है। जो कि खान-पान के आधार पर हो सकता है।

आपने वर्ण-आश्रम, जाति पाँति, लिंग अवस्था आदि का भेद नहीं माना। इस विषय में आपका कथन है।

जाति, वर्ण आश्रम नहीं, ऊँच नीच का भेद।
'अमृत' एक स्वरूप है साक्षी देते वेद॥

साम्यावस्था—समता की आवश्यकता पर जोर देते हुए आप कहते हैं इसके बिना काम नहीं चलने वाला है।

जब जो कुछ हो जगत में, तबहि उचित सो जान।
महा निवृत्ति की स्थिति यही 'अमृत' विज्ञान॥

कर्म फल अवश्य भोगना पड़ता है। इस सम्बन्ध में आपका कथन है कि :—

कर्मन से योगी अरु कर्म साथ बने भोगी,
कर्मन के वशीभूत रोगी तन पाया है।
कर्मन के परि के वश शंकर अज विष्णु आदि,
उत्पत्ति पालन अरु प्रलय हू मचाया है।
कोई बने राजा संग विविध भाँति बजे बाजा,
गज औ तुरंग ताजा, संग में सजाया है।
कर्म ही प्रधान ऐसा 'अमृत' का है निदान,
कर्मन की प्रेरणा से केवल पद पाया है।

[२]

कर्मन से भिखारी अरु कर्मन से पुरुष नारी,
वेद ओ पुराण सार कर्मन से पाया है।
कर्मन ते चार वर्ण इनसे ही जन्म मरण,
इनके वश सूर्य चन्द्र उदय अस्त धाया है।
निर्गुण ओ सगुण भाव कर्मन का है स्वभाव
बार बार योनिन में इनने भरमाया है।
कर्मन ते धर्म होत इन से ही भर्म होत,
'अमृत' सत रूप माहिं शङ्कर' मन लाया है॥

जगत के जंजाल को झूठा बतलाते हुए कहते हैं कि इस भूल भुलैया में, इन स्वार्थी लोगों में फँसे रहना भयंकर भूल है।

सुख होय दुःख होय पाप होय पुण्य होय
जन्म होय मरण होय धनपति कंगाल है।
राव होय रंक होय शंक अरु निशंक होय,
दूर होय अंक होय ममता का जाल है।
पिता होय मात होय दारा सुत भ्रात होय,
सेवक अरु नाथ होय कबहुं मित्र शाल है।
स्वर्ग ओ पताल मृत्यु इनका नहीं अन्त आवे,
'अमृत' सत रूप सत्य झूठा जंजाल है।

तत्वों के द्वारा शरीर रचना और इनमें जाति पाँति की कल्पना ऊँच नीच का भेद मानना और पाप पुण्य का दिखावा करने को त्याग कर केवल एक रूप का ध्यान करने की शिक्षा देते हुए आप कहते हैं।

पञ्च तत्व भये साथ ताते यह बनो गात,
जात पातियों में मोको नेक ना दिखात है।
सब में है एक रूप राव रंक और भूप,
कहते ना बने सैन्त वेद यों सिखात है।
कर्ता औ कर्म करण तीनों हैं एक रूप,
सुनके पुनि पाप पुण्य अचरज सा आत है।
सत्य झूठ जानूँ नाहीं और कुछ मानूँ नाहीं,
एक रूप सत्य सत्य "अमृत" विख्यात है।

वैराग्य और त्याग की आवश्यकता बताते हुए आप कहते हैं कि सांसारिक पदार्थों पदों और शक्तियों की कामना रखना छोड़ना हो तो मेरे मार्ग पर आओ।

इन्द्र मञ्च चाहूं ना चाहूं मैं भूप छत्र,
अनुपम विद्या न चहूं सब की गति क्षीण है।
अक्षय कीर्तन चहूं रीति ना अनीति चहूं,
धन जन से प्रेम नहीं बल-त ना दीन है।
नवरस को पढ़ूं नहीं कर्म धर्म लहूं नहीं
षट् रस को पढ़ूं नहीं एते सब हीन हैं।

'अमृत' सत चरण शरण चाहता हूं निशिवासर,
देना ना देना नाथ तेरे अधीन है।

संसारिक व्यवहार सञ्चालन तथा अपने कल्याण मार्ग को सरल बनाने के अर्थ आप दया प्रेम, भक्ति सन्तोष, सत्य, प्रार्थना आदि के सम्बन्ध में विपद विवेचन करते हैं। और इन तथा दूसरे उत्तम गुणों जैसे योगी की शक्ति योग की महिमा, काम क्रोधादि से बचना सत्संग में रहना अतिथि सत्कार करना आदि के विषय में अच्छे २ दोहे कुण्डलियां पद्य आदि आपके संकेतानुसार इस पुस्तक में लिखे गये हैं।

भविष्य वाणी स्वरोदय आदि पर भी पद्य रचना हुई है। जोकि लाभ प्रद है।

लेखकः—

दुर्गाप्रसाद त्रिवेदी "शंकर"

ग्रन्थ रचना काल

———

६ ० ० २

दर्शन शून्य शून्य चक्षुन को, चैत्र शुक्ल में मिला प्रकाश।
रामजन्म की नवमी तिथि अरु गुरु को हुई पूर्ण है आश॥
यह "अवधूत विलक्षण" पुस्तक, हुई प्रकाशित अति आनन्द।
अमृत 'अमृत' ने वर्षाया, शंकर मिला पूर्णानन्द॥

अब है ५६ वर्ष की, हो गई मेरी देह।
'अमृत' चरण सरोज में "शंकर" अटल सनेह॥

चैत्र शुक्ला ६ गुरुवार
सं० २००६ विक्रम

"शंकर"

बाहर को क्या ढूँढता, घट के पट में देख।
'अमृत' सब बौरा रहे, क्या पण्डित क्या शेख॥
जिसे प्राप्त कर और कुछ, शेष रहे फिर नाहिं।
ऐसे आत्म स्वरूप को, "अमृत" घट में पाहिं॥

मानवीय असावधानियों के कारण इस पुस्तक में यत्र तत्र कुछ अशुद्धियां रह गई हैं इसका मुझे खेद है। शुद्धि पत्र इसी हेतु लगाया गया है। पाठक सुधार कर पढ़ने की कृपा करें।

शुद्धि-पत्र

श्री विलक्षण अवधूत जीवन चरित्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१५	चैतन राम के	चेतन राम नाम के
७	११	कृष्ण	कृष्ण के
७	१६	इनका	इसका
३३	१२	ज्ञान	ज्ञात
३७	८	वाहार	वाहर
४१	११	आर	और
४८	१	अमोघ,	अमोघ,
४८	११	वृद्धिगत	वृद्धिंगत
५०	१४	योगा	योगी
६०	४	माला	माली
६१	१२	बस	सब

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६२	३	वग्र	वैग्र
६६	२	गुंझे	मुझे
७२	२	भाई	माई
७६	८	पाध	पाद
७६	१५	स्मर्ण	स्मरण
८०	७	सखी	सुखी
९१	७	आश्रम	आश्रय
१०१	२	अति	आर्त
१०१	१७	ज्ञान	जानूँ
१०८	५	आपक	आपकी
१०८	२१	आसको	आसको तो
१०६	१३	अताव	अतीव
११४	१५	मुद्रित	मुदित
११७	१६	भाना नाथ	भानी नाथ
१२०	१३	उत्कृत	उत्कट
१२१	२१	निष्कपट	निष्कपट
१२२	१४	के समय के	समय के

साधन भाग प्रथम खण्ड

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४४	१४	ाम	काम
१४८	१८	कथा	कला
१५२	२१	श्लेश्मार	श्लेश्मा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५६	३	रोग	रंग
१६१	२	अजया	अजपा
१६१	६	अजया	अजपा
१६८	१२	भरतं	भाते
१७३	१५	दुःख	सुख
१७३	१७	सो	से
१७४	२०	से	में
१८६	४	हो	x
१६१	३	—	के
१६१	१६	प्राचीत	प्राचीन
१६३	४	धारण	धारणा
१६३	७	देवत्व	दैवत्व
१६४	४	जिसको	जिसका
२०१	१५	मानसिक	मानसिक
२०२	२	आशा	आज्ञा
२०२	२०	आप	आय
२०४	१	साथक	साधक
२०४	६	अजया	अजपा
२०७	१२	अजया	अजपा
२०८	७	अजया	अजपा
२०६	८	र्म	कर्म

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१२	१४	पृष्थी	पृथ्वी
२१५	४	न	—
२२४	३	मस्म	भस्म
२२४	६	का	को
२२४	१३	दृशा	दृश
२२४	२०	भा	भी
२२५	११	ग्रकार	प्रकार
२२६	६	हठ	हम
२२६	१२	—	वाम
२२७	१६	गठा	उठे
२२८	६	है	—
२२८	१८	वनजाते	वतलाते
२३२	१०	सुषुप्ति	सुषुप्त
२३४	११	शा	शान्त
२३५	११	वहो	वहाँ
२३५	१२	रमते	रमे
२३५	२०	मूल	भूल
२३७	१८	अनारत	अनाहत
२४२	१	पट	वट
२४४	३	पूजा	दूजा
२४५	५	चित्र	चित्त

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४६	२	चौर	और
२४६	७	खेल	खेल है
२४७	२१	अजया	अजपा
२५६	४	आम	आय
२६४	६	जीव में	जीवों को
२६४	११	संसाम	संसार
२७४	७	और	ओर
२७४	१०	घढ़ी	घड़ी
२७५	३	जाना	नाना
२८३	६	पचे	पच
२६०	३	और	ओर
२६२	२	मृतोका	मृत्तिका
३०७	२	सत्य	सत
३१०	२२	आया	आपा
३१४	६	जिशने	जिसने
३१६	६	उदग्घम्	अदग्घम्
३१७	१०	चराचरं	चराचरञ्च
३२६	२०	निजा	निज
३२७	११	सन्तीषी	सन्तोषी
३३१	१७	निहिंसक	निर्हिंसक
३३२	१०	जाय	जाप

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३३३	११	सत्प	सत
३३४	१४	अवत	जावत
३३५	१२	आये	आय
३३६	११	दियै	दिये
३३६	१६	माला	भाला
३३७	६	पर	पद
३३६	१	के	है
३४१	२	कट	कत
३४१	१३	भेट	पेट
३५४	४	तरशें	दर्शें
३५७	५	वौध	बांध
३५६	६	चकित	थकित
३५६	१८	अतएव	अवएव
३६१	१४	बतायें	बतावे
३६८	२	घूरा	धूरा
३६८	८	सोदी	सोही
३६६	४	में	में न
३७०	१	तस	तप्त
३७१	१६	अदीना	अघीना
३७२	१२	रसा	रमा
३७८	१३	षरम	परम

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३८०	६	मन	गम
३८१	१	उढाय	उठाय
३८५	४	ब्रह्म	ब्रह्म का
३८५	१०	भी	भी है
३८५	१८	करत किया	कर तकिया
३८६	१	सूय	सूर्य
३८६	८	ह्रयय	हृदय
३८७	१८	धाट	घाट
३९०	१५	ह्रोरी	घोरी
३९०	१६	धुलाया	घुलाया
३९१	१७	अभी	अमी
३९२	२	धर	घर
३९२	१७	देख	दुखी देख
३९३	६	अत्रारी	अपारी
३९३	७	फूल	मूल
३९३	१३	अमेद	अभेद
३९४	२	जीवन	जीव
३९४	६	सुभति	सुमति
३९५	११	अकार	आकारो
३९६	७	वहार	बाहर
३९७	१३	वह	बहे
३९७	१९	शिखर में	शिखर
३९८	८	सगर	सागर
३९८	१४	बावर	बावरे
४१५	१८	नन्मय	तन्मय

पृष्ट	पंक्ति	शुद्ध	अशुद्ध
४०६	१२	सत	मत सम
४०७	१३	ध्वनि में	ध्वनि
४०६	१३	छाने	नहीं छाने
४१२	२	करे	कर
४१२	१२	भावेरे	मावेरे
४१४	२	दुखी	दुःख
४१४	२	होवना	देवना
४१४	१५	शत	सत
४२६	११	में	मैं
४२६	११	में	को
४२६	१६	चरणन	चरणन में
४३१	१	कहे	मिटे
४३१	२	का	के
४३४	१७	सिति	नीति
४३४	१६	रौरव	रौख
४३५	७	कलत्त	कलत्र
४३६	१६	साधन	सावन
४३६	२१	आधारु	आधारा
४३७	१६	याहि	पाहि
४३८	७	पधारे	पछारे
४४४	६	दावा वलहारी	दावा नलहारी

❀ उपसंहार ❀

पृष्ट	पंक्ति	शुद्ध	अशुद्ध
११	१६	तथा असावधानी	—
११	१६	के	से

मन पवित्र प्रज्ञा प्रबल इन्द्रिन पर अधिकार।
समता हो ममता हटे 'शंकर' सुख का सार॥
नयन भृकुटि में स्थिर किये धरे श्वास का ध्यान।
'शंकर' तब ही होयगा प्राप्त विमल विज्ञान॥
श्वास देह में घटत है ज्यों दीपक में तेल।
'अमृत' अवसर जात है पूरा होता खेल॥
भोग-भाव से जगत है, त्याग-भाव से नाहिं।
भोग त्याग दोनों मिटें, 'अमृत' ब्रह्म समाहिं॥

[illegible] मीठा, सलौनां, और नारि का प्रेम।
त्यागे तव 'शंकर' रहे, साधु सन्त की क्षेम॥

ॐ शान्ति! प्रेम!! आनन्द!!!